ISSN 2277-5587

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

शोध श्री

Year-4 Volume-3 July-September 2014 RNI No. RAJHIN / 2011/ 40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com

Shodh Shree
Volume - 3
July-September 2014

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

Virendra Sharma
Chief Editor
Head of Department (History)
Government P.G. College, Bundi

Dr. Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof.H.S.Sharma (Retd.)
University Of Rajasthan, **Jaipur**

Prof.T.K.Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P.Saraswat
Dean of Commerce
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Rajesh Choudhary
Assistant Director (Research)
Indian Council of Historical Research, **NewDelhi**

Dr. Pankaj Gupta
Government P.G. College, **Kotputli**

Advisory Board

Prof. S.P.Vyas
Jainarayan Vyas University, **Jodhpur**

Prof. S.N.Tailor (Retd.)
S.D.Government P.G.College, **Beawar**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.)
National Archives of India, **NewDelhi**

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

CONTENTS

Year - 4 | Volume - 3 | July - September, 2014

1.	**ओसियां मन्दिर के मूर्तिशिल्प में धार्मिक सहिष्णुता** प्रो. एस. पी. व्यास, जोधपुर	1-4
2.	**अमेरिकी कलाकार एंडी वारहोल (प्रसिद्ध सीरिग्राफी कलाकार) की कला यात्रा** आरती शर्मा, आगरा (उत्तर प्रदेश)	5-7
3.	**भारतीय साहित्य में लोक का स्वरुप** गणेश कुमार, नई दिल्ली	8-11
4.	**श्री कृष्ण की प्रमुख लीलाओं का वैशिष्ट्य एवं रहस्य** डॉ. चन्द्रिका शर्मा, शिवपुरी (मध्य प्रदेश)	12-14
5.	**भित्ति-चित्रों के सन्दर्भ में केरल स्थित त्रिप्रयर रामा मन्दिर** अंशुली शुक्ला, आगरा (उत्तर प्रदेश)	15-17
6.	**रामस्नेही सन्त कवि राधोदास** डॉ. हरीश कुमार, जैतारण	18-20
7.	**रीतिमुक्त एवं छायावादी चतुष्ट्य कवियों के काव्य में प्रणयगत संवेदना की साम्यता** कविता मीणा, कोटा	21-23
8.	**नारीयता : एक सामाजिक अवधारणा** डा. लता कुमार, मेरठ (उत्तर प्रदेश)	24-27
9.	**राजस्थान में वृक्ष पूजा: एक परम्परा** डॉ. एम. एल. शर्मा, मीना नरुका, अजमेर	28-30
10.	**भारतीय राजनीति की नवीन प्रवृतियाँ, जो वास्तव में है चुनौतियाँ** डॉ. प्रेमलता परसोया, कोटा	31-34
11.	**शिक्षण प्रशिक्षण के क्षेत्र में नवीनता** विपिन सोलंकी, दिल्ली	35-43
12.	**गुरु जम्भेश्वर के दार्शनिक विचार: ब्रह्म एवं जीवात्मा** डॉ. ओमश्री राठौड, ब्यावर	44-47
13.	**मनरेगा: समीक्षात्मक अध्ययन एक आवश्यकता** डॉ. (श्रीमती) रमा शर्मा, कोटा	48-52
14.	**दृष्टि विकलांग व सामान्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतो का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन का अध्ययन** डा. दिनेश कुमार सिह, उत्तरकाशी (उत्तराखंड)	53-59
15.	**वैश्वीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन** सुमन गुप्ता, कोटा	60-64
16.	**महात्मा गांधी और राष्ट्रभाषा हिन्दी** ममता बालिया, जयपुर	65-68
17.	**ऐतिहासिक दृष्टि से डिंगल गीतों का महत्व: मालाणी क्षेत्र के रावल मल्लीनाथ एवं रावल जगमाल के विशेष सन्दर्भ में** डॉ. सुरेश कुमार चौधरी, जोधपुर	69-71
18.	**नई सदी में साहित्यऔर समाज का वंचित विमर्श (किन्नरों के विशेष संदर्भ में)** डॉ. सुरेश सिंह राठौड, अजमेर	72-74
19.	**Tirthankar painting evidence from miniature painting in Jain manuscript** Srashti Jain, Agra (Uttar Pradesh)	75-79

20. **Overweight and Obesity and their Relation to Socioeconomic Status among School Going Adolescent boys** 80-82
Shruti Hada, Kota ; Dr. Savita Swami, Jhalawar

21. **Impact Of Working Capital Management On Profitability: A Study Of Selected Paints Companes In India** 83-89
Dr. J. B. Patel, Ahmedabad (Gujrat)

22. **An Overview Of Talent Management** 90-93
Dr. Aditi Jain, Jaipur

23. **A Study Of Primary School Teachers Of District Hamirpur Of Himachal Pradesh Regarding Awareness About Right To Education Act, 2009** 94-98
Dr. Pardeep Singh Dehal, Shimla (Himachal Pradesh)

24. **Blended Learning : Need of the Hour** 99-103
Dr. Shailendra K. Verma, Varanasi (Uttar Pradesh)

25. **India's Security Challenges – A futuristic Perspective** 104-108
Dr. Chanda Keswani, Ajmer

26. **Human Right: A Key To True Human (In Reference To Provide Education)** 109-112
Dr. Chhaya Soni, Varanasi (Uttar Pradesh)

27. **Sino – Indian Relations: From Arch Rivals To Changing The World Order** 113-119
Dr. Nidhi Yadav, Ajmer

28. **The Journey from Basel I to Basel III and Implications for Indian Banks** 120-122
Dr. Mani Bhatia, Jaipur; Palak Mehta, Jaipur

29. **Creating Curiosity, Creating Adventure, Creating Awareness– A Flash Mob–21st Century Publicity Tool** 123-125
Aditi R Khandelwal, Jaipur

ओसियां मन्दिर के मूर्तिशिल्प में धार्मिक सहिष्णुता

(जैन मन्दिर के विशेष संदर्भ में)

प्रो. एस. पी. व्यास
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर

shodhshree@gmail.com

भारतीय संस्कृति की जीवित्तता का मूलभूत कारण उसकी समन्वयशीलता रही है। अनेक धर्मों, सम्प्रदायों के उदय के उपरान्त भी यहां कभी 'धर्मयुद्ध' अथवा 'क्रूसेड' नहीं हुए। विचारों के वैविध्यपूर्ण प्रस्तुतिकरण को यहां हमेशा स्थान मिला, सम्मान मिला। 'स्याद्वाद' एवं 'सहअस्तित्व' के भाव ने सहिष्णुता को जन्म दिया। सहिष्णुता भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख संस्कार रही है और यह संस्कार यहाँ की कला में भी प्रकट होता है। भारतीय शासकों की सर्वधर्म समभाव की नीति ने कला के अद्भुत रुपों के प्रस्तुतिकरण में सहयोग दिया, विशेषत: मूर्तिकला के क्षेत्र में।

राजपूताना के शासकों ने सभी धर्मों को समान प्रश्रय दिया, जिसका परिणाम था विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के आस्था केन्द्रों का निर्माण। शासक का धर्म चाहे कोई भी रहा हों, उसने सदैव सभी धर्मों का आदर किया एवं मन्दिरों के निर्माण में सहायता प्रदान की। चाहे मन्दिर शैव धर्म से संयुक्त हो, वैष्णव से, शाक्त से अथवा जैन मत से। सामान्यत: जैन स्थापत्य तथा कला के क्षेत्र में यह माना जाता रहा है कि यह हिन्दू मन्दिर एवं मूर्तिशैली का ही एक रुप था जो आवश्यकतानुसार परिवर्तित, परिवर्धित एवं परिष्कृत होता चला गया। अधिकांश जैन मन्दिरों के स्थापत्य नागर, बेसर अथवा सोलंकी की शैली में निर्मित होते रहे हैं, बौद्ध कला की भांति इनमें स्वतंत्र स्थापत्य (यथा स्तूप, विहार आदि) का उदय नहीं हो सका। जैन निर्माण हिन्दू स्थापत्य का ही एक अन्य स्वरुप माना जा सकता है, जैसा कि जेम्स फर्ग्युसन ने भी लिखा है:

Jain architectural style always singularly chaste and elegant, was essentially Hindu, and was doubtless largely common to all Hindu sects in western India, but in its evolution it became modified by Jaina taste vand requirement.[1]

जैन मन्दिरों का स्थापत्य न केवल हिन्दू है, वरन् मन्दिरों में ब्राह्मण देवी देवताओं, यक्ष-कुबेर, दिक्पालों आदि का अंकन-धार्मिक समन्वय के अद्भुत उदाहरण को प्रस्तुत करता है। नाडोल में चौहान शासकों के काल में 11-12 वीं शती में निर्मित नेमिनाथ, शान्तिनाथ एवं पद्मप्रभु के तीन श्वेताम्बर मन्दिरों में स्त्री दिक्पालों एवं कृष्ण की मूर्तियों तथा सर्वानुभूति कुबेर, यक्ष, अम्बिका यक्षी एवं वज्राकशा, गौरी, अप्रतिच्छका, महाकाली, महाविद्याओं तथा गजलक्ष्मी तथा सरस्वती की मूर्तियाँ उत्कीर्ण मिलती है।

वैष्णव, शैव तथा जैन मतों का सहअस्तित्व तथा एक ही स्थान पर इनसे संबंधित मंदिर निर्माण, उनके अनुयायियों में उदार दृष्टिकोण का परिचायक है। उपकेशपुर (ओसिंया), पार्श्वनगर (अलवर) चन्द्रावती (झालरापाटन) चित्रकूट (चित्तौड़गढ़) नागदा (उदयपुर) आदि प्राचीन मन्दिरों के नगर उनके सहिष्णु दृष्टिकोण का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। उत्तरगुप्त काल में शक्ति की पूजा विविध रुपों में प्रचलित थी। पहला भयानक रुप जिसमें वह महिषमर्दिनी चामुण्डा तथा सप्तमातृका के रुपों से संयुक्त थी। दूसरा, शान्त रुप जिसमें क्षेमंकरी, सरस्वती, लक्ष्मी (विशेषत: गजलक्ष्मी), श्रृंगारदुर्गा तथा तपस्यारत पार्वती आदि रुपों में शक्ति की उपासना होती थी। तीसरा अभयदान का रुप, जिसमें महिषमर्दिनी, सरस्वती और लक्ष्मी के रुप में देवी क्रमश: कल्याण, ज्ञान तथा धन का दान करने वाली थी। इस रुप में देवी की पूजा सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों द्वारा होती थी।[2] अम्बिका के साथ-साथ अन्य मातृकाओं की पूजा प्राचीन काल से प्रचलित थी।

सप्तमातृका का विचार सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होता है। अग्नि की सात माताओं का उल्लेख[3] तथा सप्तमातृकाएं सोम रस के निर्माण की देखरेख करती हैं।[4] मातृदेवियों की पूजा जैन आदि अन्य धर्मों में भी लोकप्रिय थी।[5] जैन साहित्य तथा जैन मन्दिरों में भी जैन देव परिवार के साथ इनका अंकन प्राप्त होता है। षष्ठी संस्कार विधि[6] में आचार्य दिनकर आठ मातृकाओं का आवाहन करते हैं, यथा ब्राह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा तथा त्रिपुरा। देलवाडा मंदिरों में मातृकाओं की मूर्तियों स्वतंत्र रुप से अंकित है, न कि तीर्थंकों के अनुचारों के रुप में। इनके साथ गणेश की प्रतिमा भी अंकित है जिससे इनका स्वतंत्र महत्त्व और अधिक सिद्ध होता है। साहित्यिक तथा पुरातात्विक स्रोतों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मातृकाओं के समान ही लक्ष्मी और सरस्वती भी सभी सम्प्रदायों यथा हिन्दू, जैन तथा बौद्ध द्वारा मान्य एवं पूजित थी। इस प्रकार से हिन्दू देवी-देवताओं, उनके लक्षणों, आयुधों एवं वाहनों को बौद्ध तथा जैन धर्म द्वारा मान्यता देने का कारण हिन्दू धर्म का गहरा, सर्वव्यापी जीवन्त आधार थी। हिन्दू धर्म के देवताओं की संकल्पना जीवन की गहन अनुभूतियों पर आधारित थी तथा जैन तथा बौद्ध धर्म यद्यपि प्रतिक्रिया स्वरुप आविर्भूत हुए परन्तु हिन्दू धर्म में निसृत होने के कारण इनके प्रभाव से अलग न हो सके। ब्राह्मण देवी एवं देवता जैन धर्म में यक्ष-यक्षिणी रुप में रुपान्तरित होकर तीर्थंकरों की सेवा में अंगरक्षकों के स्थान पर अंकित किये जाने लगे।[7] जैन धर्म के 24 तीर्थंकरों के रक्षक यक्ष तथा यक्षिणियों की प्रतिमा वैज्ञानिक विशिष्टताएं जैसी कि जैन आगम ग्रन्थों में वर्णित है तथा उनके मूर्त रुपांकन यह सिद्ध करते हैं कि हिन्दू देव परिवारों से लिये गये हैं। ये मूर्त रुपांकन ब्राह्मण देवों की ही सत्य प्रतिलिपियां दृष्टिगत होते हैं। इनमें लक्ष्मी तथा सरस्वती सर्वाधिक महत्वपूर्ण देवियां है।

यह उल्लेखनीय हैं कि गजलक्ष्मी की पूजा बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायों में भी समृद्धि के देवी के रुप में ही प्रचलित थी। कमल पर आसीन गजयुगल द्वारा अभिषिक्त लक्ष्मी की अनेक प्रतिमाएं सांची के तोरणद्वारों बोधगया तथा भरहुत के बौद्ध अवशेषों में उत्कीर्ण प्राप्त होती है। जैन साहित्य तथा कला में भी गजलक्ष्मी तथा उसकी प्रतिमाओं के उल्लेख प्राप्त होते है। जैन कल्पसूत्र[8] तीर्थंकर माता के चौदह स्वप्नों का वर्णन करते हुए श्री देवी का भी उल्लेख करता है। जैन कला में श्री देवी का सर्वाधिक प्राचीन मूर्त रुपांकन बराबर पहाडियों में अजन्ता गुफा के प्रवेश द्वार के तिकोने छज्जे पर अर्ध चित्र में अंकित है। गजलक्ष्मी का यह अभिप्राय उडीसा में उदयगिरी खण्डगिरी गुफाओं में भी प्राप्त होता है, जो जैन धर्म का केन्द्र था।[9] श्रीदेवी यक्षिणी की जैन प्रतिमा हिन्दू देव परिवार की श्री लक्ष्मी की सत्य प्रतिलिपि दृष्टिगत होती है। उसके लक्षण भी इस प्रकार चक गदा, शंख तथा पद्म हैं।[10]

हिन्दू देव परिवार से ही बौद्ध तथा जैन धर्मो में सरस्वती को ग्रहण किया जैन देव परिवार में सोलह श्रुत देवता था विद्या देवियां है जिनकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है। जैन सरस्वती का पाषाण में प्रारंभिक मूर्त रुपांकन तीसरी शती ई.पू. मथुरा से प्राप्त होता है।[11] सरस्वती की अनेक मूर्तियां भरतपुर, आबू, रणकपुर, पल्लू, बसन्तगढ आदि जैन केन्द्रों से प्राप्त होती है। देलवाडा के मन्दिरों में जैन तीर्थंकों की प्रतिमाएं उनके समवशरण रचनाएं, पंच कल्याणकों का दृश्य आदि अंकित है, साथ ही गजलक्ष्मी शंखेश्वरी देवी, चक्रेश्वरी देवी, अंबिका देवी व अन्य जैन यक्षिकाओं की मनोहरी छवियां अंकित है। स्तंभों पर जालीदार कटाई के नयनाभिराम अलंकरण बने हुए हैं। यहां पर अनेक जैनेत्तर विषयों वैष्णवदेवी देवताओं कृष्ण लीलाओं आदि से संबंधित दृश्य भी हैं विशेषत: लूणवसहिं मन्दिर में।[12]

इसी प्रकार ओसियां वैष्णव, शैव तथा जैन मतों के सहअस्तित्व का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्रासाद वास्तु एवं मूर्ति शिल्प के आधार पर ओसियां के मन्दिरों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रारंभिक महामारु शैली के मन्दिर तथा परवर्ती मरुगुर्जर शैली है। ओसियां के प्रारंभिक वर्ग के मन्दिर तथा मूर्तियां अपनी योजना, अलंकरण, अंकन सहजता, स्वाभाविकता तथा भावसम्प्रेषण की दृष्टि से पूर्ववर्ती गुप्तकालीन परंपरा के निकट और उनका परवर्ती विकास दर्शाती है, जबकि परवर्ती मन्दिर और मूर्तियां रुढिगत क्षेत्रीय एवं पूर्व मध्यकालीन विशेषताओं वाली हैं।[13] ओसियां के मन्दिरों तथा मूर्तिशिल्प में चिन्हित धार्मिक सहिष्णुता को इन आधारों पर निर्धारित किया जा सकता है।

1. पंचायत मंदिरों का निर्माण
2. जैन मन्दिर भित्तियों पर हिन्दू-देवी देवताओं का अंकन तथा वैष्णव, शाक्त-शैव मन्दिरों पर तीर्थंकों का अंकन,
3. संघाट मूर्तियों का निर्माण।

धार्मिक सहिष्णुता संयुक्त मूर्तियों एवं पंचायतन पूजा द्वारा प्राप्त की गई। एक सम्प्रदाय के दूसरे सम्प्रदाय से मिलन के प्रयासों के प्रमाण साहित्य तथा कला में प्राप्त होते है। हरिहर, अर्ध नारीश्वर, हरि-हर-पितामह, हरिहर-पितामह सूर्य तथा पंचायतन लिंग की मूर्तियां विभिन्न हिन्दू, धार्मिक सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित करने के प्रयास के ही मूर्त उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त, वैष्णव, शैव तथा जैन धर्मो का अस्तित्व तथा एक ही स्थान पर उनके मन्दिरों का निर्माण उनके अनुयायियों के उदार दृष्टिकोण का भी परिचायक है।

अपरंच, एकात्मवाद तथा पंचायतनपूजा की संकल्पना ने साम्प्रदायिक समन्वय की ओर अधिक बल दिया। पंचायतन पूजा के अन्तर्गत विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य तथा शक्ति के पांच प्रतीकों की पूजा की जाती थी। प्रत्येक देव की प्रधानता के आधार पर उस देव का प्रतीक बीच में तथा अन्य चार चारों कोनों में रखकर ही किसी देव की महत्ता को व्यक्त किया जाता था। इस युग में पंचायतन मंदिरों की योजना में पंचदेवों की पूजा की उपरोक्त विधि की पुष्टि होती है। ओसियां स्थित हरिहर, सचियामाता तथा महावीर के मन्दिर इसी योजना के अनुसार निर्मित हैं।

ओसियां वर्ग के मन्दिरों में सर्वाधिक पूर्ण मन्दिर के रुप में महावीर (जैन मन्दिर) मन्दिर का उल्लेख किया जा सकता है। इसके विविध अंगों में गर्भगृह, एक बन्द कक्ष तथा खुला मण्डप की गणना की जा सकती है। खुले मण्डप के सम्मुख एक अलंकृत तोरण है। यह मन्दिर मूलत: 8वीं शताब्दी में निर्मित हुआ प्रतीत होता है। इसमें वृद्धि एवं पुनर्नवीनीकरण का कार्य 10 वीं शताब्दी में सम्पन्न हुआ। सम्पूर्ण मन्दिर में व्याप्त शैलीगत परिवर्तनों से इसकी पुष्टि होती है। यह परिवर्तन स्तम्भों की बनावट में विशेषत: दृष्टिगत होता है। मूल मन्दिर से जुडे प्रथम मण्डप (बन्द कक्ष) तथा द्वितीय खुले मण्डप के स्तम्भों

की तुलना करने पर शैलीगत परिवर्तन का आभास होता है। खुले मण्डप का निर्माण सीढ़ियों के ऊपर किये जाने के कारण इसे 'नाल मण्डप' भी कहा जाता है। इस मंदिर का अलंकृत तोरण भी वाद की रचना है। इस मन्दिर के खुले मण्डप के स्तंभ उल्लेखनीय हैं। उनको गुप्तोत्तरयुगीन स्तंभों के अधिकतम विकसित रुप का प्रतिनिधि माना जाता है।[14]

मूल मन्दिर के अतिरिक्त चार कोने पर चार प्रतीक मन्दिर है दो पूर्वी भाग पर तथा दो पश्चिमी भाग पर। ये सभी प्रदक्षिणापथ से जोडे गये हैं। इन सभी द्वार-चौखट विद्या देवियों की मूर्तियों से अलंकृत है। किन्तु पूर्वी मन्दिरों में द्वार चौखट पर महावीर तथा पार्श्वनाथ की मूर्तियां अंकित है। अन्तराल पूर्ण विकसित पुष्पों तथा घण्टपल्लवों से सुसज्जित है। स्तंभ पर दोनों तरफ चंवर धारिणी अंकित है। इसके अतिरिक्त नेमीनाथ के जन्म, मुक्ति, जिन कल्याणक, युद्ध दृश्य, नृत्य एवं गायन के दृश्य अंकित है।

पंचायतन निर्माण के अतिरिक्त मुख्य मन्दिर के उत्तर-पूर्व में एक ओर मन्दिर है। इसमें, गर्भगृह, अन्तराल तथा महामण्डप है। द्वार चौखट विद्या देवियों से अंकित है तथा बाह्य जंघाओं पर जिन मूर्तियां अंकित हैं। चार कोने पर दिकपाल तथा बाह्य हिस्सों पर अप्सरा मूर्तियों का अंकन मिलता है।

पंचायतन प्रकार के मंदिरों में दूसरा उदाहरण है-सच्चियामाता का मन्दिर ओसवालों की आराध्या यह देवी स्वयं में धार्मिक समन्वय का अद्भुत उदाहरण है। यह मंदिर सचियाय माता या सच्चिका को समर्पित है, जो महिषमर्दिनी का ही एक अन्य नाम माना गया है। ओसियां में जैन धर्म के आविर्भाव एवं विकास के साथ ही देवी के नाम में परिवर्तन करके सच्चियाय माता कर दिया गया। उपकेशगच्छ की पट्टावली[15] में ओसियां में हिन्दुओं के जैन धर्म ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है। इसके परिणामस्वरुप हिन्दुओं में लोकप्रिय महिषमर्दिनी देवी का नाम परिवर्तन सच्चिका में हो गया। यह तथ्य महिषमर्दिनी स्वरुप की सच्चिका अभिलिखित मूर्ति, जो सच्चियामाता मंदिर के गर्भगृह के पृष्ठभाग की प्रमुख ताख में प्रतिष्ठित है, से भी होता है। विक्रम संवत 1234 का एक अभिलेख जो इस मूर्ति के निकट उत्कीर्ण है, चण्डिका, शीतला, सच्चिका, क्षेमंकरी तथा क्षेत्रपाल की मूर्तियों की मंदिर में स्थापना का उल्लेख करता है। उपकेशगच्छपट्टावली में ओसियां के निवासियों की कुल देवी या अधिष्ठात्री देवी का नाम चण्डिका बतलाया गया तथा रत्नप्रभसूरि द्वारा देवी को पशु बलि लेने से रोकने का उल्लेख मिलता है। देवी के शाकाहारी भोज्य पदार्थ स्वीकारने और मांसाहारी न रहने की वचनबद्धता के कारण ही देवी को 'सत्यका' कहा गया है। खतरगच्छवृहद्धवली में भी चामुण्डा देवी के अहिंसक और रौद्र से सौम्य स्वरुप में परिवर्तित होने का उल्लेख मिलता है।

रेवाडा से प्राप्त एक अभिलिखित (1237 विक्रम संवत)[16] महिषमर्दिनी की मूर्ति इस मत को और अधिक पुष्ट करती है। इस अभिलेख में मूर्ति का नाम सच्चिका है। इसके अनुसार विक्रम संवत 1237 में फाल्गुन मास की द्वितीया, मंगलवार को उपकेशगच्छ की एक गणिनी ने देवी सच्चिका की इस मूर्ति की स्थापना करवाई। मूर्ति में महिषासुर पूर्ण पशु रुप में देवी के चरण तल से कुचला जा रहा है। इस मूर्ति का ऊपरी भाग भग्न है फिर भी यह महिषमर्दिनी की ही प्रतिमा है क्योंकि महिष की पूंछ को पकडते हुए सिंह भी अंकित किया गया है। राजस्थान में महिषमर्दिनी के सच्चिका में रुपान्तरण का यह स्पष्ट उदाहरण है। साथ ही यह ब्राह्मण तथा जैन धर्मो के परस्पर समन्वयात्मक संबंधों एवं यहां के निवासियों द्वारा शक्ति पूजन एवं जैन धर्म के प्रति आस्था की सूचना देता है।

मुख्य मंदिर के चारों ओर कई छोटे-छोटे वैष्णव मंदिर है। इनमें से एक विष्णु को समर्पित है। मंदिर के बाह्य भाग की ताखों में गणेश एवं सूर्य की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। विष्णु एवं संकर्षण की मूर्तियां मंडप में अंकित की गई है। तथा अर्ध नारीश्वर एवं गणेश की प्रतिमाएं गर्भगृह की बाह्य ताखों में उत्कीर्ण है। यह विभिन्न देवताओं के सामन्जस्य का संकेत है।

ओसियां के जैन मंदिरों में हिन्दू-देवी-देवताओं की मूर्तियों का अंकन तथा हिन्दू मंदिरों में तीर्थंकरों का अंकन भी इस स्थान की कला में धार्मिक सहिष्णुता का परिचय करवाती है। ओसियां के हरिहर मन्दिर तथा सूर्य मदिर 3 (आठवीं शताब्दी ई) पर तीर्थंकर की मूर्तियां अंकित हैं। सूर्यमंदिर की कर्ण रचिकाओं में पार्श्वनाथ तथा नटराज शिव का अंकन मिलता है। वणिक वर्ग की प्रधानता के कारण गणेश और कुबेर के अतिरिक्त यहां धन की देवी लक्ष्मी के गजलक्ष्मी स्वरुप को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। जैन मंदिरों के पेड़या भाग पर यक्षी तथा विद्यादेवियों का अंकन मिलता है। ललाट बिम्ब में गरुडवाही विष्णु अथवा चार पुरुषों द्वारा उठाए गये किरीट मुख का प्रदर्शन ब्राह्मण और जैन मन्दिरों पर समान रुप से दिखलाई पडता है, जो गर्भगृह में आराध्य देवों के अभिषेक से संबंधित हो सकता है। जैन मन्दिर में तीर्थंकरों की मूर्तियों के अतिरिक्त अप्सराओं का विभिन्न मुद्राओं में अंकन मिलता है। गंगा, यमुना, गणेश, कुबेर,अष्टदिक्पाल भी अलंकृत हैं। इनके अतिरिक्त चक्रेश्वरी, अम्बिका, सरस्वती, रोहिणी, प्रज्ञापति, व्रजशृंखला, वज्रमुक्षा महाकाली, काली, गौरी, गांधर्वी, वैराटी आदि।[17] ये सभी मूर्तियां ब्राह्मण धर्म की देवी मूर्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

संघाट या संयुक्त प्रतिमाएं भारतीय धार्मिक समन्वयवादिता की द्योतक हैं। इन प्रतिमाओं के माधयम से विभिन्न सम्प्रदायों के प्रधान देवी देवताओं को एक साथ एक ही प्रतिमा में रुपायत किया गया। ये संघाट मूर्तियां कहलाई। ओसियां में हरिहर, अर्धनारीश्वर तथा हरिहरहिरण्यगर्भ के रुप में संघाट मूर्तियों का उल्लेख मिलता है। हरिहर की संयुक्त मूर्ति की संकल्पना का प्रारंभिक रुपांकन हुविष्क की स्वर्ण मुद्रा पर अंकित है। जिसमें वह विष्णु तथा शिव के आयुध धारण किये हुए अंकित है। ओसियां के वैष्णव मंदिरों की ताख की हरिहर की प्रतिमा मिलती है।

महावीर जैन मंदिर तथा सचियामाता के मन्दिरों का पंचायतन निर्माण तथा ओसियां के मन्दिरों में विभिन्न सम्प्रदायों की मूर्तियों का अंकन तथा संघाट मूर्तियों का निर्माण निश्चित रुप से धार्मिक सहिष्णुता एवं समन्वय का प्रतीक है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *जेम्स फर्ग्युसन: हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर Vol. I & II, Book 5, Chap. I, Low Price Publications, Delhi 2006*

2. नीलिमा वसिष्ठ: राजस्थान की मूर्तिकला परंपरा, पृ. 101 राजस्थान ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2001
3. ऋग्वेद, ख 141, 2
4. वही, 9, 102, 4
5. बी. एन शर्मा, वैनायकी इन इण्डियन आर्ट। आइकोनोग्राफी ऑफ वैनायकी, पृ. 172 अभिनव पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1979
6. यू.पी. शाह आईकोनोग्राफी ऑफ चक्रेश्वरी दि यक्षी ऑफ ऋषभनाथ'' ज.ओ.इ. XX 1976-71, पृ. 286
7. ए.के.जैन ''सम कॉमन एलीमेन्टस इन दि जैन एण्ड हिन्दू पैन्थीयन यक्षाज एण्ड यक्षिणीज'' जैन एण्टीक्वेटी XVIII (2) 1952 पृ. 32-35
8. कल्पसूत्र, 31-46, यू.पी.शाह स्टडीज इन जैन आर्ट, पृ. 105-108 जैन कलचरल रिसर्च सोसायटी, वाराणसी, 1955
9. बी.एम.हरिराव: ''दि सिम्बॉलिज्म ऑफ गजलक्ष्मी, जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री अप्रैल 1970 पृ. 75
10. दयाराम साहनी, 'ए नोट ऑन दू ब्रास इमेजेज', जर्नल ऑफ यू. पी. हिस्टोरिकल सोसायटी, लखनऊ द्वितीय 1919-21 पृ. 68-72
11. वी.ए. स्मिथ ''दि जैन स्तूप एण्ड अहर एण्टीक्वीटीज, द्वितीय संस्करण, आर्कियोलॉजिल सर्वे ऑफ इण्डिया, रिपोर्टस, न्यू इम्पीथिल सीरीज, 1969, पृ. 56
12. मीनाक्षी कासलीवाल, भारतीय मूर्ति शिल्प एवं स्थापत्य कला पृ.264, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 2011
13. डॉ. दुर्गानन्द तिवारी, ओसियां के मन्दिरों की देव-मूर्तियां, पृ. 169, कला प्रकाशन, वाराणसी, 1999
14. डॉ. महेशचन्द्र जोशी: युग युगीन भारतीय कला, पृ. 2006, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 2006
15. आशा कालिया: आर्ट ऑफ ओसियां टेम्पल्स, पृ. 4-5, अभिनव प्रकाशन, 1982
16. ए. एफ. आर. हार्नली: दि पट्टावली एण्ड लिस्ट ऑफ पेन्टिग्स ऑफ दि उपकेशगच्छ, इण्डियन एण्टिक्वेरी, पृ. 233-243
17. डॉ. दुर्गानन्दन तिवारी, ओसियां के मन्दिरों की देव मूर्तियां पृ. 6, कला प्रकाशन, वाराणसी, 1999
18. यह प्रतिमा सरदार संग्रहालय, जोधपुर में संरक्षित है।
19. मूर्तियों के विस्तृत अध्ययन हेतु देखें आशा कालिया, आर्ट ऑफ ओसियां टेम्पल्स, पृ. 148-152 अभिनव प्रकाशन, 1982

अमेरिकी कलाकार एंडी वारहोल (प्रसिद्ध सीरिग्राफी कलाकार) की कला यात्रा

आरती शर्मा
शोध छात्रा, दयालबाग़ शिक्षण संस्थान, आगरा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

मानवीय जीवन में कला मनुष्य को चरितार्थ करती है। जो भावों को रेखाओं व रंगों के माध्यम से कलाकार द्वारा प्रस्तुत होती है। कलाकार व्यक्तिगत, सामाजिक व दैनिक जीवन को एक कोरे अन्तराल पर विभिन्न माध्यमों में प्रस्तुत करता है, जो उसकी पहचान बन जाता है।

एंडी वारहोल पॉप कला के सबसे महत्वपूर्ण कलाकारों में से एक थे, जिनका जन्म 6 अगस्त 1928 में अमेरिका में पिट्सबर्ग नामक स्थान पर हुआ था। एंडी वारहोल का वास्तविक नाम एंड्रयू वारहोला था जिसे 1949 में स्वयं एंडी वारहोल ने बदला था। जिसे बाद में एक पत्रिका लेख सक्सेज इज ए जॉब इन न्यूयॉर्क (Success is job in New York) में ड्रॉइन्ग बाय वारहोल (Drawing by Warhol) के रुप में प्रसिद्धी प्राप्त हुई। एंडी वारहोल पॉप कला के प्रमुख कलाकार थे जिन्हें प्रिन्स ऑफ पॉप के रुप में भी जाना जाता है।

एंडी वारहोल 1937 में बचपन में प्राथमिक शिक्षा के दौरान तन्त्रिका तन्त्र को प्रभावित करने वाले रोग कॉरिया के शिकार हुए। जिसके कारण उन्हें काफी समय घर में बिस्तर पर ही व्यतीत करना पड़ा। अपनी लम्बी बीमारी के दौरान प्रसिद्धी प्राप्त फिल्मी कलाकारों के चित्र इकट्ठे करते थे। बाद में एंडी वारहोल ने जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण समय की संज्ञा दी। इस समय अवधि को अपने चरित्र विकास व उन्नति का श्रेय दिया तथा अपने जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण समय की संज्ञा दी।

कला यात्रा एवं कलात्मक विकास – माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् एंडी वारहोल ने अपनी उच्च माध्यमिक शिक्षा के साथ ही कला शिक्षा प्राप्त करने हेतु कार्नेगी संस्थान, पिट्सबर्ग में दाखिला लिया। वाणिज्य कला (Commercial Art) की शिक्षा एंडी वारहोल ने चार वर्ष (1945-1949) तक ली। सन् 1949 में वे न्यूयॉर्क चले गये। न्यूयॉर्क में एंडी वारहोल ने बतौर वाणिज्य कलाकार वोग (Vogue), ग्लैमर (Glamour) एवं हार्परस् बाजार (Harper's Bazaar) नाम की पत्रिकाओं हेतु व्याख्याकर्ता के रुप में कार्य किया। एंडी वारहोल की भिन्न कला ने अति शीघ्र जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और वे बहुत जल्दी सफल व्याख्याकर्ता बन गये। एंडी वारहोल अपनी कलात्मक गुणवत्ता के कारण जाने गये।

सन् 1950 के प्रारम्भिक समय के दौरान एंडी वारहोल ने अपनी स्वयं निर्मित धब्बेदार इंक कला तकनीक से काफी वाणिज्य विज्ञापनों का निर्माण किया, जिनमें से मुख्य जूते का विज्ञापन था। सन् 1952 में एंडी वारहोल की प्रथम एकल प्रदर्शनी न्यूयॉर्क की ह्यूगो गैलरी में लगी। सन् 1956 में एंडी ने रीनोल्ड म्यूजियम ऑफ मॉडर्न आर्ट, न्यूयार्क में सामूहिक प्रदर्शनी में भाग लिया। एंडी वारहोल निरन्तर वाणिज्य कला के क्षेत्र में अपना अद्भुत प्रदर्शन देते रहे। 1950 के पूरे दशक तक एंडी वारहोल वाणिज्य कला में निरन्तर प्रयासरत रहे। 1960 के प्रारम्भ में एंडी वारहोल ने पॉप कला के क्षेत्र में नाम कमाने का निश्चय किया। पॉप कला एक नवीन शैली थी, जो कि 1950 के दशक में इंग्लैंड में प्रारम्भ हुई थी। पॉप कला दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली प्रसिद्ध व्यक्ति या वस्तु को प्राकृतिक अनुवाद के रुप में प्रस्तुत करना है। वारहोल ने

धब्बेदार इंक कला तकनीक से अपना ध्यान रुपान्तरित कर चित्रकारी एवं कैनवास पर कार्य करना प्रारम्भ किया। परन्तु वारहोल के समक्ष दुविधा यह थी कि वह क्या बनायें? वारहोल ने कोक की बोतल व हास्य पट्टियों से अपनी चित्रकारी की शुरुआत की। वारहोल ने काफी चित्र बनाये परन्तु उन्हे अपनी इच्छानुसार लोगों का आकर्षण प्राप्त नहीं हो रहा था।

दिसम्बर 1961 में वारहोल ने अपनी एक मित्र को 50 डॉलर दिये, जिसके बदले उसने अपनी सलाह दी कि एंडी वह बनायें जो वे अपने दैनिक जीवन में सर्वाधिक पसन्द करते हों। कदाचित् एंडी ने मुद्रा व सूप की कैन का चित्रण किया।

कला वीथिका में एंडी वारहोल की प्रथम प्रदर्शनी 9 जुलाई 1962 में लॉस एंजिलिस की फैरस गैलरी में लगी। जहाँ पर एंडी ने कैम्पबैल सूप के 32 प्रकार के सूप कैनवास पर प्रदर्शित किये। इन सभी 32 कैनवास के सैट को एंडी ने 1000 डॉलर में बेचा।

धीरे-धीरे एंडी वारहोल वाणिज्य कला से अन्तराल बनाते हुए हस्तनिर्मित कलाकृतियों के स्थान पर रचनात्मक व कलात्मक प्रक्रिया में कार्य करना प्रारम्भ किया। वारहोल ने सन् 1962 में सिल्क स्क्रीन प्रक्रिया की खोज कर उसे बिना किसी अवरोध के आवृतिपूर्वक प्रयोग किया।

सन् 1963 में एंडी वारहोल ने अपना एक स्टूडियो "द फैक्ट्री" खोला, जहाँ कलाकार, लेखक, संगीतज्ञ एंव अन्य प्रसिद्धी प्राप्त व्यक्ति आकर एंडी केप्रति अपने विचार व्यक्त करते थे। जिसके कारण एंडी को प्रसिद्ध होने में अधिक समय नहीं लगा। तत्पश्चात एंडी ने सन् 1964 में अन्य पॉप कलाकारों उदाहरण स्वरुप बिल्लेएपिल व रॉबर्टवॉट्स के साथ मिलकर पॉल बायन्चिनी की अपर ईस्ट साइट गैलरी में "द अमेरिकन सुपर मार्केट" (The American Super Market) नाम की प्रदर्शनी लगायी। जहाँ पर 6 डॉलर के स्वहस्ताक्षर (Autogram) एंव एंडी की कैम्पबैल सूप चित्राकृतियाँ 1500 डॉलर में बेची गयीं।

03 जून 1968 को एक असन्तुष्ट अभिनेत्री वैलेरी सोलानस ने आवेग में आकर वारहोल के स्टूडियो "द फैक्ट्री" में एंडी वारहोल व मारियो अमाया (कला आलोचक व संग्रहालय अध्यक्ष) को गोली मार दी। मारियो अमाया को कम चोट लगी परन्तु वारहोल की स्थिती गम्भीर थी। जिसे डॉक्टरों ने 30 मिनट बाद मृत घोषित कर दिया परन्तु एक आशा के रुप में डॉक्टरों ने वारहोल की छाती काटकर उन्हे बचाने का अन्तिम प्रयास किया, जो कि सफल सिद्ध हुआ। वारहोल को पूर्णत: ठीक होने में काफी वक्त लग गया।

1960 के दशक की तुलना में 1970 का दशक एंडी वारहोल के लिए अधिक शान्तिपूर्ण रहा। 1970 के दशक में एंडी वारहोल ने अधिक उपलब्धियाँ प्राप्त नहीं की, परन्तु जितने भी कार्य किये वे प्रभावशाली रहे। सन् 1973 में एंडी ने चीनी कम्यूनिस्ट पार्टी के लीडर माओ जेडॉग का शबीह चित्र (Potrait) बनाया। जो अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। इसी दौरान एंडी ने 'इन्टरव्यू' (Interview) नाम की पत्रिका प्रकाशित की। सन् 1975 में एंडी वारहोल ने साथ-साथ एक पुस्तक "द फिलोसोफी ऑफ एंडी वारहोल"(The Philosophy of Andy Warhol) का विमोचन किया। एंडी वारहोल ने लम्बे समय से रहे मित्र स्टूअर्ट पिवर के साथ मिलकर सन् 1979 में "न्यूयॉर्क अकेडमी ऑफ आर्ट"(New York Academy of Art) की नींव रखी।

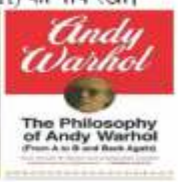

1980 के दशक में एंडी वारहोल को केवल व्यापारिक कलाकार की संज्ञा देकर काफी आलोचित किया गया। सन् 1979 में समालोचकों ने एंडी की प्रदर्शनी में 1970 के दशक के लगे शबीह चित्रों को बाह्य दिखावा युक्त, अत्यन्त सरल एंव कला क्षेत्र का ना होकर अपितु वाणिज्य क्षेत्र से जुड़ा बताया। इसके अतिरिक्त सन् 1980 में "जेविश म्यूजियम"(Jewish Museum) में लगे 10 शबीह चित्रों की आलोचना का भी एंडी वारहोल को सामना करना पड़ा। इन सभी घटनाओंके बावजूद एंडी वारहोल अपने लक्ष्य व अपनी मेहनत पर अड़िग रहे। वे निरन्तर अपने कला क्षेत्र में कार्य करते रहे।

अन्य कला क्षेत्रों में योगदान – एंडी वारहोल प्रमुखत: सीग्रिाफी कला के कलाकार माने जाते हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रखर था। वे केवल एक क्षेत्र में निपुण न होते हुए, कई प्रकार की प्रतिभाओं के धनी थे। उदाहरण स्वरुप- चलचित्र, संगीत, किताबें व प्रिन्ट, मूर्तिकला, वस्तुकोष, टेलीविज़न, फैशन, अभिनय कला, नाट्यगृह एंव फोटोग्राफी।

प्रस्तुत सभी कलाएँ व कला क्षेत्र किसी न किसी प्रकार से एंडी वारहोल से जुड़ी रही है। यदि चलचित्रों (फिल्मों) का क्षेत्र देखें तो वारहोल ने सन् 1963 से 1968 के मध्य लगभग 60 से अधिक पूर्ण फिल्मों का व साथ ही साथ लगभग 500 छोटी श्याम-श्वेत फिल्मों का निर्माण किया है। इन सभी में से सबसे अधिक प्रसिद्ध फिल्म "स्लीप"(Sleep 1963) रही। जिसके अभिनेता, कवि जॉन जिओर्नो थे। एंडी से इनकी मुलाकात सन् 1962 की स्टेबल गैलरी में लगी प्रदर्शनी के दौरान हुई थी।

1960 के दशक के मध्य एंडी वारहोल ने संगीत क्षेत्र में भी योगदान दिया व एक बैन्ड "द वैलवेट अन्डरग्राउन्ड" के मैनेजर बन गये। सन् 1966 में एंडी ने बैन्ड की प्रथम एलबम "द वैलवेट अन्डरग्राउन्ड एण्ड निको" का निर्माण किया। परन्तु प्रथम एलबम के बाद ही एंडी व बैन्ड के लीडर के मध्य मतभेद हुआ तथा एंडी इस क्षेत्र से हट गये। इसके अलावा एंडी ने कई एलबम के मुख्य पृष्ठों की डिज़ायन तैयार की।

ISSN 2277-5587

उदाहरण- द रोलिंग स्टोन्स, स्टिकी फिन्गर्स(1971), द एकेडमी इन पैरिल(1972), लव यू लिव(1977), एंव होनी सोइट(1981)।
किताबें व प्रिन्ट के रुप में 1950 के दशक के प्रारम्भ में एंडी वारहोल ने अपनी कृतियों के कई पोर्टफोलियो प्रस्तुत किये।

इसके उपरान्त 1954 में एंडी द्वारा प्रथम पुस्तक ''25 कैट्स नेम सैम एण्ड वन ब्लू पुसी'' प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त ''ए गोल्ड बुक'', ''वाइल्ड रैस्पबैरीज़'' व ''होली कैट्स'' पुस्तकें स्वंय-निर्मित थीं। प्रसिद्धी प्राप्त कर लेने के बाद एंडी वारहोल की वाणिज्यिकी रुप में निम्नवत् पुस्तकों का प्रकाशन हुआ-''ए नोबल''(1968), ''द फिलोसोफी ऑफ एंडी वारहोल''(1975), ''पॉपिज़्म-द वारहोल''(1980), ''द एंडी वारहोल डायरीज़''(1989)। इन सभी के अतिरिक्त एंडी ने एक फैशन पत्रिका ''इन्टरव्यू'' का भी प्रकाशन किया।
एंडी वारहोल ने मूर्तिकला के रुप में ब्रिलो सूप पैड्स का डिब्बा, हाइन्ज कैचप एंव कैम्पबैल टोमैटो जूस का डिब्बा निर्मित किया।
सन् 1973 में एंडी ने वस्तुकोश प्रारम्भ किया। जिसमें वे पत्र, अखबार, सोविनायर(याद रखने हेतु कोई वस्तु), बच्चों की वस्तुऐं एंव वायुयान टिकिटों का संग्रह करते थे। एंडी की मृत्यू के बाद उनके कोश में लगभग 600 वस्तुऐं पायी गयीं, जिन्हें म्यूजियम में संरक्षित कर दिया गया है।

एंडी वारहोल को टेलिविज़न का अत्यन्त शौक था। बतौर अपने शौक के एंडी ने दो टेलिविज़ शो निर्मित किये-''एंडी वारहोलस् टी.वी.'' (1982), एंव ''एंडी वारहोलस् फिफ्टीन मिनट''(1986)। इसके अतिरिक्त एंडी ने 05 मई 1971 को लामामा थिएटर, न्यूयॉर्क भी खोला।
एंडी वारहोल ने अपनी सिल्क स्क्रीन प्रक्रिया हेतु फोटोग्राफी भी की। इन्ही फोटोग्रास की सहायता से वे सिल्क स्क्रीन चित्रण करते थे। इसी शौक के आधार पर एंडी की फोटोग्राफी का विशाल संग्रह उपलब्ध है। एंडी वारहोल की कला यात्रा में सम्मलित रही विभिन्न विषेशताऐं एंडी को प्रखर व विभिन्न विधा सम्पन्न व्यक्ति बनाती है।

सीरीग्राफी कला(सिल्क स्क्रीन) में योगदान

1950 के दशक में एंडी वारहोल धब्बेदार स्याही से वाणिज्य क्षेत्र में कार्य पर रहे थे। परन्तु अभाग्यवश एंडी ने यह पाया कि वह कैनवास पर अधिक तीव्रता से चित्रकारी नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होने जुलाई 1962 में सिल्क स्क्रीन प्रक्रिया की खोज की। तत्काल ही एंडी वारहोल ने इस तकनीक में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। जिसके अन्तर्गत उन्होने अमेरिकन वस्तुओं का मूर्त रुप जैसे-मशरुम मेघ, विधुत कुर्सीयाँ, कैम्पबैल सूप की कैन, कोका कोला की बोतल, व प्रसिद्धी प्राप्त मनुष्यों जैसे-मार्लियन मोनरो, एल्विस प्रिसले, ट्रॉय डोनाह्यू, मुहम्मद अली व एलिजाबेथ टेलर के अतिरिक्त अखबार के मुख्य शीर्षक और अपने विचारों को सिल्क स्क्रीन प्रक्रिया के द्वारा व्यक्त किया।
एंडी वारहोल ने हर उस वस्तु को बनाया जिन्हे वह स्वयं तो पसन्द करता ही था परन्तु सामान्य मनुष्य भी उस वस्तु या व्यक्ति को कला के माध्यम से देखने की इच्छा रखता था। एंडी ने बचपन में बीमारी के दौरान एकत्रित किये गऐ चित्रों को अपनी सीरीग्राफी प्रक्रिया का विषय बनाया। एंडी स्वयं संसार की वस्तुओं व व्यक्तियों से आकर्षित होते थे तथा सामान्य व्यक्ति उनकी कृतियों से आकर्षित होता था।
एंडी वारहोल की प्रथम पॉप कला की एकल प्रदर्शिनी 6-24 नवम्बर 1962 में एलीनॉर वार्ड की स्टेबल गैलरी में लगी। इस पॉप कला प्रदर्शिनी के अन्तर्गत एंडी वारहोल ने सिल्क स्क्रीन प्रक्रिया में निर्मित मार्लियन मोनरो, 100 सूप कैन, 100 कोक बोतल एंव 100 डॉलर बिल के चित्र प्रदर्शित किये।

सिल्क स्क्रीन प्रक्रिया के अन्तर्गत एंडी वारहोल ने पुर्ण दृढ़ता व लगन से कार्य किया। जिसके फलस्वरुप सीरीग्राफी तकनीक का नाम लेने पर सबसे पहले अमेरिकन कलाकार एंडी वारहोल का नाम आता है।
21 फरवरी 1987 को नियमित पित्ताशय सर्जरी हेतु एंडी वारहोल अस्पताल गये। सर्जरी सफल रही परन्तु अगले ही दिन 22 फरवरी 1987 को उनका देहान्त सुबह 6:32 पर हो गया। 58 साल की उम्र में एंडी वारहोल अत्यन्त सफल व प्रसिद्धी प्राप्त कलाकार के रुप में प्रस्तुत हुए। जो कि वर्तमान में भी प्रेरणा प्रदान करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. *Beckett, Wendy sisters, American Masterpieces, D K Publishing, Inc. New York, 2000.*
2. *Charlotte, Garling, 100 great artist, Eagle adition, London.*
3. *Collins Judith, Techniques of the modern Artist, Greenwich Adition, Welchman John, London. Chanlder David, Anfam David A.*
4. *Greenburg, Jan and Andy Warhol-Prince of pop, Delacorte press, New York, 2004. Jordan, Sandra*
5. *Scherman, Tony and Pop-The genius of Andy Warhol, Harper's Collins publication, Dalton, David, New York, 2009.*
6. *Stromquist, Anne, Simple screen printing, Lark book, New York, 2005.*
7. *www.en.wikipedia.org/wiki/andywarhol*

भारतीय साहित्य में लोक का स्वरुप

गणेश कुमार
शोध छात्र, जेएनयू, नई दिल्ली

shodhshree@gmail.com

लोक शब्द की उत्पत्ति 'सिद्धांत कौमुदी' के अनुसार 'लोक् दर्शने' धातु में घञ् प्रत्यय जोड़ने से हुई है। इस धातु का अर्थ 'देखना' अथवा अवलोकन' के भावबोध से है। जिसका लट् लकार के अन्य पुरुष के एक वचन का रुप 'लोकते' है। अत: लोक शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। इस प्रकार वह समस्त जन-समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहा जा सकता है। 'लोक' शब्द से ही हिन्दी के 'लोग' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जा सकती है जिसका तात्पर्य है 'सर्वसाधारण जनता'। विभिन्न शब्दकोशों में 'लोक' - लोग, मानव, यश, कीर्ति, सृष्टि के विभाग आदि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[1]

हलायुद्ध कोश में 'लोक' को मनुष्य, प्रजा, जगत और भुवन के अर्थ में माना गया है।[2] श्री वी. एस. आप्टे ने 'लोक' को मानव जाति, प्रजा समूह, प्रान्त, कक्ष, सात और चौदह की संख्या, संसार आदि के अर्थ में प्रयुक्त किया।[3]

पाश्चात्य शब्दकोश में 'लोक' का समानार्थक शब्द Folk को माना गया है। फोक (Folk) शब्द की व्युत्पत्ति ऐंग्लो सेक्सन शब्द Folk से मानी जाती है। जर्मन भाषा में इसे वोल्क (Volk) कहते हैं। डॉ. बार्कर ने 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि फोक शब्द सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। परन्तु यदि इसका विस्तृत अर्थ लिया जाए तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के सभी लोग इस नाम से पुकारे जा सकते हैं।

Wesbster's New Twentieth Centuray Dictionary में लोक की व्याख्या इस प्रकार की गई है-

(1) People in general, or any part of them without distinction, formerly alike in both singular and plural, but now the plural folks is most used, as folks will talk, some folks say so.

(2) The members of one's family; one's relatives; a collequial use in the plural in the United States; as the folk down home on the farm, his folkes are Yankees.

(3) A race of people, a nation, a community.

लोक शब्द अत्यंत प्राचीन है। वेदों में भी उसका उल्लेख पाया जाता है। ऋग्वेद में इसका प्रयोग 'साधारण जनता' के संदर्भ में हुआ है। वेद में लोक शब्द के लिए 'जन' शब्द का प्रयोग मिलता है। विश्वामित्र का यह मंत्र:

"य इमे रोदसी उभे:, अहमिन्द्रमतुष्टवम।
विश्वामित्रस्य रक्षति; ब्रह्मेदं भारतंजनम्।"[4]

ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में 'लोक शब्द का प्रयोग जीव तथा स्थान दोनों के लिए हुआ है।

"नाभ्या आसीदंतरक्षि शीर्ष्णा यौ समवर्तत।
पद्भ्यौं भूमिर्दिश: श्रोत्रातथा लोकां अकल्पयन्।।"[5]

 ISSN 2277-5587

लोक' शब्द का अर्थ विराट समाज की ओर संकेत करता है। ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त के 10-90 मंत्र में कहा गया हैं कि:

''सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्।''

अर्थात् वह (लोक) विराट पुरुष है, जिसके हजारों सिर, हजारों आंखें एवं हजारों चरण हैं। अत: लोक पद का अभिप्रेत अर्थ साधारण जनसमाज ही है। इसी में विराट कल्पना समाहित हो सकती है। भूत-भविष्य वर्तमान में प्राप्त मानव-समाज की नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ, जिनमें उनके आचार व्यवहार, मान्यताएँ, धार्मिक आस्थाएँ तथा भौतिक द्वंद्वों के आधार पर उत्पन्न प्रतिक्रियाएँ आदि सभी सम्मिलित हैं, इस शब्द के अन्तर्भावित है। चूंकि इस नैसर्गिक प्रवृत्तियों का संबंध अभिव्यक्ति से है और अभिव्यक्ति का साहित्य से, अत: लोकाभिव्यक्ति जब अपने काव्यात्मक गुणों के कारण आलोचित होती है। तब उसे लोक साहित्य की संज्ञा दी जाती है।

''जैमिनीय उपनिषद् में 'लोक' शब्द का प्रयोग हुआ है:

''बहुव्याहितो वा अयं बहुतो लोक:।
क एतद् अस्य पुनरीहतो अयात्।'
(जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण- 3/28)

पाणिनी ने 'अष्टाध्यायी' में 'लोक' व 'सर्वलोक' शब्द का प्रयोग किया है। पाणिनी ने वेद से पृथक लोक को सत्ता स्वीकार की है। वररुचि ने अपने 'वार्तिको' में लोक शब्द का प्रयोग किया है।

महाभाष्यकार पतंजलि ने 'जनसाधारण' के संदर्भ में लोक शब्द का प्रयोग किया है। लोक शब्द के विभिन्न रुपों का विस्तार करते हुए लिखते हैं कि:

''कोषां शब्दनाम् लौकिकानां च। एकैकस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंश:। तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंशा:। तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी-गावी-गोता-गोपो तालिकेत्येव मादयोऽप्रभ्रंशा:।' (महाभाष्य: प्रथम आहिनक)

'महाभारत' में लोक को 'जनसाधारण' के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। महर्षि वेद व्यास ने 'महाभारत' की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह ग्रंथ अंधकार रुपी अज्ञान से व्यथित लोक (सामान्य जनता) की आंखों को ज्ञान रुपी अंजन की शलाका लगाकर खोलने वाला है।

''अज्ञानातिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टत:।
ज्ञानांजन शलाळभि: नेत्रो-मीलनकारकम्।''
(महाभाष्य: प्रथम आहनिक)

और, महाभारत में वर्ण्य-विषयों की यात्रा के संदर्भ में 'लोक' की चर्चा की गई है:

'पुराणानां चैव दिव्यानां,
कल्पनां युद्धकौशलम्।
वाक्य जाति विशेषाश्च: लोकयात्रा क्रमश्च य:।' (महाभारत-आदिपर्व- 1/84)

'श्रीमद्भगवद्गीता' में 'लोक' और 'लोक-संग्रह' शब्दों का प्रयोग बहुतायत रुप में हुआ है। लोक का यहाँ पर अर्थ 'साधारणजनता' के संदर्भ में आया है।

'कर्मणैवहिसंसिहिमास्थिता जनकादय:।
लोकसंग्रहमेवपि संपश्यनन्कर्तुमर्हसि।' (महाभाष्य प्रथम आह्निक)

भगवान कृष्ण ने स्वयं वेद से पृथक लोक को सत्ता को स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि कि मैं लोक और वेद में भी पुरुषोत्तम के नाम से प्रसिद्ध हूँ।

'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित: पुरुषोत्तमत:।' (गीता, 15/18)

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में 'वार्ता' शब्द का प्रयोग अर्थशास्त्र तथा राजनीति के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। मनु ने भी 'वार्ता' शब्द का प्रयोग 'अर्थशास्त्र' के संबंध में किया है।

'आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता: दण्डनीतिश्च शाश्वती।
विद्या हयेता: चतस्र: स्यु लोकसंस्थितिहेतवे।'

सम्राट अशोक के शिलालेखों में 'लोक शब्द का प्रयोग समस्त प्रजाजनों के संदर्भ में हुआ है।

'कतव्य भलेहित में सर्व लोक हित' - (अशोक की धर्मलिपियाँ प्रधान शिलालेख पहला खंड, 62)

बौद्ध धर्म के विकास के साथ मानव भवना का महत्व बढ़ने लगा और लोक शब्द मानवीय उत्कृष्टताओं का बोधक बन गया।

प्राकृत एवं अपभ्रंश में प्रयुक्त 'लोकजता' (लोक यात्रा) एवं 'लोकप्पकाय' (लोक प्रवाद) शब्द भी लौकिक आचारों का महत्व प्रकट करते हैं।

हिन्दी साहित्य में भी विभिन्न अर्थों में 'लोक' शब्द का प्रयोग हुआ है। संत साहित्य में 'लोक' शब्द के प्रयोग को देखने पर पता चलता है कि यह शब्द वेद के प्रतिकूल लोक परम्परा के अर्थ को अभिव्यंजित करता है।

संत साहित्य में 'लोक' शब्द का प्रयोग कहीं सारे संसार के अर्थ में, तो कहीं मृत्युलोक के अर्थ में और कहीं पृथ्वी के संदर्भ में हुआ है। संत कबीर 'लोक' को लोक-वेद की परंपरा में बहता हुआ मानते हैं और सतगुरु को ही उद्धारक कहते हैं:

'पीछे लागा जाई था, लोक वेद के साथ।
आगे से सतगुरू मिला दीपक दीया हाथि।'

सगुण भक्ति साहित्य में भी लोक शब्द सामान्यत: उपर्युक्त अर्थों में व्यंजित हुआ है। कवि गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में 'लोक' और 'वेद' की भेदात्मक स्थिति को स्पष्ट किया है:

'लोकहूँ वेद विदित सब काहू
लोकहि वेद सुसाहिब रीति।' (बालकाण्ड- 27/5)

अंग्रेजी में 'फोक' शब्द के लिए हिन्दी में 'लोक' शब्द प्रयुक्त किया जाता है। व्याकरणिक तौर पर और देशकाल के आधार पर शब्दों के अर्थों में विभिन्नता पाई जाती है। परन्तु लोक के लिए फोक शब्द ही अत्यधिक सारगर्भित नजर आता है। 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में डॉ वर्कर ने 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है ''एक आदिम जाति में वे सभी व्यक्ति 'लोक' (फोक) होते हैं जिनसे वह समुदाय बनता है और व्यापक अर्थ में यह शब्द सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या के लिए प्रयुक्त हो सकता है। फिर भी पाश्चात्य प्रकार की सभ्यता की दृष्टि से इस शब्द का साधारण प्रयोग (फोकलोर और फोकम्यूजिक जैसे समस्त पदों में) संकुचित अर्थ केवल उन्हीं के लिए होता है, जो नागरिक संस्कृति की धाराओं तथा विधिवत् शिक्षा से बाहर होते हैं, जो निरक्षर अथवा अल्पाक्षर होते हैं तथा जो गांवों और जनपदों में रहते हैं।''[4]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लोक को व्यक्ति की मन:स्थिति से

जोड़कर देखा है। उन्होंने लिखा है कि, ''सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सके। इसी लोक हृदय में लीन होने की दशा का नाम रसदशा है।''[5] शुक्ल जी आगे लिखते हैं ''मनुष्य लोकबद्ध प्राणी है। लोक के भीतर ही कविता क्या, किसी भी कला का प्रयोजन और विकास होता है।''[6]

आधुनिक काव्य में लोक के लिए ग्राम, जन शब्दों का भी प्रयोग देखने को मिलता है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने 'फोक' या 'लोक' शब्द के लिए 'ग्राम' शब्द का प्रयोग किया है। इसी आधार पर उन्होंने 'फोकसांग' के लिए ग्रामगीत शब्द का चयन किया है। लेकिन 'ग्राम' और 'लोक' शब्द के भावबोध में अत्यधिक असमानता है जिससे अर्थ परिवर्तन हो जाता है और लोक के पर्यायवाची के लिए ग्राम शब्द का प्रयोग भी असंगत है।

डॉ. सत्येन्द्र ने लोक के संदर्भ में लिखा है ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।''[7] हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व पुस्तक पर विचार करते हुए डॉ. रवीन्द्र भ्रमर ने 'लोक' को दो अर्थों में प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं कि ''लोक शब्द के प्रचलित अर्थ दो हैं- एक जो विश्व अथवा समाज और दूसरा जनसामान्य अथवा जनसाधारण। साहित्य अथवा संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करने वाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है किन्तु इस दृष्टि से केवल गांवों में ही नहीं वरन् नगरों, जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ वह मानव समाज, जो अपने परम्परा-प्रथित रीति-रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित अल्प सभ्य कहा जाता है, 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है।''[8]

लोक की व्यापक भावसत्ता को ग्राम या नगर की संकुचित सीमा में बद्ध नहीं किया जा सकता। इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिकृत जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिकृत रुचि वाले लोगों को समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।''[9] लोक साहित्य के प्रख्यात विद्वान डॉ. कुंज बिहारी दास ने लोक को व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि ''लोक जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रुप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।''[10] अर्थात The People that live in more or less primitive conditions out side the sphere of suphisticated influences. मानवीय विकास व राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में लोक की भूमिका अति आवश्यक है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल इस निर्माण प्रक्रिया की ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि ''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का स्वरुप है-अर्वाचीन मानव के लिए सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की छात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक व्यक्त रुप मानव, यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रुप है।''[11] डॉ. श्याम परमार लिखते हैं, ''लोक-साधारण जन-समाज है, जिनमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता, संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्राय: उल्लेख किया जाता है किन्तु 'लोक' दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है। वही समाज का गतिशील अंग है।''[12] 'लोक' के प्रायोगिक अर्थ को स्पष्ट करते हुए श्याम परमार आगे लिखते हैं कि ''आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में 'लोक' का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन-समाज, जिसमें पूर्व संचित परम्पराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है।''[13]

सुविख्यत चिंतक और मूर्धन्य निबन्धकार श्री विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं कि ''लोक देश का ही एक आनुभाविक रुप है।.... इसके सजातीय शब्द हैं- आलोक, लोचन (आंख), आलोचना (अच्छी तरह देखकर विवेचन करना), रोचन (प्रकाशन, सुंदर, शोभन, इसीलिए प्रीतिवार, प्रीतिकर संदेश, संतानोत्पत्ति का संदेश, इसी से संबद्ध फारसी का रोशन और रोशनी है), अवलोकन...। इस प्रकार लोक अपने में विशाल अर्थ समेटता है। श्रीकृष्ण जैसे अलौकिक चरित्र में भी आग्रह है कि मुझे भी लोक-यात्रा पूरी करनी है। यदि मैं न करुं तो यह लोक नष्ट हो जाएँ।''[14]

आचार्य नंदलाल कल्ला के अनुसार ''लोक विशद, व्यापक, विराट, विस्तृत, सर्वव्यापक, सार्वकालिक, सार्वदेशिक तथा परम्परानुमोदित मानसिकता है, जो किसी शास्त्रीय अथवा अभिजात्य संस्कारों तथा पाण्डित्य को लक्ष्मण रेखा में बद्ध नहीं है, लोक अनलंकृत है, अद्धत्रिम है, इसीलिए पुरातन होते हुए भी चिरनवीन रहता है। स्वाभाविकता इसकी पहचान है, सहजोद्रेकता इसका धर्म है और सरलता इसका स्वभाव और सर्वे भवन्तु सुखिन: का संकल्प इसकी आत्मा है।''[15] डॉ. सुरेश गौतम लोक को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि ''लोक की मूल सत्ता लोक मानस है। समस्त लोकाभिव्यक्ति का मूलाधार 'लोकमानस' है- जो आदिम है, रहस्यशील है, आनुष्ठानिक है, सर्वात्मशील तथा विवेकपूर्वी होता है। यहाँ कार्यकरण की श्रृंखला में तर्क नहीं आस्था, विचार नहीं भाव, बुद्धि नहीं हृदय की सत्ता का अखण्ड साम्राज्य है। यहाँ व्यक्ति सत्य के स्थान सामाजिक सत्य की प्रतिष्ठा रहती है। आज की आणविक सभ्यता की शुष्क तार्किकता के नीरस धरातल, कुण्ठाओं और तनावों के तप्त मरुस्थल, घुटन और छटपटाहट के दमघोंटू वातावरण में 'लोक' की चेतना ठंडी हवा का झोंका है। इसमें माटी और 'दंवगड़े (वर्षा वाली पहली बूंदें) की भीनी-भीनी गंध हैं।''[16]

अत: लोक क्षेत्र विस्तृत विशद विराट, सर्वव्यापक, सर्वकालिक, सार्वदेशिक व व्यापक है। जिसमें जनसाधारण में परम्परागत प्रतिमानों को शरण प्रदान की गई है। लोक की परम्परा किसी दायरे में बंद नहीं होकर स्वच्छंद रूप से व्यक्ति, समाज व देश के वातावरण में

विचरण करती हुई 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की अवधारणा को स्थापित करती है। रुढ़ि, विचार, तर्क, ज्ञान, समझदारी, से विपरीत मस्त, अल्हड़, ठेठ, ग्रामीण, अंचल, पथभ्रष्ट होकर स्वतंत्र समाज की आधार रचना बुनती है। विशिष्टता को त्यागकर सामान्यता, अहंकार को छोड़कर शालीनता, होशियारी को छोड़कर अल्हड़ता, सभ्यता के विपरीत लोक, सामान्य जन, साधारण जनता अर्थात् ग्रामीण व आंचलिक परिवेश की रचना करती है। विशिष्ट बौद्धिकता की लक्ष्मण रेखा को लांघकर ठेठ, अनपढ़ की विरासत को 'लोक' ही समझा जाता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *हिन्दी शब्द कल्पद्रुम- सं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 634-35*
2. *हलायुद्ध कोश- जयशंकर जोशी, पृ. 581*
3. *The Practical Sanskrit-English Dictionary-वी. एस. आप्टे, पृ. 820*
4. *एन्साइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका, भाग-9, पृ. 444*
5. *चिन्तामणि, रामचंद्र शुक्ल, भाग-1, पृ. 227*
6. *चिन्तामणि, रामचंद्र शुक्ल, भाग-2, पृ. 122*
7. *लोक साहित्य विज्ञान, सत्येन्द्र, पृ. 3*
8. *हिन्दी भक्ति साहित्य में लोक तत्व- डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 3*
9. *जनपद, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, वर्ष 1, अंक 1, पृ. 65*
10. *The study of oriseam Folktor-डॉ. कुंज बिहारी दास*
11. *सम्मेलन पत्रिका, वासुदेव शरण अग्रवाल, (लोक संस्कृति विशेषांक), पृ. 65*
12. *भारतीय लोक साहित्य- डॉ. श्याम परमार, पृ. 9-10*
13. *वही, पृ. 9-10*
14. *लोक और लोक स्वर, विद्यानिवास मिश्र, पृ. 11-12*
15. *हिन्दी का प्रादेशिक लोक साहित्य शास्त्र, डॉ. नंदलाल कला, पृ. 188-89*
16. *भारतीय लोक साहित्य कोश, खण्ड 1, सं. डॉ. सुरेश गौतम व वीणा गौतम*

श्रीकृष्ण की प्रमुख लीलाओं का वैशिष्ट्य एवं रहस्य

डॉ. चन्द्रिका शर्मा
शिवपुरी (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

आचार्योंने लीलाका सामान्य अर्थ 'क्रीड़ा' अथवा 'खेल' प्रतिपादित किया है। लोकवत्त लीला 'केवल्यम्' प्रसिद्ध ही है। अनेक परिभाषाओं से 'लीला' को परिभाषित किया गया है। जिनके द्वारा 'लीला' के फलनिरपेक्ष प्रवृत्ति रहस्यपूर्णव्यापार, श्रृंगारभाव-चेष्टा आदि अर्थ प्राप्त होते हैं। प्रमुख रुप से काव्यशास्त्रीय अर्थ रति-प्रसंग लीलाओं से संबद्ध है। यथा

रतिचक्र प्रवृते तु नैव शास्त्रं न चक्रमः।[1]

अर्थात् जिससमय नायक और नायिका दोनों में उद्भट भाव उत्पन्न होता है उस समय किसी शास्त्रकी और न ही कोई क्रम-मर्यादा रहती है, तब तो सर्वत्रलीला होती है।

भगवान के दिव्यजन्म और कर्म के लिए भी लीला शब्द का व्यवहार होता है।[2] परम व्यापक परब्रम्हाका देवकीके उदरमें व्याप्त होना, यशोदा के क्रीडामें क्रीडा करना, विभिन्न रुपों एवं स्थितियों में प्रकट होते हुए भी वस्तुतः उसका अविभक्त, अविकृत और अव्याप्त रहना, ऐसी अद्भुत विलक्षणकताओं के लिए भी लीला शब्द का प्रयोग होता है। जब कृष्णकी लीला का वर्णन किया जाता है, तब उन्हें गिरधर, वंशीधर और गोपाल, गोविन्द भी कहते हैं। श्रीमद्भागवत में[3] गोपाल-लीला, माखन-चोरी लीला आदि इन लीलाओं में न्यूनता नहीं, उत्कर्षता बढ़ जाती है, इससे बढ़ कर ऐसी विशिष्टताओं से सर्गादि सहज लीलाओं में श्रीकृष्ण की लीला का पार्थक्य हो जाता है।

पूतना उद्धार लीला: कंस-प्रेरिता बालघ्नी पूता[4] सुन्दरी का रुप धारण कर गोकुल पहुँची और कृष्ण को स्तनपान द्वारा मारने की अभिलाषा की। पूतना ने अपना स्तन बालकके मुँह में दे दिया। श्री कृष्ण के रोष ने प्राणों का पान किया और कृष्ण ने स्तन का। स्तनों में प्रांणघातिनी पीड़ा हुई, वह असली रुप में प्रकट हो गिर पड़ी। गिरने की आवाज से अन्तरिक्ष डगमगा उठा।

वैशिष्ट्य एवं रहस्य: यह पूतना-मोक्ष लीला भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत बाल लीला है पूतनामोक्षंकृष्णस्यार्भकमद्भुतम्।[5] पूतना अविद्या है। अविद्या पंचपर्वा है-अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेष। ये ही क्रमशः तमस्, मोह, महामोह, तमिस्त्र और अन्ध तमिस्त्र है। पूतना का नाश पंचपर्वा अविद्या का नाश है। यह राक्षसी स्वयं कृष्ण को मारने आयी थी, किन्तु मातृ-वेश रुप सद्द्वेष ग्रहण हेतु उसे भगवान ने स्वयं नहीं, ब्रह्मलोक नहीं, वैकुण्ठ भी नहीं, गोलोक धाममें धात्री-सारुप्य गति प्रदान की।[6]

शकट-भंजन लीला-कृष्ण-जन्मके नक्षत्र के समय 'औत्थानिक उत्सव' मनाया जा रहा था। यशोदा जी द्वारा अभिषेक कराने के पश्चात् कृष्ण को निद्रा आने पर शयन करा दिया गया। अथविश्वभरणकर्ता श्री कृष्ण माँ का दूध पीने के लिए रुदन करने लगे, रोते-रोते जैसे ही पाँव उछाला, दुग्धदधिमाण्ड पूरित मृण्मयपात्रों के साथ विशाल शकट पैर लगते ही पलट गया।

वैशिष्ट्य एवं रहस्य: शकट में कंस द्वारा श्री कृष्ण को मारने के लिए प्रेरित शक्टासुर आविष्ट था। छोटा-सा प्रवाल-वत् चरण जिसको वामन देवकी तरह न प्रसारित करना पड़ा, न ही नृसिंह देव जैसा विदारणकारी भीषण गर्जन करना पड़ा, कोमल परसनसे ही, असुर जैसे अन्तर्हित था उसी प्रकार अन्तर्हित अवस्थामें ही

 ISSN 2277-5587

भूमिमें प्रवेश कर पंचतत्व को प्राप्त कर गया। शकटासुर जडाभिमानी है। भगवतच्चरण सम्बन्ध से जड़बुद्धि सम्पन्न जीव विशुद्ध हो गया और परमगतिको प्राप्त हुआ।

जृम्भण लीला: माँ यशोदा अपने प्यारे शिशु श्री कृष्ण को गोदमें स्तन-पान करा रही थी तभी श्रीकृष्ण को जंभाई आ गई। यशोदा ने देखा कि उनके मुख में आकाश, अंतरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशायें, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु , समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ वन और समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं।[7]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य: यह श्री कृष्ण द्वारा अपनी बाल लीला का नित्य उदरस्थ प्रथम विश्व-प्रदर्शन है। इस लीला में श्री कृष्ण की विरुद्धधर्माश्रयताका परिचय प्राप्त होता है। श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीपाद कहते हैं- कि प्रेम देवी बीच-बीच में परीक्षा करने के लिए आती हैं। यही हरि की शक्ति है और दासी रुप मे सेवा करती रहती हैं:

प्रेमदेव्या:परीक्षार्थमागच्छन्त्यन्तरान्तरा।
शक्तिरेषा हरे: किन्तु तया दासी कृता भवेत्।।[8]

बाललीला: श्याम 'जानुभ्यां सहपाणिभ्याम' चल-चलकर गोकुल मे खेलने लगे। कुछ दिन बीतने पर किसी बैठे हुए बछड़े की पूंछ पकड लेते, कहीं पशुओं के पास दौड़ जाते, कहीं धधकती हुई आगसे खेलने के लिए मचलने लगते। कुछ और समय बाद खड़े होकर गोकुल में चलने फिरने लगे और अब तो गोपियां उनकी दही-दुग्ध के चौर्यकार्य का उपालम्भ यशोदाको देने लगीं, श्रीकृष्ण चोरों के अधिपति हैं मानो।

वैशिष्ट्य एवं रहस्य: गुणका निवास वस्तुमें नहीं प्रेममें है 'वसन्ति प्रेम्णि गुणा: न वस्तुनि।' कष्णको चोर कहना गोपियों द्वारा रहस्य ज्ञान का विस्तार है। 'कल्पितै: स्तेययोगे:'[9] महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग का अविर्भाव किया, पर कृष्णने तो अद्भुत स्तेय योग का प्रवर्तन किया है।

उखल बन्धन लीला: पुत्र स्नेह स्नुतुकुचयुग जातकम्पा यशोदा के पास स्तन्यकाम कृष्ण आये। प्रीति को बढ़ाते हुए मथानी पकड़ यशोदा के दधिमन्थन को रोक दिया। सुस्मित यशोदा अंक में आरुण कृष्ण को स्तन-पान कराने लगी। इसी क्षण अंगीठी पर रखे दूध में उफान आ गया। यशोदा कृष्ण को अतृप्त छोड़ दूध उतारने के लिए चल दी। क्रोध से स्फुरित अरुणाधर कृष्ण ने पास ही पड़े लोढें से दधिमन्थनभाजन को फोड़ डाला और एकान्त में जाकर बासी माखन खाने लगे। भयसे विवल कृष्ण अंजनयुक्त आँखें ऊपर उठ गयीं, माँ के हृदय में वात्सल्य उमड़ आया। यष्टि फेंक दी रस्सी से ऊखल में कृष्ण को बाँधने लगी। सारी रस्सियाँ जोड़ ली, फिर भी दो अंगुल छोटी रह जाने से कृष्ण को बांध नहीं सकीं। स्विन्नगात्रा और विस्त्रस्तकबरस्त्रजा देख कर कृष्ण ने जननी पर कृपा की और झट स्वयं ही बंध गये।[10]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य: रस्सी में दो अंगुल का कम रहना भक्त की साधन में निष्कपट नैरन्तर्यमयी ऐकान्ति की चेष्टा एवं भगवत्कृपा इन दो के बिना कृष्ण बांधे नहीं जा सकते, अन्त में अचिन्त्य कल्याण गुणाकार श्री कृष्ण की भृत्यवश्यता प्रकट हुई।

कालिय-कृपालीला: कालिन्दी मे कालिय का हद था, जो विष की आगसे खौलता रहता था। भगवान विषैले जल में कूद पड़े मुहूर्त भर मे कालिय को बल-हीन कर नृत्यमान आदि समस्त कलाओं के आदि प्रवर्तक भगवान् श्री कृष्ण उसके एक सौ एक मणियुक्त मस्तकों पर नृत्य करते हुए दिखाई दिए। नृत्य करते समय पैरों की चोट से कालिय नाग की जीवन-शक्ति क्षीण हो गई पतिको छुड़ाने के लिए नाग पत्नियों ने श्री कृष्ण की स्तुति की। कालिय को कृष्ण ने स्मरणक द्वीप भेज दिया।[11]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य: कालिय दमन-लीला भगवान् श्री नंदनन्दन की अहैतु की कृपा एवं भक्त-कृपा की असुरामिनी भगवत्कृपा का उत्कृष्ट निदर्शन है। अभिमान, खलता, क्रूरता और दयाशून्यता का दूरीकरण ही कालिय-दमन लीला है। सुबोधिनी के अनुसार कालिय[12] दमन इन्द्रियाध्यास-निवृत्ति है। पुराण पुरुष का ताण्डव-नृत्य हुआ है। भगवान का एक नाम 'नृत्यरुप' भी है। इसका मंत्र है:

कालियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तं।
नमामि देवकी पुत्रं नृत्यराजानमच्युतम्।।[13]

चीरहरण-लीला: मार्गशीर्षीय हेमन्त ऋतु में बृजकुमारियों द्वारा कात्यायनी देव की पूजा और व्रत किए गये । नियम मंत्र था- 'कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि। नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नम:।' अर्थात् हे! देवि नन्द-नंदन श्री कृष्ण को हमारा पति बना दीजिए। एक मास तक इसी प्रकार कात्यायनी की पूजा की ये गोपियाँ प्रतिदिन यमुना-जल में स्नानार्थ जातीं तब योगेश्वर श्री कृष्ण से उनकी अभिलाषा छुपी न रह सकी। दल-बल सहित आ धमके और गोपियों के सारे वस्त्र उठा कर त्वरितैव एक कदम्ब के वृक्ष पर आरोहित हो गये। कहने लगे- अत्रागत्याबला: कामं स्वं स्वं वास प्रगृह्यताम् अर्थात् कुमारियों तुमयहां आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ। जलधिष्ठातृदेवता वरुण और यमुना जी के अपराध त्रुटि के मार्जनार्थ समस्त कर्मों के साक्षी श्री कृष्ण को नमस्कार किया तब श्री कृष्ण ने कहा कि तुम आने वाली शरदऋतु की रात्रियों मे मेरे साथ विहार करोगी।

वैशिष्ट्य एवं रहस्य: अनावरण ही इस लीला का वैशिष्टय है, इसे आवरण भंग भी कहा जाता है इसमें जीव एवं ईश्वर के बीच का आवरण अनावृत्त, गोपियां, अनावृत्त संकल्प, अनावृत्त जल अनावृत्त, वरुण-अपराध अनावृत्त, वस्त्र-हरण अनावृत्त, क्षमा-याचना अनावृत्त, अपराध-मार्जन अनावृत्त, श्री कृष्ण का अनुमोदन अनावृत्त, काल अनावृत्त और परस्पर प्रेम और काम अनावृत्त इस लीला की फल से साक्षात् संम्बद्धता है।

गोवर्धन-यज्ञ-प्रवर्त्तन-लीला: ब्रजवासी इन्द्र-यज्ञ की तैयारी करने में लगे थे। अन्तर्यामी और सर्वज्ञ श्री कृष्ण, फिर भी कह बैठे- 'कथ्यतां मे पित: कोऽयं सम्भ्रमो व उपागत: किं फलं कस्य चोद्देश: केन वा साध्यते मख:।' अर्थात पिताजी! किस फल और उद्देश्य से यह कौनसा उत्सव आ पहुँचा है? पिता ने बताया-इन्द्र पर्जन्यस्वामी है, मेघ उनकी आत्म-मूर्ति हैं, प्राणियों के जीवन-पय का वर्षण करते हैं। वैज्ञानिक श्री कृष्ण ने इसका खण्डन किया और वनवासी होने के कारण अद्रि-पूजा का प्रावधान किया। कुल परम्परा टूट गई। इन्द्र अपना यह अपमान सहन न कर सके। प्रलय के मेघों का बंधन खोल मूसलाधार वारि-वर्षण से व्रज को पीडित करने लगे। गोप-गोपियाँ गोविन्द की शरण में पहुँचे। खेल ही खेल में श्री कृष्ण के

छत्र के समान गोवर्धनाचल को उखाड कर हाथ में रख लिया। सप्त दिवस तक उस गिरि को उठाये रखा। अब इन्द्र के विस्मित होने की बारी आई, मेघों का वारण कर दिया गया। श्री कृष्ण ने शैल को पूर्ववत् स्थापित कर दिया तिरस्कृत इन्द्र ने श्री कृष्ण से अपराध के लिए क्षमा याचना की। इसके बाद आकाश गंगा के जल से देवर्षियों के साथ श्री कृष्ण का अभिषेक किया और उन्हें 'गोविन्द' नाम से संबोधित किया।[14]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य: क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है। श्री कृष्ण ने इन्द्र-यज्ञ को गोवर्धन-यज्ञ में परिवर्तित करके। गुणी गोविन्द के विज्ञान को पिता ने स्वीकार किया है। श्री कृष्ण की परब्रह्मरुप-माहात्म्य प्रख्यापित करना ही इस लीला का रहस्य है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *सर्व तत्वार्थ पदार्थ लक्ष संग्रह: भिक्षु गौरीशंकर भार्गव भूषण मुद्राणालय, बनारस, सम्वत् 2006 पृष्ठ 75*
2. *कल्याण 'कृष्णांक' लेख: भगवद्-विग्रह : गोपीनाथ कविराज पृष्ठ 42*
3. *भागवत -अभ्यषिंचत दशार्हि गोविन्द इति चाम्यधात्*
4. *ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णजन्मखण्ड) 10/32-33*
5. *श्रीमदभागवत-10/6/44*
6. *श्रीमदभागवत-10/6/38*
7. *श्रीमदभागवत-10/6/34-37*
8. *भागवद्-10/6/37 सारार्थ दर्शिनी*
9. *श्रीमदभागवत-10/08/29*
10. *श्रीमदभागवत्-10/9/01-18*
11. *ब्रह्मवैवर्तपुराण(श्रीकृष्णजन्मखण्ड) 19/1/121*
12. *कालियम् इन्द्रियाण्याहु: विषयास्तद विषं स्मृतम् -10/6/04 भागवत-सुबोधिनी*
13. *भागवत दर्शन-पृष्ठ-148*
14. *ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णजन्मखण्ड) 21/01-33*

भित्ति-चित्रों के सन्दर्भ में केरल स्थित त्रिप्रयर रामा मन्दिर

अंशुली शुक्ला
शोध छात्रा, दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

दक्षिण भारत में स्थित त्रिप्रयर रामा मन्दिर केरल की सांस्कृतिक राजधानी त्रिचुर से लगभग 14 मील दूर कोडंगुलूर मार्ग के शांतिपूर्ण वातावरण में स्थित है।जिसमें मन्दिर के पीछे की ओर वृहद सुन्दर 'त्रिप्रयर नदी' बहती है जिसके दोनों किनारों पर नारियल के लम्बे-लम्बे वृक्षों की कतारें दर्शनीय हैं। त्रिप्रयर रामा मन्दिर भगवान 'श्री राम' को समर्पित है। जहाँ श्री राम की छवि को विष्णु भगवान के रुप में पूजा जाता है। यह मन्दिर अपनी शानदार वास्तुकला, भित्ति-चित्रण तथा पत्थर पर की गई नक्काशी के लिए प्रसिद्ध है। यह मन्दिर पूर्व मुखी है।

त्रिप्रयर रामा मन्दिर एक बहुचर्चित पूजा स्थल है, जो कई वर्षो से तीर्थ-यात्रियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। इस वृत्ताकार मंदिर का आधार ग्रेनाइट पत्थर से निर्मित है, जहाँ काष्ठ से निर्मित सुन्दर कोष्ठक बने हुए है जो कि शंकाकार बनीं ताँबें की छत को सम्भाले हुए है। जिन पर बहुत सुन्दर उत्कीर्णन कार्य किया गया है।

मन्दिर की वृत्ताकार भित्ति लम्बे कुण्डलित चित्रों की भाँति दर्शनीय है जिन्हें वृत्ताकार व खुले प्रदक्षिणापथ द्वारा देखा जा सकता है। त्रिप्रयर रामा मन्दिर केरल की कला तथा वास्तु कला का एक व्यापक व शास्त्रीय उदाहरण है। यह मन्दिर सौन्दर्यमयी गुणों का अनोखा मिश्रण है। यहाँ मूर्तिकला व भित्ति-चित्रण द्वारा हिन्दू महाकाव्यों (रामायण, महाभारत) के तथा धार्मिक, पौराणिक दृश्यों को प्रदर्षित किया गया है।

त्रिप्रयर रामा मन्दिर अपने उत्कृष्ट भित्ति-चित्रों से सुसज्जित है। यहाँ चित्रों के विषय पौराणिक कथाओं पर आधारित है, जो कि वृत्ताकार भित्ति पर कोष्ठकों में चित्रित किये गये हैं। त्रिप्रयर रामा मन्दिर के भित्ति-चित्र 16वीं शती से पहले के हैं। सभी चित्र चूने का आधार लिये हुए गीली भित्ति पर यहाँ बनाये गये हैं। त्रिप्रयर रामा मन्दिर के भित्ति-चित्रों का वर्णन निम्नलिखित है-

भू-देवी व लक्ष्मी जी के साथ विराजमान:

इस दृश्य में भगवान विष्णु अपने शेषनागरुपी सिंहासन पर भू-देवी तथा लक्ष्मी जी के मध्य विराजमान है। चित्र संयोजन अलंकारिक व प्रभावपूर्ण है, जहाँ विष्णु जी के पीछे पीले रंग में शेषनाग फनरुपी प्रभामण्डल के दोनों ओर देवतागण तथा मुनिजन भू-देवी, लक्ष्मी व विष्णु भगवान के समक्ष हाथ जोड़े खड़े हैं। चित्र में रेखीय रुपरेखा अलंकारिक व मोटी चित्रित की गई है। तीनों आकृतियाँ सुन्दर व सम्पूर्ण आभूषण धारण करे हुए हैं। गहरी पृष्ठभूमि पर विष्णु भगवान लक्ष्मी जी हरे तथा भू-देवी लाल वर्ण की सुन्दर विरोधी तानें में विशेष वेशभूषायुक्त चित्रित हैं। यहाँ आकृतियों के नेत्र पूर्ण रुप से खुले हुए हैं। जिसमें पुतली को नेत्र के मध्य में अंकित किया गया है। आकृतियों के चेहरे गोल तथा चिबुक व गर्दन के बीच का हिस्सा भारी, नाक पतली लम्बी,

अधर मोटे चित्रित है। यहाँ देवी-देवताओं को उनकी विशेषताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न चटक रंगों में दर्शाया गया है। भाव-भंगिमाएँ विष्णु प्रभावयुक्त हैं। चित्र में परिप्रेक्ष्य दर्शाने के लिए आकृतियों को आगे-पीछे व छाया प्रकाश सहित चित्रित किया गया है, जिसके कारण चित्र त्रि-आयामी प्रभाव दे रहा है। त्रिप्रयर मन्दिर में यह सम्पूर्ण चित्र अलंकारिक तथा कहीं-कहीं काल्पनिक चित्रण द्वारा उत्कृष्ट संयोजन व चित्रण रूप में प्रदर्शित किया गया है।

कुबेर कनकाभिषेकम्:

इस चित्र में कुबेर देवता का चित्रण किया गया है, जो कि निधिपात्र द्वारा स्वंय कनक अभिषेक कर रहे हैं, जिन्हें धन कुबेर के रुप में पूजा जाता है। चित्र गहरी पृष्ठभूमि, अत्यन्त घने व सुन्दर अलंकारिक चित्रांकन से भरा हुआ है। यहाँ चटकीले रंग प्रयोग किये है। जिन्हें सपाट तथा कहीं-कहीं छाया- प्रकाश से त्रि-आयामी प्रभाव द्वारा प्रदर्शित किया गया है। जिसमें लाल, पीला, हरा तथा सफेद रंग मुख्य रुप से है। चित्र के मध्य में हृष्ट-पुष्ट, शांत भावयुक्त, सिर पर मुकुट तथा नेत्र पूर्ण खुले हुए परन्तु अस्पष्ट है, नाक लम्बी, अधर मोटे, तथा चिबुक व गर्दन के बीच का हिस्सा भारी चित्रित है। चित्र में रेखाएँ लयात्मक हैं। बाहरी रेखा अलंकारिक तथा मोटी अंकित है। यह भित्ति-चित्र अपने आकर्षक चित्र संयोजन के लिए द्रष्टव्य है।

शिव उग्रमूर्ति:

यहाँ भित्ति-चित्र में शिव जी का उग्ररुप दर्शाया गया है। इसमें चित्रण कार्य गहरी पृष्ठभूमि पर फैला कर किया है। यहाँ मध्य में, आकृति काले रंग में तथा वस्त्र लाल, पीले व हरे रंग में प्रदर्शित है। कहीं-कहीं सफेद रंग का भी प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण चित्र में आकृति घने आभूषणों, सर्पो तथा अस्त्र-शस्त्रों से सुशोभित है। चित्र में रेखीय रुपरेखा मोटी व अलंकारिक है। नेत्र सामान्य से अधिक खुले हुए, जिनमें मध्य में पुतली तथा मुँह में दाँतों के मध्य सर्प, जिससे उग्ररुपी भाव स्पष्ट रुप से प्रदर्शित हो रहा है। चित्र में सम्पूर्ण आकृति छाया-प्रकाश से युक्त चित्रित की गयी है, जिससे चित्र में त्रि-आयामी प्रभाव दर्शनीय है। समय अनुसार चित्र का कुछ भाग नष्ट हो जाने के कारण अस्पष्ट है। यहाँ चित्र की सीमा रेखा मोटी तथा अलंकारिक चित्रित की है। सम्पूर्ण चित्र संयोजन काल्पनिक एवम् सजावटी है।

अश्वमेघ यज्ञ:

इस चित्र में अश्व जो कि बड़े ही काल्पनिक ढंग में चित्रित किया है। स्थूल वृक्ष से अश्व निकलता दर्शाया है। वृक्ष की पत्तियों को मोटी, फल समान अंकित किया है। हल्के रंग की सुनहरी पृष्ठभूमि पर गहरे पीले रंग में यह दृष्य प्रदर्शित है। पत्तियाँ छोटी-बड़ी तथा अश्व वृक्ष के पीछे से प्रतीत हो रहा है, जो कि त्रि-आयामी प्रभावयुक्त है। सम्पूर्ण चित्र हमारे समक्ष पौराणिक घटना को काल्पनिक रुप में प्रकट करता है।

श्री राम का राज्याभिषेक:

यहाँ भित्ति-चित्र में श्री राम के राज्याभिषेक के दृश्य को चित्रित किया है। पृष्ठभूमि पर अत्यन्त घना व अलंकारिक चित्रांकन दिखाया है। मुख्य आकृति चित्र के मध्य में शानदार सिंहासन पर विराजमान है जो कि सुन्दर आभूषणों व आकर्षक वेशभूषा से सुसज्जित हैं। मुख्य आकृति के समक्ष देवी-देवतागण मुख्य आकृति का जल अर्पित करते हुऐ दिखाये गये हैं। मध्य में आकृति गहरे हरे रंग में तथा लाल व

श्वेत रंग में चित्रित हैं। सभी आकृतियाँ हृष्ट-पुष्ट, नेत्र पूर्ण खुले हुए, नाक लम्बी, अधर मोटे, चिबुक व गर्दन के बीच का हिस्सा भारी चित्रित हुआ है।

सिंहासन के नीचे श्वेत रंग में दो सिंह श्री राम की ओर हाथ जोड़े मुख विपरीत दिशा की ओर घुमाये हुए अंकित किये हैं। चित्र सुन्दर अलंकारिक व मोटी सीमारेखा द्वारा प्रदर्शित है। सम्पूर्ण चित्र संयोजन त्रिआयामी प्रभावयुक्त काल्पनिक तथा अलंकारिक रुप से संयोजित किया गया है।

शास्ता के अनुयायी:

केरल की पौराणिक कथाओं में 'शास्ता' जिसे जंगल के योद्धा देवता रूप में पूजा जाता है। शास्ता के अनुयायी इस चित्र में चित्रित किये है। अलंकारिक गहरी लाल पृष्ठभूमि पर छाया-प्रकाशयुक्त रंगोंद्वारा आकृति चित्रित है, जिसकी बलिष्ट भुजाएँ व पाँव अपेक्षाकृत छोटे हैं। यह बाँये हाथ में सामने की ओर ढाल पकड़े हुए है, जिसमें गोलाकार अलंकारिक रेखांकन है तथा दूसरे हाथ में किसी प्रकार अस्त्र पकड़े खड़े हैं। एक चश्म चेहरा, भौंह उठी हुई, नाक लम्बी, आर मोटे तथा सामान्य आभूषण पहने चित्रित हैं। वेशभूषा साधारण रूप में प्रदर्शित है। यहाँ सपाट तथा त्रि-आयामीयुक्त रंग (लाल, पीला, हरा, सफेद, काला) प्रयोग किये गये हैं। सम्पूर्ण चित्र की रेखीय रुपरेखा मोटी व अलंकारिक चित्रित है। यहाँ चित्र संयोजन अलंकारिक चित्रित है।

त्रिप्रयर रामा मन्दिर केरल की सांस्कृतिक राजधानी त्रिचुर के प्रसिद्ध मन्दिरों में से एक है। यह भित्ति-चित्र भारतीय चित्रकला के शास्त्रीय पारम्परिक परिवेश को अपनाये हुए हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. *Chaitanya, Krishna., A History of Indian Painting The Tradition, Mumbai, 2011.*
2. *Ramchandran, A., Painted Aboud of Gods Traditions Of Kerala, New Delhi, 2005*
3. *Sarkar. H. ,An Architetural Survey of Temples of Kerala, New Delhi, 1978.*

रामस्नेही सन्त कवि राघोदास

डॉ. हरीश कुमार
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, जैतारण

shodhshree@gmail.com

राजस्थान में हिन्दी निर्गुण काव्य की सुदीर्घ एवं समृद्ध परम्परा में प्रवर्तित रामस्नेही सम्प्रदाय विशेष महत्वपूर्ण है। रामस्नेही सम्प्रदाय की विशेषता यह है की यह सम्प्रदाय तीन स्वतंत्र केन्द्रो के रूप में विकसित हुआ। यह तीन प्रमुख केन्द्र हैं-1. रेण 2. सींथल-खेड़ापा 3. शाहपुरा। इस प्रकार राजस्थान में 'रामस्नेही' नाम से तीन स्वतंत्र सम्प्रदाय विद्यमान हैं। इनमें भिन्नता दर्शाने के लिए सम्प्रदाय के साथ स्थान विशेष का उल्लेख किया जाता है।

सींथल-खेड़ापा रामस्नेही सम्प्रदाय की प्रचास प्रसार दो मुख्य केन्द्रों से हुआ। सींथल से हरिरामदास की शिष्य परम्परा और खेड़ापा से उनके शिष्य रामदास की शिष्य परम्परा। इस प्रकार इस सम्प्रदाय का क्षेत्र व्यापक रहा है। अब तक शोध से इस परम्परा के 50 से भी अधिक ऐसे संत कवि सामने आये हैं जिन्होंने न्यूनाधिक रुप में अनुभव वाणी की रचना की। इनमें से हरिरामदास, रामदास, दयालदास, हरिदेवदास, परसराम, सेवगराम, पूरणदास, मूलदास आदि संतों की वाणी प्रकाशित हो गयी है, शेष कई संतों की वाणी अभी भी सम्प्रदाय के रामद्वारों में हस्तलिखित ग्रंथों के रुप में उपलब्ध होती है, जैसे-राघोदास, पीथोदास, कनीदास, मनीराम, सूरतराम, तेजराम, अमृतराम, सिम्भुराम, बालकराम, केशवराम, हरिराम आदि। इनमें रामस्नेही संत राघोदास रामदास के शिष्य तथा इस सम्प्रदाय के प्रमुख स्थान निमाज (जिला-पाली) राजस्थान के संस्थापक थे। इन्होंने विपुल मात्रा में काव्य रचना की। इनका काव्य सामाजिक धार्मिक एवं साहित्यिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है।

विभिन्न सम्प्रदायों में धार्मिक रुप से प्रमुख संत कवि के वाणी-साहित्य का ही महत्व होता है। ऐसे में उसी परम्परा के अन्य संतों का साहित्य उपेक्षित रह जाता है, फिर चाहे वह कितना ही उत्कृष्ट क्यों न हो। संत राघोदास भी ऐसे ही संत कवि है, इनका साहित्य महत्वपूर्ण होते हुए भी हिन्दी संत साहित्य की मुख्यधारा से नहीं जुड़ सका है। वैसे तो हिन्दी में बड़ी संख्या में शोधकार्य हो रहे हैं पर इसमें अज्ञात या अल्पज्ञात साहित्य तथा साहित्यकारों को प्रकाश में लाने तथा उनके मूल्यांकन का कार्य जिस गति से होना चाहिए, नहीं हो पा रहा है।

जीवन परिचय: संत राघोदास की शिष्य परम्परा में संत अमृतराम ने 'श्री राघोदास जी महाराज की परची' की रचना की इसमें उन्होंने संत राघोदास के जन्म-स्थान एवं परिवार का उल्लेख किया है-

जादू वंश जन्म जनलीया नीर कमल सम न्यारा रीया।
गृहू कुटूम्ब सब दाय ने आवै, भक्ति अंकुर छिपे ने छिपावे।।
चिमनसिंह धिन पिता कहाया, धिन माता हरिजन सुत जाया।
दर्शन करके वंश उधारी, धिन 'कटमीर' संत अवतारा।।

इस प्रकार संत राघोदास का जन्म राजस्थान-मारवाड़ के 'कठमीर' नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम चिमनसिंह था तथा ये यादव वंशी राजपूत थे। माता के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। क्षत्रिय-वंश में जन्म लेने के उपरान्त भी इनका झुकाव भक्ति भाव की और अधिक था और इन्होंने युवावस्था तक भगवद् प्राप्ति के विभिन्न मार्गों का अनुसरण भी किया-

 ISSN 2277-5587

तरुण अवस्था ज्ञान विचारयौ। आदू क्षत्री राह संभारयौ।
और जु भैख देख सब लिया। मरुधर देश पयाणां कीया।।

और अंत में खेड़ापा (नागौर-राजस्थान) के रामस्नेही संत रामदास से प्रभावित होकर वि.स. 1838 ज्येष्ठ शुक्ला 14 को दीक्षा ग्रहण की। स्वयं के शब्दों में-

समत अठारै अड़तीसरा, जेठ चवदस सुद जाण।
जिन राधा ने सतगुरु मिल्या, पाई भगति पिछाण।।

- अथ गुरु महिमा छंद सं. 01 गोटका पं.सं. 04

ग्रंथ गुरु महिमा के अन्तर्गत कई स्थानों पर गुरु-स्थान खेड़ापा का उल्लेख भी इनकी वाणी में मिलता हैं-

धिन है मारु मरुधरा, धिन खेड़ापौ गाँव।
धिन अस्तल धिन कुंड है संत अराधे नाव।
धिन खेड़ापा धिन गो-र-वा, धिन धरती धिन धाम।

दीक्षा ग्रहण कर ये कुछ समय अपने गुरु रामदास के सान्निध्य में साधनारत रहे तत्पश्चात् गुरु से आज्ञा लेकर भ्रमण हेतु निकल पड़े। इन्होने मालवा प्रांत की यात्रा की तत्पश्चात् मारवाड़ के आकेली, बिराटियां, बर, ग्राम खिनावड़ी, रायपुर, पीपाड़ आदि स्थानों पर भ्रमण करते रहे। इन सभी स्थानों पर इनके द्वारा किये गये परचे प्रसिद्ध हैं। अमृतराम कृत परची में इन परचों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया हैं। इनके परचों से प्रभावित होकर निमाज के ठाकुर सुल्तानसिंह इन्हे निमाज ले आए तदुपरान्त ये स्थाई रुप से यहीं रहने लगे तथा वि.स. माघ शुक्ला 14 को इसी स्थान पर ब्रहमलीन हुए-

समत अठारहसौ गुणयासी। माघ सुदा पख तिथि चवदस्सी।
तजियो लोक बैकुंट सिधाये। जै जै शब्द सुरन सब गाये।।

- श्री राघोदास जी महाराज की परची, छंद सं. 90

संत कवि राघोदास ने व्यापक परिणाम में काव्य रचना की। इनका समस्त वाणी-साहित्य सम्प्रदाय के विभिन्न केन्द्रो और हस्तलिखित ग्रंथों के सग्रहालयों क्रमश: रामधाम-खेड़ापा, बड़ा रामद्वारा-सूरसागर (जोधपुर), चौपासनी शोध संस्थान (जोधपुर), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान (जोधपुर) में उपलब्ध हैं। इन सभी प्रतियों में सबसे प्राचीन एवं मूल प्रति संत राघोदास के थाम्भायत स्थान 'रामद्वारा-निमाज' में सुरक्षित है। लगभग 550 पत्रों के जिल्दबन्द वृहद् आकार के गोटके में इनकी समग्र वाणी लिपिबद्ध है। इसका लिपिकाल वि.स.1877 अंकित है। इस हस्तलिखित ग्रंथ में संत साहित्य की परम्परानुसार अधिकांश साहित्य जिसे अनुभव-वाणी कहा जाता हैं, विभिन्न अंगो एवं प्रसंगो में विभाजित है। इन अंगो में आध्यात्मिक एवं दार्शनिक रहस्यों की अत्यंत सूक्ष्म रुप में सरल विवेचना हुई है। संत राघोदास के वाणी साहित्य में 13 ग्रंथात्मक रचनाएँ, 142 पद एवं अंगबद्ध वाणी सम्मिलित है।

संत मत में ब्रहम के स्वरुप की विशद् विवेचना की गई है। तत्वत: ब्रहम को निर्गुण, निराकार, अगम्य, अलख अखण्ड एवं पूर्ण ज्योति स्वरुप बतलाया गया है। संत राघोदास की वाणी में ब्रहम के इसी स्वरुप की स्तुति की गयी है-

राम सकल में हित मिले, अखण्ड-तेज तन नाम।
ब्रहम-दिष्ट कर देखियो, सब घट आत्म राम।।
राम निरंजन है निरकारा, बाँका जाणो सकल पसारा।
जाँकी गत तो जाय ने जाणी, राम बिना सब खिचातानी।।

रामस्नेही सम्प्रदाय के अन्तर्गत निर्गुण साधना की परम्परा का निर्वाह करते हुए आत्मानुभूमि पर विशेष बल दिया गया है। इस सम्प्रदाय की साधना का श्री गणेश नामस्मरण अथवा नाम-जप से होता है जिसे 'सुमिरन' कहा जाता है। प्राय: सभी संतों ने नामस्मरण में राम-नाम को ही ग्रहण किया है अत: राघोदास कहते हैं-

कोटि ग्रंथ नीका पढै, हिरदे राम न होय।
श्राम-विना राघो कहै, कारज सरै न कोय।।
राधा विष संसार का, खावै ता मरजाय।
अमर संजीवणि राम है, पीनाँ अम्मर थाय।।

- राम विश्वास को अंग छंद सं. 8,26

सनकादिक नारद कहै, राम सबद मुख वाच।
राधा तनम न साजिये, सतगुरु कहियो साच।।

- राम निवास को अंग छंद सं. 04

राघोदास की साधना-पद्धति में योग शास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग भी हुआ है। सुरति-शब्द योग इसमें प्रमुख है। यह एक निर्गुण साधना-पद्धति है 'सुमिरन' इस साधना-पद्धति के प्राण है। इसमें नाम-जप प्रमुख एवं शेष समस्त यौगिक क्रियाएँ गौण है। नाम-जप से यथाक्रम से योग की संपूर्ण अन्तर्निहित हो जाती है। रामस्नेही संतों ने जीवन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाया है। इन्होने प्रवृति एवं निवृति के बीच का मार्ग खोजा जिसे निर्गुण संतों ने मध्यम मार्ग कहा। जीवन के प्रति इसी दृष्टिकोण के कारण ही ये संत समाज से गहरे जुड़े रहे, साथ ही मानव मात्र के प्रति सहज सहानुभूति होने के कारण मानवीय मूल्यों की स्थापन की। 'मिनखा जनम पदारथ भारी, घणा कष्ट कर आई वारी' कहते हुए राघोदास ने जन कल्याण एवं मनुष्य की श्रेष्ठता का संदेश दिया साथ ही घर छोड़कर वन में निवास करने वाले तपस्वी साधक अथवा गृह प्रपंचो में लिप्त सांसारिक प्राणी से परे मध्यम मार्ग की बात कही-

वन में क्यूँ जावो माराज, घर में घमक करो नीजी।
माया मोह जगत की पासी, याँ सूँ रहो उदासा।।

सर्वविदित है कि निर्गुणमार्गी संतों ने आध्यात्मिक साधना के मार्ग पर चलते हुए भी सांसारिक जीवन को पूरी तरह से नहीं नकारा। इन्होने समाज में रहते हुए उसमें व्याप्त बुराइयों का पुरजोर खण्डन किया। संत सच्चे अर्थो में कर्मवीर थे अत: उन्होने कर्म को महत्व दिया। जीवन-यापन हेतु भिक्षावृति का भी खण्डन किया-

टुक्का कारण भीख नै, जावै भोजन काज।
राघा आसण आपके, पाछी कीजै लाज।।

- तरक त्याग को अंग छंद सं. 38

निर्गुण अन्त:साधना में प्रेमतत्व को विशेष महत्व दिया गया है। संत कवि राघोदास ने जिस प्रेम की चर्चा की है वह आध्यात्मिक प्रेम है। परमात्मा के प्रति अनन्य आसक्ति ही इस प्रेम का मूल भाव है। इस प्रेम के संदर्भ में राघोदास कहते है-

पेम जिणादा जाणिये, आठूँ पोहर मसंत।
राघा काचा राचै नहीं, राम तणा रजपत।।

- श्री पेम को अंग छंद सं. 25

'प्रीत लगी जब जाणिये, उनमुन रैवै आप' -कहते हुए राघोदास ने प्रीत

के आदर्श स्वरुप पतंगे एवं चकोर का भी उल्लेख किया है-

पतंग निभावै प्रीतड़ी, तन-मन देवै खोय।
राधा दीपग देखताँ, जाय पड़ै झड़ लोय।।
चकोर चित टाळै नहीं, चंदा मैं भरपूर।
राधा प्रीत न पालटै, देता रेवै नूर।।

- प्रीत को अंग छंद सं. 2,32

संत राघोदास ने कई स्थानों पर प्रिय मिलन हेतु आतुर विरहिणी आत्मा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है-

रामस्नेही सायबा, मैरा सुणियो वैण।
प्रीत तुमारी कारणै, जह्नद भया है नैंण।।

- सिवरण को अंग छंद सं. 24

संत कवि राघोदास के संपूर्ण वाणी-साहित्य का विवेचन-विश्लेषण करने के उपरान्त स्पष्ट हो जाता है कि इनका रामस्नेही सम्प्रदाय में विशिष्ट स्थान था। इन्होने रामस्नेही मत का प्रचार-प्रसार करते हुए अन्त: साधना पर बल दिया। अपनी साधना में यौगिक शब्दावली का प्रयोग करते हुए भी श्वासोच्छ्वास नाम-स्मरण का ही उपदेश दिया तथा हठयोग जैसी क्लिष्ट क्रियाओं को न तो अपनाया और न ही अपनाने का आग्रह ही किया। इस प्रकार इनकी साधना सहजमार्गी साधना थी। इनके अध्यात्म चिन्तन और दर्शन में कोई नवीनता नहीं है परन्तु इनका महत्व इस दृष्टि से अत्यधिक है कि इन्होने तत्कालीन परिस्थितियों में आध्यात्मिक और नैतिक जागरण का अलख जगाया और प्रदेश की साधारण जनता में आध्यात्मिक और नैतिक चेतना का सूत्रपात किया।

संत राघोदास के समय में धर्म के क्षेत्र में बाह्यडम्बरों-अंधविश्वासों का रुप चरम स्तर पर पहुँच चुका था। इन्होने ढोंगी साधुओं तथा मूर्ख पण्डितों पर कटाक्ष करते हुए सच्चे साधु के लक्षणों को निर्धारित किया साथ ही भिक्षावृति की कड़े शब्दों में निन्दा की। आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए मांस भक्षण, मदिरा तथा तंबाकु आदि मादक पदार्थों की जमकर भर्त्सना की। दया, शील, प्रेम आदि सद्गुणों की प्रतिष्ठा से सामाजिक बुराइयों को दूर करके जनजीवन में सुख-शान्ति की स्थापना करने का सतत् प्रयत्न किया। सती प्रथा पतिव्रता नारी की मुक्त कंठ से प्रशंसा तथा व्यभिचारिणी की खुलकर निन्दा की। इन्होने जल को छान कर पीने पर बहुत अधिक बल दिया है क्योंकि उस समय पश्चिमी राजस्थान में पानी से बाला रोग हो जाता था। जल को छानकर पीने से इस रोग से बचा जा सकता था।

साहित्यिक दृष्टि से भी इनका काव्य कम महत्वपूर्ण नहीं है। इनके विशाल वाणी-साहित्य से काव्य-सौन्दर्य के पारखी चाहे अधिक संतुष्ट न हो सके परन्तु भावुक हृदय आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। इनके काव्य का भाव पक्ष बहुत व्यापक एवं सशक्त है, ये भाव आम-जन के हृदय की थाती है। इनके द्वारा व्यक्त आत्मा-परमात्मा के अलौकिक सात्विक प्रेम का चित्रण विशेष कर विरहिणी आत्मा के हृदय की आर्त पुकार हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

संत राघोदास ने अपनी बात कहने के लिए न तो किसी काव्य गुरु की शरण ली और न भाषा-शास्त्री की, इन्होने तो गुरु कृपा से जिस अनुभवजनित ज्ञान की अनुभूमि प्राप्त की थी उसे सीधी-सादी लौकिक शब्दावली में सटीक ढंग से व्यक्त किया। फिर भी लोक प्रचलित कहावतों और मुहावरों के सहज प्रयोग से इनकी वाणी में जन-मन को मुग्ध कर देने वाला नैसर्गिक सौन्दर्य विद्यमान है।

इनकी भाषा भावों को स्पष्ट करने में सक्षम है क्योंकि इसमें भाषा का प्रमुख गुण सम्प्रेणीयता सर्वत्र विद्यमान है। इन्होने लगभग 250 वर्ष पूर्व राजस्थान की जन-भाषा के भावाभिव्यंजन की शक्ति और सामर्थ्य को प्रकट किया। सूक्ष्म से सूक्ष्म और गहन भाव की अभिव्यक्ति बहुत सरल एवं सादे रुप में इनके काव्य में हुई है। अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हुए इन्होने प्रमुख रुप से राजस्थानी भाषा में अपने विचार व्यक्त किए है।

निष्कर्षत: यदि जन कल्याण हेतु रचित संत राघोदास की वाणी को प्रकाश में लाकर हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा से जोड़ा जाए तो यह लोक कल्याण के लिए तो श्रेष्ठ होगा ही साथ ही रीतिकालीन प्रवृतियों में पल्लवित होने वाली निर्गुण भक्ति धारा के काव्य में श्रीवृद्धि करने में भी सहायक सिद्ध होगा

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *संत राघोदास जी महाराज की अनुभव वाणी-लिपिकर्ता नृसिंहदास आत्माराम वि. सं. 1877 में प्रकाशित*
2. *जन-प्रभाव-परची (बालकराम रचित)-सं. भगवद्दास शास्त्री, बीकानेर*
3. *परची संग्रह (जन्मलीला)- सं. भगवद्दास शास्त्री, बीकानेर*
4. *श्री रामस्नेही संत वाणी एवं भजन संग्रह-आनन्दराम रामस्नेही, झोंकर (मध्यप्रदेश)*
5. *श्री राघोदास जी महाराज की परची-संत अमृतराम*
6. *रामस्नेही संत काव्य: परम्परा और मूल्यांकन-डॉ. हरीश कुमार, साहित्यगार, जयपुर*

रीतिमुक्त एवं छायावादी चतुष्ट्य कवियों के काव्य में प्रणयगत संवेदना की साम्यता

कविता मीणा
व्याख्याता, जा.दे.ब. राजकीय कन्या महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

प्रणयगत भाव-बोध की अनुभूतिगत प्रेषणीयता रीतिमुक्त एवं छायावादी काव्य वस्तु की रागात्मक-वृति में संबंध स्थापित करने वाली आधारभूमि है। वैयक्तिक प्रेमानुभूति की गहनता, उदात्तता, पावनता, सरलता, सूक्ष्मता, अलौकिकता, निष्छलता, प्रणयाकुलता, सौन्दर्यानुभूति एवं विरागात्मक सघनता इत्यादि प्रेमागत संवेदनाओं की साम्यता रीतिमुक्त एवं छायावादी काव्यधारा के मध्य परिलक्षित होती है। कुछ लोग इस वक्तव्य पर असहमत हो परन्तु यह भी सच है कि निश्छल एवं शाश्वत प्रेम एवं औदात्यपूर्ण वेदनानुभूति के विलक्षण सामंजस्य से परिपूर्ण ये दोनों काव्यधाराएँ हिन्दी पाठक में चुम्बकीय आकर्षण पैदा करती है तथा प्रणय संवेदन की दृष्टि से मूल्यांकन करने पर छायावाद रीतिमुक्त काव्य से प्रभावित नजर आता है। प्रेमभाव की उत्कटता एवं पीड़ा की घनीभूतता जितनी घनानन्द के काव्य में दिखाई देती है उतनी ही गहन अभिव्यक्ति प्रसाद के आँसू में दृष्टि गोचर होती है। इसी तरह कवि घनानन्द की सौन्दर्यानुभूति का विस्तार महोदवी के काव्य में दिखाई देता है तथा कवि द्विजदेव की प्रकृति प्रियता की सशक्त अभिव्यक्ति प्रकृति के सुकुमार कवि पंत के काव्य में नज़र आती है। ऐसे प्रसंगों की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि शृंगार-वर्णन में ही नहीं सूक्ष्म परिकल्पना प्रधान चित्रों में भी छायावादी कवि किसी स्तर पर रीतिकालीन कवियों का ऋणी है। यह परम्परा और प्रयोग का स्वस्थ रिश्ता है।[1] कल्पना एवं भावावेग का सहज प्रवाह इन दोनों काव्यधाराओं के प्रेमाभाव में विद्यमान है। प्रणय के आलम्बन सौन्दर्य के कल्पनामय भावपूर्ण सरल चित्रों से जादुई प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम छायावादी एवं रीतिमुक्त कवियों ने नारी के बाह्य एवं आंतरिक सौन्दर्य के मनोहारी चित्र काव्य में प्रस्तुत किये हैं। संवेदन प्रवण हृदय द्वारा सौन्दर्यानुभूति के अनगिनत भाव इनकी काव्यवस्तु में दृष्टिगोचर होते हैं। सौन्दर्य प्रेम का आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य अंग है। प्रेम का मूल आकर्षण सौन्दर्य ही है अर्थात् सौन्दर्य से ही प्रेम उत्पन्न होता है। घनानन्द के प्रेम का मूल कारण भी सौन्दर्य ही है। 'सुजान' के असीम सौन्दर्य पर मुग्ध होकर ही वे उसे प्रेम करने लगे थे। उन्होंने अपने काव्य में भी सौन्दर्य का अनूठा अंकन एवं चित्रण किया है। घनानन्द की सौन्दर्यानुभूति पर मुग्ध होकर ब्रजनाथ ने उनको 'सुन्दर तानि के भेद को जाने' कहकर उनकी प्रशस्ति की है।[2] सौन्दर्यानुभूति के अन्तर्गत प्रिय के स्थूल रुप राशि के अतिरिक्त भाव सौन्दर्य की और भी ध्यान दिया गया है। सौन्दर्य के सूक्ष्म चित्र रीतिमुक्त एवं छायावादी दोनों काव्यधाराओं में अंकित है। 'अंग-अंग तरंग उठै द्युति की' से निराला की 'ज्योति की तन्वी तड़ित द्युति ने क्षमा माँगी' याद आ जाती है।[3] सौन्दर्यावलोकन से प्रत्युत्पन्न इन कवियों की प्रणय भावना इन्द्रियातीत भावभूमि पर आधारित है। प्रिय के शरीर से हटकर इनका प्रेम भाव आत्मानुभूति से अधिक जुड़ा हुआ है। स्वानुभूत प्रेम की सहज अभिव्यक्ति दोनों काव्यधाराओं में परिलक्षित है। इन कवियों का प्रेमागत भाव कृत्रिम व बनावटी न होकर हृदय की उपज है। विचारों की परिपक्वता के स्थान पर इनका प्रणय हृदयगत भावों से सराबोर है। यही कारण है कि इनका काव्य उच्च प्रेमादर्श स्थापित करता है। प्रणय भाव की सरलता, निष्कपटता, अनन्यता एवं एकनिष्ठता की अभिव्यक्ति इनके काव्य में मिलती है। घनानन्द ने प्रेम के सरल उदात्त एवं निष्कपट मार्ग का प्रतिपादन किया है उसमें वक्रता के लिए कोई जगह नहीं है। वह कहते हैं-

अति सुधो सनेह को मारग है यहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं,
जहाँ सुधैं चले तजि आपनपो झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।[4]

छायावादी कवि निराला के काव्य में प्रेमाविषयक ऐसे ही भाव अभिव्यंजित हैं। जैसे-

प्रेम-भाव बिना भाषा का
तान तरल कंपन वह बिना शब्द-अर्थ की।[5]

रीतिमुक्त काव्य और छायावाद के मध्य एक साम्य बिन्दु यह भी है कि प्रणय औदात्य का भाव दोनों काव्यधाराओं में समाविष्ट है। इनके काव्य में दैहिक रागात्मकता कम तथा प्रिय से आत्मिक-संपृक्ति का भाव अधिक विस्तार लिए हुए है। भले ही इनके प्रेमी पात्र इनसे प्रेम न करें परन्तु फिर भी प्रिय के प्रति समर्पित भाव को इन्होंने अपनाया है। प्रिय के प्रति निस्वार्थ एवं समर्पित प्रेम भाव को अपनाते हुए कवि घनानन्द कहते हैं-

चाही-अनचाही जान प्यारे, पै अनंद घन,
प्रीति-रीति विषम सु रोम-रोम रमी है।
मोहि तुम एक, तुम्हें मो सम अनेक आहि,
कहाँ कछु चंदहि चकोरन की कमी है।[6]

कवि ठाकुर के काव्य में भी यही प्रेम भाव परिलक्षित होता है-

ठाकुर एक सो भाव है जो लगि तौ लगि देह धरे जग जीबो।
प्यारे सनेह निबाहिबे कौं हम तौ अपनो सो कियो अरु कीबो।[7]

प्रिय के प्रति यह आत्मीय स्वरुप छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की 'झरना' में संकलित 'समर्पण' अंश में अभिव्यक्त हुआ है। कवि प्रसाद लिखते हैं-

हृदय की तुम्हें दान कर दिया।
शून्य था उसने गर्व किया।।
तुम्हें पाया अगाध गम्भीर।
कहाँ जल बिन्दु, कहाँ निधि क्षीर।।
हमारा कहो न अब क्या रहा?
तुम्हारा सब कब का हो रहा।।
तुम्हें अर्पण: अीं' वस्तु त्वदीय?
छीन लो छीन ममत्व मदीय।।[8]

काव्य के इन अंशों में 'सूफी' प्रभाव दिखलाई देता है। कवियों प्रणयाभिभूत हृदय प्रिय के साथ गहन आत्मीयता के साथ जुड़ा होने के कारण प्रिय-मिलन की अभिलाषा इनके हृदय में सदैव विद्यमान रहती है। प्रेम में 'अतृप्ति' की भावना रीतिमुक्त कवियों में नज़र आती है और प्रेम के ऐसे ही रंगों से छायावादी काव्य का निर्माण हुआ है। प्रेमी पात्र का साथ न मिलने के कारण इनके जीवन का अधिकतम भाग अकेलेपन में ही व्यतीत हुआ, इसीलिए इनके काव्य में विरह के चित्र प्रमुख बन पड़े है। अवसाद एवं निराशा के चित्र इनके काव्य में दिखाई देते है। स्वानुभूति से जुड़ी इनकी विरह वेदना में एक सहज और वास्तविक पीड़ा प्रकट होती है। विरह तो घनानन्द की पूंजी ठहरा...घनानन्द की पीड़ा की टीस सहसा ही हृदय को चीर देती है और मन सहज ही मान लेता है कि दूसरों के लिए किराये पर आँसू बहाने वालों के बीच में एक कवि ऐसा भी है जो सचमुच अपनी-अपनी पीड़ा से रो रहा है।[9] इसी तरह जयशंकर प्रसाद का 'आँसू' कवि की स्वयं की आन्तरिक वेदना व विरहोच्छवास का दस्तावेज है। इस प्रसंग में श्री रामनाथ 'सुमन' का यह संस्मरण उल्लेखनीय है-जिन दिनों आँसू लिखा जा रहा था, तभी मैंने इसके छन्द सुने थे। सुनकर कहा इसमें तो आप छिप न सके बहुत स्पष्ट हो गये। कवि हँसकर चुप रह गया।[10] विरह की अग्नि में तपकर इन कवियों का प्रेम अधिक पावन एवं पवित्र बन गया है तथा प्रेम की उस उच्च भावभूमि तक पहुंच गया जहाँ संयोग एवं वियोग में अन्तर नहीं रह जाता है तथा विरह में भी आनन्द की अनुभूति होने लगती है। वियोग में उपलब्ध आनन्द का यह रुप, जिसे आधुनिक कवि प्रसाद ने 'आँसू' में विविध मन: स्थितियों के बीच से विकसित किया है, कवि के उपनाम 'घनआनंद' में आकर जैसे केन्द्रीभूत और घनीभूत हो गया है।[11]

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा का हृदय भी वियोग के आनन्द में निमग्न रहना चाहता है। वह वेदना से मुक्त प्रिय मिलन की कामना नहीं करती है। वह कहती है-

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो।[12]

कवि प्रसाद ने भी विरह की पीड़ा को सुख के साथ स्वीकार किया हैं विरह से संबंधित अपने मनोभाव उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किये हैं-

सुनो प्राण-प्रिय, हृदय-वेदना विकल हुई क्या कहती है
तव दु:सह यह विरह रात-दिन जैसे सुख से सहती है
मैं तो रहता मस्त रात-दिन पाकर यही मधुर पीड़ा
वह होकर स्वच्छन्द तुम्हारे साथ किया करती क्रीड़ा।[13]

रीतिमुक्त कवि आलम में भी प्रेम-पीर एवं इश्क के दर्द की यह तन्मयता एवं उमंग की झलक दिखलाई देती है।

औषध हितावै ताहि वेदना न भावै,
मीर छाड़ि वीर वैद पीर मोहि प्यारी है।[14]

प्रेम में विषमता एवं असफलता से उसकी अनुभूति एवं भावात्मकता में पुष्टता एवं परिपक्वता बढ़ती है। विरह की अग्नि में तपकर रीतिमुक्त एवं छायावाद के कवि की प्रेम भावना उच्चता एवं उदात्तता की भावभूमि पर स्थापित होकर आध्यात्मिकता की गंध से सुवासीत होने लगती है। कवि की अनुभूति लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर जुड़ने लगती है और कवि हृदय में माधुर्य भाव की भक्ति का प्रादुर्भाव हो उठता है। घनानन्द की रचनाओं में आध्यात्मिकता तथा आधिभौतिक प्रेम ही का योग है। इसलिए 'रहस्यवाद' का अंश कहीं-कहीं आ गया है।[15] माधुर्य-भक्ति में कवि का प्रेमाभाव सांसारिक प्रिय की ही भाँति अलौकिक सत्ता से जुड़ा रहता है। मधुरा भक्ति में जब वियोग की अनुभूति होती है तो परमेश्वर रुपी प्रिय को निष्ठुर, कठोर और उपेक्षक कहकर उलाहना दिया जाता है।[16] प्रियतम रूपी परमात्मा को उलाहना देते हुए कवि घनानन्द कहते है- कि तुम मेरे हृदय में बसे हुए हो फिर भी दर्शन क्यों नहीं दे रहे हो? घनानन्द लिखते हैं-

अंतर मैं बासी पै प्रबासी को सो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहै।
लोचन नि तारे हवै सुझावौ सब सूझौ नाहिं,
बूझि न परति ऐसे सोचनि कहा दहौ।[17]

घनानन्द की ही भाँति महादेवी वर्मा भी अलौकिक सत्ता के प्रति कुछ इसी तरह के उलाहनामय भाव अभिव्यक्त करती है। वह कहती है-

यह कैसी छलना है निर्मम

ISSN 2277-5587

कैसा तेरा निष्ठुर व्यापार।
तुम मन में ही छिपे मुझे
भटकाता है सारा संसार।[18]

घनानन्द और महादेवी की इन पंक्तियों में अलौकिक सत्ता से जुड़े माधुर्य भाव की साम्यता परिलक्षित होती है। हालांकि यह सत्य है कि प्रेम की अलौकिकता का जो विस्तार महादेवी के काव्य में अभिव्यंजित है वह घनानन्द के काव्य में एक अंश रुप में विद्यमान है। उपरोक्त बिन्दुओं पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रीतिमुक्त कवियों की प्रणयगत भाव एवं संवेदना छायावाद के प्रमुख कवि-प्रसाद, पंत निराला महादेवी की प्रणयगत संवेदनाओं से मेल खाती है। प्रेम से जुड़े अनेक अनुभूतियाँ दोनों में समान रुप से दिखलाई देती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. *हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास-रामस्वरुप चतुर्वेदी, पृ.सं.-121*
2. *घनानन्द कवित्त-सं. अशोक शुक्ल, पूर्णचन्द्र शर्मा, पृ.सं.-85*
3. *हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास-बच्चन सिंह, पृ.सं.-227*
4. *घनानन्द कवित्त-सं. अशोक शुक्ल, पूर्णचन्द्र शर्मा, पृ.सं.-84*
5. *छायावाद-नामवर सिंह, पृ.सं.-61*
6. *घनानन्द कवित-सं. अशोक शुक्ल पूर्णचन्द्र शर्मा, पृ.सं.-158*
7. *रीतिमुक्त कवि ठाकुर और उनका काव्य-डॉ. जगदेव कुमार शर्मा-पृ.सं.-129*
8. *प्रसाद ग्रंथावली खण्ड-1- भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली- पृ.सं.-161*
9. *घनानन्द कवित्त-सं. अशोक शुक्ल-पूर्णचन्द्र शर्मा-पृ सं-91*
10. *छायावाद में आत्माभिव्यक्ति-डॉ. शशि मुदीराज, पृ.सं.-101*
11. *हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास-रामस्वरुप चतुर्वेदी-पृ.सं.-73*
12. *महादेवी का काव्य : वस्तु और शिल्प, डॉ. राधिका सिंह- पृं.सं.-171*
13. *प्रसाद ग्रंथावली खंड 1-भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली-पृ.सं.-114*
14. *घनानन्द कवित्त -सं. अशोक शुक्ल, पूर्णचन्द शर्मा- पृ.सं.-134*
15. *घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा-डॉ. मनोहर लाल गौड- पृ.सं.-353*
16. *हिन्दी साहित्य का इतिहास-सं. डॉ. नगेन्द्र- पृ.सं.-366*
17. *घनानन्द कवित्त-सं. अशोक शुक्ल, पूर्णचन्द शर्मा- पृ.सं.-321*
18. *महादेवी वर्मा का काव्य वस्तु और शिल्प-डॉ. राधिका सिंह- पृ.सं.-55*

नारीयता: एक सामाजिक अवधारणा

डॉ. लता कुमार
एसो. प्रोफेसर, शा. मं. पा. राज. स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय,
मेरठ (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

मनुष्य जन्म के समय जैविक प्राणी के रुप में हाड़-मांस का एक लोथड़ा भर होता है। लेकिन जैसे-जैसे वह समूह के मध्य रहता हुआ बड़ा होता जाता है, वह समूह के पूर्व स्थापित मूल्यों और मानदण्डों को अपनाता जाता है। वस्तुत: ये व्यवहार या तो उसे समूह के सदस्यों द्वारा प्रत्यक्ष रुप से सिखाए जाते हैं अथवा वह स्वयं अप्रत्यक्ष रुप से अनुकरण या सीख के द्वारा उन्हें अपना लेता है, जिसके परिणामस्वरुप व्यक्ति का समाजानुरुप व्यक्तित्व निर्मित होता है। यानि व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुसार नहीं वरन् सामाजिक प्रकृति के अनुरुप बनता है।

इस बात को हम महिलाओं के संदर्भ में विशेष रुप से देख सकते हैं। स्त्री मौलिक रुप में एक मानव प्राणी है। कतिपय शारीरिक भिन्नताओं के अलावा स्त्री और पुरुष की स्वभावगत भिन्नताओं की परिसीमन संभव है। लेकिन ऐतिहासिक सत्यता यह है कि स्त्रियों को न केवल शारीरिक रुप से भिन्न माना गया वरन् उनके सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भो को भी प्राकृतिक प्रवृत्ति के रुप में आरोपित कर दिया गया। अर्थात प्रदत्त सामाजिक व्यवस्था ने ही स्त्रियों की प्रकृति और स्थिति का निर्माण किया है। यही कारण है कि उनकी प्रकृति और व्यवहार वस्तुत: मौलिक रुप में स्त्रियोचित न होकर समाज और काल निर्मित रहे हैं। फलत: प्रत्येक युग और काल में कुछ ऐसे महिला नाम अवश्य मिलते रहे हैं जिन्होंने कथित पुरुषोचित कार्यों में अपनी विशिष्टता प्रदर्शित की, फिर चाहे वे अपाला, घोषा, गार्गी या मैत्रेयी हों, रजिया सुल्ताना, चांदबीबी या लक्ष्मीबाई हों, सरोजिनी नायडू, एनी बेसेन्ट या इंदिरा गांधी हों अथवा किरण बेदी, बछेन्द्रीपाल, कल्पना चावला, आरती साहा या इंद्रा नुई हों। इनके अलावा और भी बहुत सारे नाम इस कड़ी में जोड़े जा सकते हैं।

ऐसे में प्रश्न यह उठता है कि यदि महिला प्राकृतिक रुप से ही इन सब कार्यों के सर्वथा अयोग्य थी, तो फिर कुछ महिलाएं इन सब कथित पुरुषोचित कार्यों (यथा युद्ध, रक्षा, राजनीति, रोमांचक खेल और अभियान, पर्वतारोहण, तैराकी और अंतरिक्ष अभियान आदि) को कैसे कर पाईं ? और यदि वह इन तथाकथित पुरुषोचित कार्यों में न केवल सहभागिता, वरन् कौशलपूर्ण प्रदर्शन कर रही हैं, तब यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि स्त्री का अनिवार्य कार्यक्षेत्र और उसकी प्रकृति पूर्णत: नैसर्गिक नहीं, वरन् सामाजिक और सांस्कृतिक है।

इस तथ्य पर यदि कोई यह तर्क करता है कि कुछ महिलाओं के अतिरिक्त अन्य सभी महिलाएं असहाय, अबला और कमजोर रही हैं तो इस आयाम को भी हम उनके सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ से जोड़कर देख सकते हैं। एक दूसरा पहलू यह भी है कि निर्बलता और असहाय शब्द पुरुषों के संदर्भ में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। किसी भी समाज व्यवस्था में सभी पुरुष समान रुप से शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक रुप से सशक्त और समर्थ नहीं होते। फिर इन आयामों को सिर्फ महिला के संदर्भ से देखने का औचित्य ?

वस्तुत: स्त्री और पुरुष के मध्य भिन्नता मात्र प्राकृतिक और जैविक नहीं है, वरन् सामाजिक है। यही कारण है कि वर्तमान समय में स्त्री पुरुष के मध्य भेद करने के लिए Gender शब्द का प्रयोग ज्यादा सार्थक माना जा रहा है। यद्यपि अब तक लैंगिक भेद के लिए Sex शब्द का प्रयोग ही प्रचलित था, किंतु नारीवादी

विचारक Sex शब्द को जीव वैज्ञानिक शब्द मानते हुए स्त्री और पुरुष के सामाजिक संदर्भों को विभेदित करने के लिए Gender शब्द का ही प्रयोग करते हैं।

उपरोक्त संदर्भों के अतिरिक्त एक स्थिति हम मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं, भावनाओं और संवेगों के संदर्भ में भी देख सकते हैं। वस्तुत: मूलभूत आवश्यकताएं, भावनाएं और संवेग स्त्री और पुरुष के साथ समान रुप से जोड़कर देखे जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में, भूख, प्यास, निद्रा, यौन तुष्टि आदि मौलिक आवश्यकताओं तथा घृणा, क्रोध, प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, चिंता और तनाव आदि भावनाओं तथा संवेगों की आवश्यकता व उपस्थिति स्त्री व पुरुष दोनों के लिए समान रुप से महत्वपूर्ण होती है। ऐसे में यह कहना कि अमुक प्रवृत्ति नैसर्गिक रुप से स्त्रियोचित है और अमुक पुरुषोचित, निश्चित रुप से मनो-सामाजिक धाराणाओं और वृत्तियों का पूर्णत: जैविकीकरण करना है।

उपरोक्त विवेचन यह स्पष्ट करने का प्रयास है कि महिला या नारीयता कोई जैविक तथ्य नहीं वरन् एक सामाजिक अवधारणा है। यदि हम समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो कह सकते हैं कि प्रदत्त सामाजिक व्यवस्था ने ही स्त्रियों की प्रकृति और स्थिति का निर्माण किया है। सीमों द बोउआ, तसलीमा नसरीन, कमला सिंघवी, राजेन्द्र यादव तथा नरेन्द्र सिंघवी जैसे विचारकों के लेखन में हम इन तथ्यों को विवेचित कर सकते हैं कि स्त्री पैदा नहीं होती, वरन् बनाई जाती है। अर्थात स्त्री का निर्माण उसके जैविक संदर्भों में नहीं वरन् सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में निहित है जिसे हम प्रस्तुत प्रपत्र के माध्यम से निम्न प्रास्थापनाओं के संदर्भ में स्पष्ट कर सकते हैं:

- स्त्री और पुरुष के सभी संबंधों में समान व्यवहारों का अभाव।
- अलग-अलग समाजों में स्त्री-पुरुष की भिन्न-भिन्न प्रकृति और व्यवहार
- एक ही समाज व्यवस्था में समान काल और समान परिस्थितियों के बावजूद विभिन्न महिला और पुरुष के व्यवहारों में असमानता। तथा
- विभिन्न समाज व्यवस्थाओं, विशेषकर वर्तमान आधुनिक समाज में कथित पुरुष-कार्यक्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका।

इस सबके बावजूद हम आज तक यही सुनते आए हैं कि नारी की गति छल से भरी है, औरत रात्रि है, अव्यवस्था और उपद्रव है-मादेलान, न स्त्री स्वातंत्रमर्हति:-महाभारत, पति वा अनुजाया - वृहदारण्यक उपनिषद, कन्या अभिशाप है-ऐतरेय ब्राह्मण, नारी तुम्हारा नाम ही फ्रैयल्टी है-शेक्सपीयर, आदि।

वस्तुत: उपरोक्त सभी कथोपकथन यही स्पष्ट करते हैं कि नारी अपने मौलिक रुप में इस प्रकार अवस्थित है कि उसकी और प्रकृति में परिवर्तन संभव नहीं है। परंतु यह मात्र मिथक है, जैसा कि फ्रांसीसी लेखिका सीमों द बोउआ अपनी पुस्तक 'स्त्री: उपेक्षिता' (हिन्दी अनुवाद) में कहती हैं - औरत जन्म से ही औरत नहीं होती, बल्कि बढ़कर औरत बनती है। कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नही होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबोगरीब जीव का निर्माण करती है।...एक बच्चा जो अपने लिए अवस्थित है, शायद ही अपने आपको सेक्सुअली समझता है। लड़की हो या लड़का, आंख, हाथ, कान और दूसरे अंगों से संसार को समझता है, अपने सेक्स के माध्यम से नहीं। जन्म का नाटक और मां की कोख से निकलने की पीड़ा दोनों में समान होती है। उसके बाद का शारीरिक विकास और विकासजनित अनुभूति एवं उत्तेजना दोनों में समान होती है। दोनों की संवेदना को वस्तुजगत की जरुरत होती है।...बारह वर्ष की उम्र तक लड़की अपने भाई की ही तरह मजबूत होती है। उसमें भाई के समान ही मानसिक शक्ति होती है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें वह उससे प्रतियोगिता में पिछड़े। किशोरावस्था के पहले और कई बार बचपन से हम लोगों को एक लड़की जो अपने सेक्स में ही निर्धारित लगती है, उसका कारण कोई ऐसी रहस्यमय अंत:प्रवृत्ति नहीं होती जो उसको निष्क्रिय होने को बाध्य करे। यहां हमें यह समझना होगा कि एक लड़की के जन्म के साथ ही दूसरों का उस पर प्रभाव पड़ना शुरु हो जाता है। वस्तुत: दूसरे लोग ही लड़की को शुरु से औरतपन से परिचित कराने लगते हैं।...स्त्री, पुरुष प्रधान समाज की एक कृति है। वह अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए स्त्री को जन्म से ही अनेक नियमों के ढांचे में ढालता चला गया है।

जहां सीमों स्त्री निर्माण की प्रक्रिया की विवेचना करती हैं वहीं भारतीय लेखिका कमला सिंघवी अपनी पुस्तक 'नारी : भीतर और बाहर' में लिखती हैं कि शास्त्रकार ने जाने किस आधार पर यह व्यवस्था दे डाली कि पुरुष के भाग्य और स्त्री के चरित्र को मनुष्य तो क्या देवता भी नहीं जान सकते। भाग्य तो चाहे पुरुष का हो या स्त्री का, भविष्य के गर्त में अज्ञात ही रहता है। शायद जब शास्त्रकार ने अपनी व्यवस्था दी, तो उसकी कल्पना में स्त्री का भाग्य और भविष्य पुरुष की प्रतिच्छाया मात्र रहा होगा और वैदिक तथा उपनिषद् काल की मेधावी स्त्रियों के उदाहरण विस्मृति के गर्भ में समा चुके होंगे।...चरित्र व्यक्ति का गुण और अवगुण हो सकता है, समूचे पुरुष अथवा स्त्री समाज के विषय में कोई एक प्रस्थापना सही हो ही नहीं सकती। स्त्री और पुरुष का चरित्र मौलिक रुप से भिन्न नहीं है। दोनों का मनस्तत्व एक ही है। दोनों की संवेदना और दोनों के आवेग एक से हैं। उनके संस्कार, उनकी सामाजिकता, एक ही स्तर पर आधारित है। यद्यपि प्रत्येक पुरुष और स्त्री के चरित्र में अपनी वैयक्तिक विशेषता अवश्य होती है।...किंतु आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि कोई भी मानव व्यक्ति पूरी तरह से न तो पुरुष है और न स्त्री । सच तो यह है कि प्रत्येक पुरुष में कुछ स्त्रीत्व रहता है और प्रत्येक स्त्री में कुछ पुरुषत्व।

त्रिया चरित्र का ध्वन्यात्मक लांछन मुख्यत: दो आधारों पर टिका हुआ है। एक तो स्त्री चरित्र की तथाकथित चंचलता और दूसरे उसकी रहस्यभरी नाटकीयता। वास्तविकता यह है कि चारित्र्य की चंचलता और नाटकीयता पर स्त्री का एकाधिकार कभी नहीं रहा। यह अवश्य है कि पुरुष को समाज ने इस विषय में निर्बाध स्वतंत्रता दे रखी थी और उसकी प्रत्येक उच्छृंखलता को समाज ने सामान्य रुप से स्वीकार किया।

सुप्रसिद्ध बांगला लेखिका तसलीमा नसरीन अपनी पुस्तक 'औरत के हक में' में लिखती हैं-मेरी किशोरावस्था में फल के एक पेड़ पर चढ़ने से मां ने मुझो रोका था, कहा था, लड़कियों के पेड़ पर चढ़ने से पेड़ मर जाते हैं। मैं बड़ी हुई और जब वनस्पति विज्ञान की पढ़ाई की तो ऐसा कुछ भी नहीं मिला कि नारी के स्पर्श से वृक्षों के जीने मरने

का कोई संबंध है। अन्यत्र वे लिखती हैं-सौन्दर्य केवल स्त्री शरीर में ही नहीं, पुरुष शरीर में भी होता है। तो फिर इसे ढकने की प्रथा सिर्फ स्त्री के लिए ही क्यों है? पुरुष की वेशभूषा पर भी स्त्री की दृष्टि पड़ती है (विपरीत लिंग के प्रति नारी-पुरुष का आकर्षण शरीर विज्ञान के अनुसार बराबर होता है) तो फिर अपने आपको ढांकना पुरुषों के लिए भी अनिवार्य होना चाहिए। मनुष्य की हिंसा के कारण जब मनुष्य ही खुद को छिपाकर रखना चाहता है, तब इस युग को बिना किसी दुविधा के अंधकार युग कहा जा सकता है। अंधेरा छंट जाने पर मनुष्य ही मनुष्य का दोस्त होता है। पुरुष और स्त्री के साहचर्य से जीवन सुंदर और प्रेमपूर्ण हो उठता है। और तब जिस प्रकार पुरुष के सर्वांग के लिए पर्दे की जरुरत नहीं होती, वैसे ही स्त्री के लिए भी नहीं रह जाती।

इसी तथ्य की विवेचना करते हुए समाजशास्त्रीय विचारक नरेन्द्र कुमार सिंधी अपने आलेख 'नारीवाद: परिप्रेक्ष्य व सिद्धांत' में स्त्रियों के सामाजिक व सांस्कृतिक संदर्भ को विविध दृष्टिकोणों से विवेचित करने का प्रयास करते हैं। वे लिखते हैं-महिलाओं की शारीरिक संरचना को पुरुष प्रधान समाज ने एक भिन्न सांस्कृतिक अर्थ प्रदान किया है। नारी शरीर का निर्माण पुरुष सोच, कल्पना व अपेक्षाओं के अनुरुप निर्मित हुआ। इसी सोच को नारी ने स्वीकार करके स्व-शरीर को अपेक्षित स्वरुप में ढालने की प्रक्रिया अपनाई। यह प्रक्रिया समाजीकरण व संस्कारगत मूल्यों के आधार पर प्रतिकूल होती रही।

सिंधी ने नारी संबंधी तीन संबोधों की भी चर्चा की है:

1. नारीत्व (Femaleness),
2. नारीवाद (Feminism) और
3. नारीयता (Feminity)।

सिंधी के अनुसार, 'नारीत्व' (Femaleness) पुरुष और स्त्री के बीच शारीरिक व जैविक अंतर को स्पष्ट करने वाला शब्द है। शारीरिक विभेद जन्म से प्राप्त होते हैं जिनका आधार जननिक होता है। शरीर के भेद का अंतर सभी प्रजातियों में पाया जाता है। यह भेद किसी एक श्रेणी को अधिक क्षमतावान नहीं बनाता और इस बात को स्पष्ट करता है कि 'विभेद', 'असमानता' नहीं है। प्राणिशास्त्रीय विभेदों को सामाजिक असमानता में परिवर्तित करने की प्रक्रिया पुरुष प्रधान समाज की राजनैतिक जोड़-तोड़ का प्रतिफल है।

'नारीवाद' (Feminism) के संदर्भ में वे कहते हैं कि यह एक ऐसा विचार है जो कि पुरुष व स्त्री के मध्य असमानता को स्वीकार कर नारी के सबलीकरण की प्रक्रिया को बौद्धिक व क्रियात्मक रुप से प्रस्तुत करता है। वास्तव में 'नारीवाद' एक विचारधारा भी है और एक आंदोलन भी।

किंतु यहां सर्वाधिक प्रासंगिक संबोध 'नारीयता' (Feminity) है। 'नारीयता' समाज व संस्कृति के द्वारा नारी का विशिष्ट निर्माण है, जिसके माध्यम से उसकी प्रस्थिति, भूमिका, पहचान, सोच, मूल्य व अपेक्षाओं को गढ़ा जाता है। नारीयता के निर्माण की प्रक्रिया समाज की संस्थाओं, सांस्कृतिक मूल्यों व व्यवहारों, प्रथाओं, रीतियों, लिखित व मौखिक ज्ञान परंपराओं, धार्मिक अनुष्ठानों व नारी अपेक्षित विशिष्ट मूल्यों से स्थापित होती है। जन्म से ही बालक व बालिका के समाजीकरण की प्रक्रिया इस तरह संचालित होती है कि बालक को साहसिक, बौद्धिक, आक्रामक कार्यों के प्रति ढालने के अनुरुप बनाया जाता है। बालिका को क्षमा, भय, लज्जा, सहनशीलता, सहिष्णुता, नमनीयता के गुणों को आत्मसात करने की शिक्षा-दीक्षा प्रदान की जाती है। यह प्रक्रिया बालक-बालिका के परिवेश से इस तरह जोड़ दी जाती है कि अंतत: स्व-पहचान व अन्य लोगों की परिभाषा के आधार पर उसके अनुरुप व्यवहार करना सामान्य माना जाता है व प्रदत्त अपेक्षाओं से भिन्न व्यवहार असामान्य करार दिया जाता है।

विभिन्न विद्वानों व लेखकों द्वारा की गई उपरोक्त विवेचनाएं पूर्व निर्मित प्रस्थापनाओं की पुष्टि करती है। स्थापित प्रथम प्रस्थापना के अनुसार समाज में स्त्री और पुरुष के सभी संबंधों में समान व्यवहारों का अभाव होता है। व्यक्ति जैसा व्यवहार अपनी मां और बहन के साथ करता है, पत्नी के साथ अथवा बेटी के साथ इससे भिन्न व्यवहार होता है। यानि मां, बहिन, पत्नी, बेटी व अन्य स्त्रीगत संबंधों के अंतर्गत उसका व्यवहार भिन्न-भिन्न होता है। इससे यह कहा जा सकता है कि स्त्री-पुरुष संबंध मात्र यौनिक संबंध नहीं है और न ही पूर्व निर्धारित व प्रकृतिगत।

दूसरी महत्वपूर्ण प्रस्थापना, सभी समाजों या यूं कहें कि अलग-अलग समाजों में स्त्री की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रस्थिति में भिन्नता पाई जाती है। भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति और प्रकृति अमेरिकन स्त्रियों तथा जर्मन स्त्रियों से भिन्न है। भारत में ही राजस्थान और केरल राज्यों के मध्य स्त्रियों की स्थिति में जमीन-आसमान का अंतर देखा जा सकता है। यह स्थिति भी स्त्रियों की प्रकृति निर्धारण को अस्वीकृत करती है।

तृतीय प्रस्थापना के अनुसार, एक ही समाज व्यवस्था में, एक ही समय और समाज परिस्थितियों के बावजूद विभिन्न महिलाओं के व्यक्तिगत व्यवहारों में भिन्नता दिखाई देती है। भारत में ही एक समय में एक ही परिवार की दो स्त्रियों की स्थिति समान नहीं हो सकती। एक स्त्री पढ़ने-लिखने में कुशल और समझदार हो सकती है, जबकि दूसरी पढ़ाई-लिखाई से दूर एक झगड़ालू या अपराधिक प्रकृति की महिला हो सकती है। ऐसे में यह निर्धारण कि स्वभावत: महिलाएं एक जैसी होती हैं, भ्रमपूर्ण है।

अंतिम निर्धारित प्रस्थापना के अनुसार, आधुनिक समाज व्यवस्था में महिलाओं द्वारा कथित पुरुषोचित कार्यक्षेत्रों में भी प्रवेश किया जा चुका है। अब रोमांचक खेल और कारनामे, युद्ध और राजनीति, विज्ञान और तकनीकि तथा पर्वत और अंतरिक्ष जैसे अनेकानेक कार्यक्षेत्र केवल पुरुषों के ही कार्यक्षेत्र नहीं रह गए हैं। महिलाएं विश्व के हर कोने में अपनी उपस्थिति और कामयाबी के झंडे गाड़ रही हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि यदि अब तक महिलाएं इन क्षेत्रों में नहीं आईं या उनकी पहचान कुछ गिने-चुने नामों से ही है, तो इसका कारण स्पष्ट है कि या तो अब तक उन्हें इन कार्यक्षेत्रों में आने का अवसर ही नहीं मिला या फिर उन्हें ऐसा करने से रोका गया। निश्चित तौर पर यह स्थिति चिड़िया के पर कतरने जैसी ही है। क्योंकि महिलाओं की निरंतर बढ़ती भूमिका और उपलब्धियां यह स्पष्ट करती हैं कि कतिपय शारीरिक अवस्थाओं और स्थितियों को छोड़कर महिलाएं प्रत्येक पुरुषोचित कार्य और भूमिका को पुरुषों के सापेक्ष कर सकने की क्षमता और योग्यता रखती हैं। अक्षमता और अयोग्यता का संबंध तो पुरुषों के साथ भी हो सकता है।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि 'नारीयता' एक जैविक तथ्य न होकर, एक सामाजिक तथ्य और सामाजिक अवधारणा है। लिंगभेद एक शारीरिक सत्य अवश्य है, परंतु मनुष्य की प्रकृति का निर्माण सामाजिक और सांस्कृतिक है।

विभिन्न विद्वानों के वैचारिक विश्लेशण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अब तक पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था द्वारा महिलाओं की प्रकृति का निर्धारण किया जाता रहा है और उसे यथावत् बनाए रखने के लिए उसका मौलिकीकरण किया जाता रहा है। यहां यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि इस सारी व्यवस्था में महिलाओं की सक्रिय व सकारात्मक भूमिका का विश्लेषण उनकी प्रकृति की बजाय स्थापित समाज व्यवस्था से करना ज्यादा न्यायसंगत होगा।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि मनुष्य मूलत: एक जैविक प्राणी है किंतु समाजीकरण की प्रक्रिया उसे एक सामाजिक प्राणी बनाती है। वह किस प्रकृति को धारण करेगा? कैसा और क्या व्यवहार करेगा ? समाज में उसकी स्थिति किन आधारों पर निर्धारित होगी? इन सभी का निर्धारण और नियमन वस्तुत: सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था द्वारा ही होता है। अंतत: यह कहा जा सकता है कि, स्त्री पैदा नहीं होती, वरन् बनाई जाती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. *De Beauvoir, S. 1964 . The Second Sex, New York : Bantam Books.*
2. *Nasreen, Taslima. 1998. Aurat ke Haq mein. In Hindi, Trans. by Munmun Sarkar, New Delhi, Vani Prakashan.*
3. *Singhavi, Kamla. 1985. Nari : Bheetar aur Baher. New Delhi : National Publishing House.*
4. *Singhi, N.K. 1998. "Narivad: Paripreshya & Siddhant". In Pratibha Jain aur Sangeeta Sharma's (Edt.). Bhartiya Stree: Sanskratik Sandarbh, Jaipur; Rawat Publications, p. - 40-70.*

राजस्थान में वृक्ष पूजा : एक परम्परा

डॉ. एम. एल. शर्मा
उप-प्राचार्य, सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर
मीना नरुका
शोधार्थी, महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

shodhshree@gmail.com

इस सृष्टि के आरम्भ में विश्व का वायुमण्डल विषाक्त गैसों से भरा हुआ था। जहाँ जीवन संभव नही था। वृक्षों ने वायुमण्डल में से विषैले तत्वों को खींचकर अपने में आत्मसात किया तथा वातावरण को शुद्ध करके जीवों के रहने योग्य बनाया। प्राणियों को प्राणवायु के रुप में ऑक्सीजन उपलब्ध कराई जिससे पृथ्वी पर जीवन संभव हो सका। प्राणियों को जीवन यापन करने हेतु अब भोजन-पानी की आवश्यकता हुई तदन्तर इनकी पूर्ति की संभावनाऐं भी वृक्षों में ही तलाशी गई। यही कारण है कि जीवनदायी शक्ति के रुप में वृक्षों को आवश्यक माना गया। वर्षा व भोजन में सहायक होने के अतिरिक्त वृक्षों के औषधीय गुणों को भी नकारा नहीं जा सकता।[1] वृक्ष पक्षियों एवं अन्य जीवों के लिए शरणागत रुप में, उपयोगी सामग्री के दाता के रुप में, पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने के स्रोत के रुप में, यहाँ तक कि सूख जाने के पश्चात् भी हमारे भवनों के अवलम्ब व श्रृंगार के साधन के रुप में अपनी गुणवत्ता को सिद्ध करते हैं। अपनी अप्रतिम गुणवत्ताओं व उपयोगिता के कारण ही मनुष्य हमेशा से वृक्षों का ऋणी होने के साथ-साथ उनका गुणगान करता रहा है।[2] सिन्धु सभ्यता के केन्द्रों से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह देखा जा सकता है कि वृक्षों के प्रति आदर व श्रद्धा भाव तत्कालीन समय में भी विद्यमान था। आर्यो ने भी वृक्षों की महत्ता को समझ उन्हें जीवन का अभिन्न अंग माना। ''वृक्षों से ही प्राण सम्भव है तथा वृक्षों में भी प्राण होते है'' की विचारधारा का अनुसरण किया। ऐसा माना गया कि वृक्षों में अद्वितीय शक्ति होती है जो मनुष्य को तेजवान बनाती है। वृक्षों से मनुष्य के आर्थिक हित भी प्रभावित होते है इसलिए आर्थिक हितों की पूर्ति का साधन मान जनसाधारण वृक्षों से जुड़ने लगा। चूंकि धर्म मनुष्य के जीवन में अत्यन्त महत्व रखता था तथा उसके क्रियाकलापों पर भी नियन्त्रण रखता था अत: वृक्षों का धार्मिक महत्व प्रस्तुत कर उन्हें पूजनीय बनाने का प्रयास किया गया। हमारे धार्मिक साहित्य में वृक्षों को पर्याप्त स्थान दे कर धीरे-धीरे वृक्षों का गुणगान व महत्व सम्बन्धित विचार को धार्मिक परम्परा का विषय बनाया गया। धार्मिक ग्रन्थों में वृक्षों का महत्व एवं महिमा का वर्णन इस रुप में देखा जा सकता है:

''ऋग्वेद'' का नौंवा (नवम) मण्डल तथा 6 सूक्त अन्य मण्डल के वृक्ष पूजा को समर्पित किये गये है।[3] वृक्षों को देवताओं के निवास स्थान के रुप में उनके साथ सम्बन्धित कर देवतुल्य बनाया गया। ''भविष्योत्तर पुराण'', ''मत्स्य पुराण'', ''स्कन्द पुराण'' के हेमान्दीव्रतखण्ड, ''प्रबन्ध काव्यों'' में वृक्षों की महिमा का गुणगान मिलता है। धर्म ग्रन्थों के अनुसार मनुष्य जिन वृक्षों का अरोपण करते है वे वृक्ष परलोक में उनके पुत्र बनकर उनके सहयोगी के रुप में जन्म लेते है। इतना ही नहीं मनुष्य वृक्षारोपण करके अपने पितरो को भी प्रसन्न करता है। पौधारोपण करने व उनकी सेवा करने वाला व्यक्ति कभी नरक नहीं जाता ऐसा भी उल्लेख मिलता है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्वंय कहते है-''अश्वत्थ: सर्ववृक्षाणाम्'' अर्थात् में सब वृक्षों में पीपल (अश्वत्थ) का वृक्ष हूँ। इस कथन में उन्होंने अपने आपको पीपल के वृक्ष के समाचीन घोषित किया है। इसका तात्पर्य है कि स्वयं भगवान भी चाहते है लोग वृक्षों के प्रति आत्मयिता रखे। ''पद्मपुराण'' के मतानुसार पीपल को प्रणाम करने और उसकी परिक्रमा करने से आयु लंबी होती है। पीपल में समस्त तीर्थ

माने गये है इसलिए मुंडन आदि संस्कार पीपल के नीचे करवाने का प्रचलन है।[4] ''मनुस्मृति'' में वृक्ष योनी पूर्वजन्म के कर्मो के कारण मानी गई है। मनुस्मृति में ही कहा गया है कि '' वृक्ष सुख-दुख का अनुभव करते है। परमपिता परमात्मा ने वृक्षों का अविर्भाव संसार में परोपकार के लिए ही किया है। खुद भीषण धूप में रहकर दूसरों को छांया प्रदान करना और अपना सर्वस्व दूसरों के कल्याण के लिए अर्पित कर देना वृक्ष का सतपुरुष के समान ही आचरण को दर्शाता है।'' वृक्षों के इन धार्मिक महत्व सम्बन्धी विचारों ने मानव के मानस पटल को प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरुप धार्मिक विचारधारा से ओतप्रोत मनुष्य ने वृक्षों की पूजा करना आरम्भ किया जो निरन्तर चलते हुऐ एक परम्परा बन गई। राजस्थान की धरा भी इस परम्परा से दूर नहीं रह सकी। वृक्ष पूजन परम्परा अति प्राचीन काल से राजस्थान में विविध रुपों में चली आ रही है।

वट सावित्री का व्रत कर इस अवसर पर महिलायें अमर सौभाग्य की कामना से बरगद के वृक्ष की पूजा करती है। अशोकाष्टमी के दिन अशोक वृक्ष की पूजा दुख निवारण की आशा से की जाती है। कार्तिक मास में आंवला नवमी के दिन आंवले की पूजा के साथ ही आवंले के वृक्ष की 108 परिक्रमाएं लगाई जाती है। इसके अतिरिक्त सोमवती अमावस्या को तुलसी की पूजा, सोमवार को बिल्व के वृक्ष की पूजा, गरुवार को केले के पेड़ की पूजा, शनिवार को व वैशाख मास में पूर्णिमा के दिन पीपल पूजा, ज्येष्ठ में बरगद, मार्गशीर्ष में कदम्ब, कार्तिक में तुलसी की पूजा विशेष फलदायी मान कर की जाती है। राजस्थान के लगभग हर घर-परिवार में तुलसी का पौधा विद्यमान रहता है जिसकी रोज पूजा अर्चना यह मानते हुऐ की जाती है कि तुलसी की जड़ में विष्णु का वास होता है।[5] पीपल में दशामाता का भी निवास माना जाता है इसलिए चैत्र कृष्ण दशमी को पीपल वृक्ष की पूजा की परम्परा प्रचलित है।

पीपल, वट, नीम, अशोक, आंवला, कल्पवृक्ष, खेजड़ी आदि वृक्षों से जुड़ी धार्मिक कथाओं से पता चलता है कि ये वृक्ष प्रेम, धैर्य, दया, मानसिक दृढ़ता व आर्थिक सम्पन्नता के प्रतीक रहे है तथा मनुष्य को संकट का सामना करने की शक्ति प्रदान करते है। महिलाओं का वृक्ष पूजन परम्परा को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाने में विशेष योगदान रहा है। मध्यकाल में जयपुर राजघरानें की महिलाओं द्वारा भी वृक्ष की पूजा किये जाने के प्रमाण अभिलेखीय साक्ष्यों से प्राप्त होते हैं।[6]

ग्रामीण अंचलों में पीपल की पूजा करते हुऐ स्त्रियाँ गाती है:

''कुंवारी पूजे तो घर न वर, परिणयां पूजे तो पूत खिलावें
डूहव पूजे तो करणी सुधरे, बूढ़ी पूजे तो बैकुण्ठी जाये''

ग्रामीण अंचलों में ऐसा भी माना जाता है कि हर स्त्री को कम से कम जीवन में एक बार तो पीपल वृक्ष की पूजा अवश्य करनी चाहिए। ऐसी विचारधारा भी प्रचलित है कि पीपल के वृक्ष में ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीनों का वास होता है तथा समस्त वृक्षों में यह श्रेष्ठ है। पीपल वृक्ष की सेवा से संतान प्राप्ति होती है।

नीम के वृक्ष तले शीतला माता का वास माना गया जो बच्चों के स्वास्थ्य को ठीक रखती है अत: बच्चे स्वस्थ रहे इस कामना से नीम की पूजा करने की परम्परा बनी। मारवाड़ व उसके आसपास के क्षेत्र में कजली तीज के दिन सौभाग्यवती स्त्रियाँ नीम की पूजा कर अमर सुहाग मांगती है। सोमवती अमावस्या के दिन तुलसी के पौधे की 108 परिक्रमा करके दान पुण्य करने का विधान है।

श्रावणी अमावस्या (हरियाली अमावस) के दिन कल्प वृक्ष की पूजा इच्छित फल की प्राप्ति हो इस उद्देश्य से की जाती है। कल्प वृक्ष पूजा का राजस्थान में अलग ही उल्लास देखा गया है इतना ही नही कल्प वृक्ष स्थलों पर इस दिन मेलों के आयोजन की परम्परा निराली एवं अद्भुत है।

पुराणों में वर्णित है कि कल्पवृक्ष को श्रीकृष्ण देवराज इन्द्र से जीतकर लाये थे। पद्मपुराण में अमृत की बूंदे धरा पर गिरने से कल्पवृक्ष की उत्पत्ति होना स्वीकारा गया है। राजस्थान में टोंक जिले में टोंक-कोटा राजमार्ग से करीब दस किलोमीटर दूर स्थित ''बालून्दा'' में प्राचीन कल्पवृक्ष है। जिसके नीचे ग्रामीणजन दीप जलाते है। नवविवाहित जोड़े यहाँ ढोक लगाने आते है। समय-समय पर कल्पवृक्ष स्थल पर धार्मिक अनुष्ठान भी किये जाते है। अजमेर-ब्यावर मार्ग पर अजमेर से करीब पन्द्रह किलोमीटर दूर मांगलियावास नामक ग्राम में दो कल्पतरुओं की युगल जोड़ी आस्था का केन्द्र है। जिसे राजा-रानी नाम से सम्बोधित किया जाता है। बांसवाड़ा से रतलाम जाने वाले मार्ग पर भी विशाल कल्पतरु जोड़ा विद्यमान है जहाँ लोग श्रद्धावत आते है। इस प्रकार राजस्थान में कुछ स्थानों पर विशाल एवं प्राचीन कल्पवृक्ष है जिनकी पूजा की समाज में अलग ही परम्परा विद्यमान है।

विवाहोपरान्त नीम वृक्ष की पूजा भी दुल्हा-दुल्हन से करवाने की परम्परा राजस्थान में प्रचलित रही है। राजस्थान में दशहरे के दिन खेजड़ी पूजा का शास्त्रीय उल्लेख मिलता है। स्थानीय राजपूत शासकों द्वारा भी दशहरे के दिन खेजड़ी की पूजा की जाती थी एवं इस परम्परा का निर्वहन आज भी किया जाता है। ऋग्वेद के अनुसार यज्ञ कर्म के लिए शमी (खेजड़ी) जरुरी समिधा मानी जाती है।[7]

सम्पूर्ण राजस्थान में स्थानीय आलौकिक शक्तियों को ''लोकपीर'', लोकदेवता, लोकदेवी के रुप में पूजने का प्रचलन दृष्टव्य है। सामान्यत: वृक्षों को संरक्षित करने एवं पूजनीय बनाने के उद्देश्य से इन स्थानीय लोक आस्था के प्रतीक देवताओं के पूजास्थल गाँवों में वृक्ष के नीचे बनाये जाते हैं। इन स्थलों को ''थान'' के नाम से जाना जाता है। गोगाजी, भैंरुजी, तेजाजी, आईमाता, झुंझारजी आदि को पूजने का स्थान ये चबूतरानुमा थान ही होते है। इससे सटे वृक्षों की आस्थावत होकर पूजा किये जाने का प्रचलन है क्योंकि यह माना जाता है कि जिस वृक्ष के नीचे जिस लोकदेवता का थान होता है वे सर्प आदि जीवों के रुप में उस वृक्ष पर निवास करते हैं''। अत: उस वृक्ष को हानि नहीं पहुंचाकर उसकी पूजा की जानी चाहिये। राजस्थान में एक कहावत भी प्रचलित है ''दीना रा नाथ नीम नारायण''[8] अर्थात नीम में भगवान का वास है वो ही आम आदमी का सहारा है।

राजस्थान के गाँवों में बरगद या पीपल के घने वृक्षों के चारों ओर पक्का चबूतरा बनाकर उसकी सुरक्षा करने की परम्परा भी देखी गई है। गांव की महिलाओं द्वारा ऐसे वृक्षों की पूजा भी की जाती है। ऐसे वृक्षों के चारों ओर बने चबूतरे पर गाँव के पंच पटेल बैठकर अक्सर ग्राम की समस्याओं का निदान करते है अत: यह स्थल इस रुप में भी आस्था का केन्द्र होता है।

इसका तात्पर्य यह है कि वृक्ष पूजा परम्परा अतिप्राचीन रही है। इस

परम्परा के निर्वहन का मुख्य उद्देश्य वृक्षों को बचा कर पर्यावरण को असन्तुलित होने से रोकना था। इस उद्देश्य को राजस्थान के निवासियों ने भी भली-भांति समझने का प्रयास किया तथा इसे सहर्ष स्वीकार करके परम्परा के रुप में आत्मसात किया। अलग-अलग वृक्षों की पूजा हेतु अलग-अलग दिन निर्धारित कर हमारे आस-पास बहुतायत में पाये जाने वाले लगभग सभी वृक्षों के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए पूजा गया। अत: हम कह सकते हैं कि राजस्थान में वृक्ष पूजा धार्मिक विचारधारा से पनपी परम्परा है। जिसके कारण भले ही अलग-अलग हो परन्तु उद्देश्य वृक्ष के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए उसे बचाना ही रहा है जिससे वृक्ष संरक्षित रहे सके।समाज में इसकी प्रासंगिकता प्रत्येक काल के लिये सहज-सिद्ध हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. *बी. एस. कुमार-''फोरेस्ट्री इन इन्सियन्ट इण्डिया'' सम लिटरेरी ऐविडेन्स ऑन प्रोडक्टिव एण्ड प्रोटेक्टिव आसपेक्ट, एशियन एग्री, हिस्ट्री, भाग 12, नं. 4, पृ. सं. 303-305, 2008 ई.*
2. *डॉ. रामानन्द तिवारी-भारतीय संस्कृति के प्रतीक (सांस्कृतिक निबन्धो का संग्रह) पृ. सं. 163, अर्चना प्रकाशन, अजमेर, 1996 ई.*
3. *बी. सी. सिन्हा-ट्रीज इन वे ह्यूमन वेलफेयर ''ट्री वरशिप इन एन्शियन्ट इण्डिया'', पृ. सं. 17-58, ईस्ट वेस्ट पब्लिकेशन, लंदन एण्ड द हेग, 1979 ई.*
4. *डॉ. प्रकाशचन्द गंगराडे-हिन्दुओं के रीति रिवाज तथा मान्यता (धार्मिक तथा पौराणिक प्रमाणों सहित), पृ. सं. 130-31, पुस्तक महल, दिल्ली, 2006 ई.*
5. *पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड, अध्याय-26, श्लोक 38*
6. *जयपुर, अर्जदास्त भादवा वदी 5 (पांचम) 1762, मिति संवत राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर*
7. *'ईजे यज्ञेभि: शशमे शमीभि'' ऋग्वेद: 6/2/2*
8. *राजस्थान में प्रचलित कहावत*

भारतीय राजनीति की नवीन प्रवृतियाँ, जो वास्तव में है चुनौतियाँ

डॉ. प्रेमलता परसोया
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

भारत में संसदीय लोकतंत्र की प्रक्रियाओं का प्रारम्भ आजादी से पूर्व ब्रिटिश सरकार के शासन काल में ही हो गया था। राजनीतिक प्रणाली को सशक्त तथा सुदृढ़ करने में अधिकतर वो ही लोग थे जिन्होनें स्वतंत्रता आन्दोलन के संघर्ष में हिस्सा लिया था तथा उनकी रग-रग में देश प्रेम व राष्ट्र भक्ति भरी हुई थी, अर्थात महात्मा गाँधी, मोतीलाल नेहरु, पण्डित जवाहर लाल नेहरु, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, मौलाना आजाद, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, फिरोज गाँधी, वल्लभ भाई पटेल सरीखे राजनीतिज्ञों का स्मरण हो आता है जिन्होनें भारतीय राजनीति को मूल्यों और आदर्शों के आधार संचित व निर्मित करने का प्रयत्न किया। तत्समय किसी का कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं था अपितु राष्ट्रहित एकमुश्त सभी का लक्ष्य होता था। राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण' का प्रमुख लक्ष्य जन सेवा ही होता था परन्तु धीरे-धीरे भारतीय राजनीति में अनेक ऐसे परिवर्तन आते गये जिन्होनें इसका वास्तविक स्वरुप पूर्णत: बदल दिया है। स्वाधीनता के पश्चात् भारत की जो अपेक्षाएँ तथा सपने थे वो साकार होने के बजाय टूटते व बिखरते चले गये तथा जनता की आशाओं पर भी पानी फिरता गया।

आज स्थिति यह है कि कोई राजनीति में आना चाहता है तो अनायास ही उस पर शंका के बादल मंडराने लगते हैं क्योंकि आज राजनीति का पर्याय तिकड़मबाजी व अटकलबाजी हो गया। यह माना जाने लगा है कि जो कहीं भी जीवन में सफल नहीं होता राजनीति उसका अंतिम आश्रय स्थल हैं। आज भारतीय राजनीति में जो नवीन प्रवृत्तियाँ उभर रही है उन पर विचार किया जाना समीचीन होगा ताकि सही समय पर सुधार किया जा सके।

गठबन्धन की राजनीति- स्वतंत्रता आन्दोलन में चूँकि कांग्रेस पार्टी 1885 से जूझ रही थी अत: आजादी के बाद जनता की स्वाभाविक रूप से इस दल के प्रति सहानुभूति रही, इसलिए केन्द्र सरकार में 1977 तक तथा राज्यों में 1967 तक एक छत्र कांग्रेस पार्टी की सरकारें सत्तारुढ़ हुई। बाद में धीरे-धीरे अन्य राजनीतिक दलों का अस्तित्व स्थापित हुआ तथा अनेकानेक क्षेत्रीय दलों की भी स्थापना हुई। वैसे भारत में बहुदलीय व्यवस्था को स्वीकृति मिली हुई है। 1977 में केन्द्र में प्रथम बार भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनी परन्तु किन्हीं कारणों से पूरा कार्यकाल नहीं कर पाई तथा 3 साल बाद पुन: कांग्रेस की सरकार बनी। 1990 के दशक से गठबन्धन सरकारों का दौर शुरु हुआ जो अभी तक जारी है।

गठबन्धन सरकार विभिन्न राजनीतिक दलों के परस्पर सहयोग से बनती है। जब गठबन्धन सरकार की नीतियों का निर्धारण किया जाता है तब उसमें सम्मिलित सभी राजनीतिक दलों द्वारा विचार-विमर्श किया जाता है सभी दलों के विचारों का मिश्रण ही नीति का रुप ले लेता है। गठबन्धन सरकार साझा कार्यक्रम बनाती है और उसका सामूहिक उत्तरदायित्व होता है।[1] इसमें सरकार सफल भी हो सकती है तथा असफल भी क्योंकि विभिन्न राजनीतिक दल कई बार अपने स्वार्थों के लिए मुख्य दल पर दबाव डालते हैं तथा उनकी बात नहीं मानने पर समर्थन वापस लेने की धमकी भी देते रहते हैं। ऐसे में सरकार महत्वपूर्ण निर्णय नहीं ले पाती है। अभी कुछ समय पूर्व अमेरिका के साथ परमाणु मुद्दे पर भी सरकार अल्प मत में आ गई थी जबकि परमाणु ऊर्जा भारत की आम सबसे बड़ी आवश्यकता है और राष्ट्रीय हित जैसे मुद्दो पर किसी भी प्रकार का

अन्तर मन्तव्यों में नहीं होना चाहिये।

जैसे वर्ष 1989 में विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चे ने भारतीय जनता पार्टी और वामपंथी दलों के बाहरी समर्थन से गठबन्धन सरकार बनाई थी। बाद में मण्डल कमीशन को लेकर मतभेद उभरे और 10 महीने बाद ही 1990 में सरकार गिर गई। 1996 में एक बार फिर एच.डी. देवगौड़ा के नेतृत्व में यूनाईटेड फ्रंट की सरकार बनी। यह सरकार भी सिर्फ एक साल ही चल पाई। वर्ष 1997 में इन्द्रकुमार गुजराल प्रधानमन्त्री बने। उन्होनें भी यूनाईटेड फ्रंट की सरकार का नेतृत्व किया। यह सरकार भी एक साल ही चल पाई। 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में एनडीए की सरकार बनी लेकिन 13 महीने बाद ही सरकार गिर गई।[2]

ये प्रवृत्तियाँ उचित नहीं है क्योंकि बार-बार सरकार का गिरना एवं मध्यावधि चुनावों का होना अति खर्चीला कार्य है और आजकल तो वैसे ही चुनाव अति खर्चीले हो गये है। चुनावों (बार-बार) के खर्च को राष्ट्र के विकास तथा कल्याणकारी कार्यों में लगाया जाये तो बेहतर होगा। गठबन्धन सरकारें होना कोई बुरी बात भी नहीं है क्योंकि इससे एक दल की निरंकुश प्रवृत्ति पर रोक लगती है तथा विभिन्न दलों का सत्तारूढ़ दल के साथ सहयोगी होना लोकतान्त्रिक प्रक्रिया का ही भाग है परन्तु साझा सरकार में शामिल दलों में आपसी सद्भावना तथा एकता का होना अति आवश्यक है। शामिल दलों का लक्ष्य केवल सत्ता प्राप्ति नहीं होना चाहिये अन्यथा सरकार की उस गाडी के सामने स्थिति हो जाती है जिसके चारों तरफ घोड़े जोत दिये जायें तथा प्रत्येक घोडा गाड़ी को अपनी ओर खींचने का प्रयास करें। जैसा अभी हाल में ही दिल्ली में गठबन्धन सरकार की कार्यप्रणाली का नजारा देखा। राष्ट्रहितों से परिपूर्ण मन्तव्य होने के बावजूद सहयोगी दलों ने मात्र 2 महिनों में ही अपना समर्थन वापस ले लिया तथा सरका गिर गई और राष्ट्रपति शासन लगाना पड़ा।

राजनीति में अपराधीकरण: इसके साथ भारतीय राजनीति में अपराधीकरण की प्रवृत्ति भी अपनी जड़े जमाती जा रही है। राजनीतिक दलों ने लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली के नाम पर ऐसे लोगों को उम्मीदवार बनाया जो कि कई प्रकार के अपराधों में लिप्त थे। राजस्थान पत्रिका 06 नवम्बर 2013 को सोमपाल शास्त्री ने अपने लेख में लिखा था कि देशभर में 1258 विधायकों के खिलाफ अपराधिक मामले हैं और संसद में 163 सांसद दागी हैं। राजनीति के अपराधीकरण की यह प्रवृत्ति कोई तात्कालिक घटना नहीं है, यह वर्षों से चली आ रही सिद्धान्तहीन एवं नैतिकता विहीन व्यक्तियों के लगातार राजनीति में बने रहने का परिणाम है, जिसके कारण आज की राजनीति आदर्श विहीन होकर सिर्फ लुभावने नारों के बल पर किसी भी प्रकार से सत्ता हासिल करने का माध्यम बन कर रह गई है।[3] राजनीति में तमाम सुधार के प्रयत्न तब तक बेमानी ही रहेंगे जब तक आपराधिक रिकॉर्ड के व्यक्तियों को सत्ता में आने से नहीं रोका जायेगा। इसी तरह अपराध करने वाले व्यक्तियों को बचाने के लिए राजनीतिज्ञों का आगे आना तथा उन्हें संरक्षण देना भी अपराधीकरण की प्रवृति में ही आता है। इसलिए आजकल राजनीति से अपराधियों का अंतिम आश्रय स्थल कहा जाता है। राजनीति के अपराधीकरण का प्रभाव समाज के सभी क्षेत्रों में पड़ता है तथा सभ्यता और संस्कृति के पतन का मार्ग भी प्रारम्भ हो जाता है। मानवीय और नैतिक मूल्यों का पतन भी होने लगता है और ये सब नजारा प्रत्यक्षत: समाज में दिखाई दे रहा है जो कि हम सभी के लिए गम्भीर चिन्ता का विषय है। इसी कारण राजनीति धन का खेल बनती जा रही है इसलिए आम अनुभवी व योग्य व्यक्ति भी राजनीति में आना ही नहीं चाहता। राजनीतिक दल भी उसी व्यक्ति को टिकट देना चाहते हैं जो येन केन प्रकारेण जीत हासिल कर सके। राजनीति दल टिकट वितरण के समय प्रत्याशी की सम्पत्ति का यह अध्ययन नहीं करते कि उसने यह श्रम के आधार पर कमाई या अवैध तरीके से संग्रहित की है? राजनीति के अपराधीकरण पर अंकुश लगाने के लिए बीते सालों में अनेक प्रयास किये गये, सर्वदलीय बैठकें भी हुई लेकिन बात, विचार-विमर्श और सुझावों के पिटारे से आगे कभी नहीं बढ़ पाई। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के दस साल के कार्यकाल में राजनीति और अपराध पर संसद और संसद के बाहर चर्चा तो हुई, लेकिन अपने ही सहयोगियों के दबाव के आगे ईमानदार प्रधानमंत्री भी चुप्पी की चादर ओढकर सोने को विवश हो गये। राजनीति का एक मात्र लक्ष्य जब सत्ता हथियाना ही रहा जाये तो इसमें साफ सुथरी छवि के लोगों के लिए जगह अपने आप कम हो जाती है।[4] राजनीतिक दलों से प्रबुद्ध व प्रबन्धात्मक कुशलता वाले तथा राष्ट्रहित को समझने वाले लोगों को ही अपना प्रत्याशी बनाना चाहिये तथा चुनावी खर्च में चन्दे के नाम पर अपराधी लोगों से धन प्राप्त नहीं करना चाहिये अन्यथा चुनाव जीतने के बाद ये सत्तारुढ सरकार को अपने स्वार्थों की पूर्ति करवायेगें तथा राजनीति में अपराधीकरण की यह श्रृंखला निरन्तर बनी रहेगी जो कि एक देश के स्वस्थ राजनीतिक भविष्य के दृष्टिकोण से उचित नहीं है। साथ ही जनता को भी मताधिकार का प्रयोग बिना सोचे समझे जाति व धर्म जैसे परम्परागत आधारों पर नहीं करना चाहिये तथा धन लुटाने वाले प्रत्याशी को भी अच्छा नहीं समझना चाहिये क्योंकि इससे अपराधी व्यक्तियों को सरकार तक पहुँचने का मौका मिल जायेगा। अत: अच्छे शिक्षित, सज्जन व ईमानदार व्यक्तियों को चुनाा चाहिये ताकि सदन में सच्चे लोग पहुँचे।

चुनावी वादे तथा घोषणाएँ-

भारतीय राजनीति में आज यह प्रवृत्ति बनी हुई है कि भोली-भाली मासूम जनता के सामने चुनावों में वादों तथा घोषणाओं का पिटारा खोला जाता है जिसके प्रभाव में जनता अपना बेशकीमती वोट बिना सोचे-समझे ही दे आती है। प्रचार-प्रसार के साधनों द्वारा वादों का ढिंढोरा पीटा जाता है परन्तु उन वादों के साथ समय सीमा का विवरण/उल्लेख नहीं होता है इसीलिए चुनाव जीतने के बाद उन वादों पर उचित समय में अमल नहीं हो पाता है। कभी कभार तो ऐसा भी होता है कि एक चुनाव से पूर्व वादे किये जाते हैं तथा अगले चुनाव से पूर्व उन्हें पूरा किया जाता है तथा एक ही वादे से दो बार लाभ राजनीतिक पार्टियाँ उठा लेती है। चुनावी घोषणा पत्र के निर्माण के समय ही राजनीतिक पार्टियों को समय सीमा का आकलन करके ही घोषणा करनी चाहिये। सरकार में हर चीज की एक पूरी प्रक्रिया होती है उसे लांघकर शार्टकट नहीं अपनाया जाता चाहिये। केवल मात्र लोक लुभावने नारे सरकार तथा लोकतन्त्र को मजबूत नहीं बना सकते। समय रहते वादे पूरे नहीं करने का यह भी नुकसान होता है कि अगले कार्यकाल में सरकार बदल गई तो पूर्ववर्ती सरकार की

योजनाएँ उस दिलचस्पी से पूरी नहीं की जायेंगी या फिर उनका स्वरुप बदल दिया जायेगा। वर्तमान में यह प्रवृत्ति एक तो विपक्षी दल द्वारा सत्तरुढ़ सरकार की कार्य प्रवृत्ति की बखिया उधेड़ी जाती है तथा दिखावटी वादों की बौछार कर दी जाती है ऐसे में साधारण अशिक्षित मतदाता भ्रमित भी हो जाते हैं। अत: राजनीतिक दलों को सुदृढ़ सिद्धान्तों के आधार पर चुनावी ऐजेण्डा सार्थक तथा समय सीमा में पूर्ण होने वाला तैयार करना चाहिये।

मात्र सत्ता प्राप्ति की होड़-

आज भारतीय राजनीति में येन केन प्रकारेण सत्ता प्राप्ति की होड भी नजर आती है इसके लिए चाहे दलों व उनके नेताओं को कुछ भी करना पड़े। इसके लिए एक दूसरी पर्टियों पर आरोप प्रत्यारोपों का दौर इस कदर चलता है कि जनता दिग्भ्रमित हो जाती है तथा सच और झूँठ का अन्तराल उसे खत्म होता दिखाई पड़ने लगता है। विरोध के लिए विरोध सर्वत्र सभी दलों में दिखाई देने लगता है।

सत्ता पाने के लिए राजनीतिक दलों में आरोप-प्रत्यारोपों के दौर पहले भी चलते थे, लेकिन राजनीतिक मर्यादा का ध्यान अवश्य रखा जाता था। आज तथ्यों के फर्जी मुठभेड़ के साथ-साथ नेताओं के चरित्र हनन की राजनीति अव्वल हो गई है। आश्चर्य तो तब होता है जब राजनीतिक दलों का शीर्ष नेतृत्व भी एक दूसरे को होड़ में शामिल हो जाता है। सस्ती लोकप्रियता हासिल करने के लिए घटिया आरोपों का चलन बढ़ने के साथ ही लगता है मुद्दों की राजनीति का जमाना लदता जा रहा है। ये सत्ता का मोह किसी उम्र विशेशज्ञ तक ही नहीं अपितु ताउम्र रहता है। जब तक सांस चलती है राजनीति से जुड़ा व्यक्ति उच्च से उच्चतर पदों की प्राप्ति की लालसा संजोये रखता है। भारत ही ऐसा देश है जहां बुजुर्ग अवस्था के काफी नेता सक्रिय राजनीति में जुड़े रहते हैं।

सभी जन सेवा के बहाने का आवरण भी ओढ़े रहते हैं तथा सत्ता व सक्रिय राजनीति से बाहर रहकर कोई समाज सेवा नहीं करना चाहता जबकि उस स्थिति में ज्यादा सेवा की जा सकती है। समाज सेवा राजनीति से बाहर मार्गदर्शक के रुप में भी की जा सकती है परन्तु यहाँ हर कोई सत्ता का मोह नहीं छोड सकता। इस वजह से भारत में राजनीति के क्षेत्र में युवाओं को कम अवसर मिल पाता है। इस देश में तो राजनीतिक क्रियाकलापों में सक्रिय रहने की भी निश्चित उम्र तय कर देनी चाहिये ताकि लोकतान्त्रिक आधार पर राजनीति का संचालन हो। साथ ही शेष लोगों को भी भागीदारी का अधिक मौका मिलेगा। प्रत्येक पद पर व्यक्ति दो कार्यकाल तक ही कार्य कर पाये तो शायद हमारी व्यवस्था लोकतान्त्रिक आधार को प्राप्त कर पाये क्योंकि यदि एक व्यक्ति 40 वर्ष या 50 वर्ष की उम्र में राजनीति में प्रवेश करता तथा 80 या 90 वर्ष तक संलिप्त रहता है तो औसतन 40 या 50 वर्ष उसके हिस्से में आ गये तो अन्यों को मौका किस प्रकार मिल सकता है? अत: कार्यकाल या टर्न निश्चित कर शायद राज व्यवस्था में सुधार सम्भव हो पाये।

सांसदों/विधायकों का सदन में व्यवहार- सरकार के तीन अंगों में व्यवस्थापिका चाहे वह केन्द्र की हो या राज्य की सबसे महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि इसी स्थान पर किसी भी मुद्दे या विषय पर विचार-विमर्श किया जाता है। इसमें वो व्यक्ति बैठते है या चुनकर आते है जिन्हें जनता ने अपना प्रतिनिधि चुनकर भेजा है तथा ये जनता के हितों के आधार पर ही सदन में कार्य करते हैं तथा लोकहित से सम्बन्धित विधेयक कानून भी सदनों में बनते हैं। परन्तु कुछ समय से विधायकों/सांसदों का जिस प्रकार का आचरण सदन में कार्यवाही के दौरान देखने को मिल रहा है वह अति निन्दनीय ही कहा जा सकता है। 14 फरवरी 2014 को राजस्थान पत्रिका में छपी कुछ खास खबरों का जिक्र में यहाँ अवश्य करना चाहूँगी-

22, जुलाई 2008-देश की सबसे बड़ी पंचायत की गरिमा उस समय तार-तार हो गई जब अमेरिका से परमाणु करार के मुद्दे पर यूपीए सरकार अल्पमत में आ गई थी। बहस के दौरान भाजपा के सांसदों ने खरीद फरोख्त का आरोप लगाते हुए संसद में नोटो के बण्डल लहराये।

08, मार्च 2010-महिला आरक्षण विधेयक के विरोध में राज्य सभा में सपा, राजद और लोजपा के सदस्यों ने सभापति की मेज के माइक उखाड़े।

05, सितम्बर 2012-राज्यसभा में सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति और जनजाति को पदोन्नति में आरक्षण देने सम्बन्धी संविधान संशोधन विधेयक पेश करने के दौरान बसपा सांसद अवतार सिंह करीमपुरी और सपा सांसद नरेश अग्रवाल के बीच हाथापाई।

दिसम्बर 2012-जनलोकपाल पर बहस के बाद कार्मिक राज्यमन्त्री नारायण सामी जब सरकार की तरफ से बिल पर जवाब दे रहे थे तभी आर जे डी सांसद रघुवंश प्रसाद उनके हाथ से बिल की कॉपी छीनकर फाड़ दी।

23, मार्च 2013-राज्यसभा में बजट सत्र के दौरान श्रीलंकाई तमिलों के मुद्दे पर हो रहे हंगामें के दौरान नाराज एक सांसद ने अध्यक्ष के आसन का माईक उखाड़ा।

अभी हाल ही में **13 फरवरी 2014** को संसद सदस्य द्वारा सदन में काली मिर्च छिड़कर शर्मसार ही किया है। इन घटनाओं से लोकतन्त्र समृद्ध होने के बजाय जर्जर होता रहता है तथा सबसे बड़ी बात इस तरह की घटनाओं से जनता की भावनाओं को ठेस पहुँचती है। उसे पीड़ा होती है तथा राजनीतिक क्रियाविधियों से भी उसका रुझान कम होने लगता है। किसी समय जब संचार के साधन अधिक दुरुस्त नहीं थे तो जनता को सदन की कार्यवाही का अधिक पता नहीं लग पाता था परन्तु आज इन्टरनेट के जमाने में सिर्फ देश ही नहीं विदेशों तक में तुरन्त प्रभाव से प्रत्येक घटना पहुँच जाती है और ऊपरवर्णित घटनाओं से भारत महान् देश की प्रतिष्ठा ही गिरती है।

अत: निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि भारतीय राजीनति में आई नकारात्मक घटनाओं व प्रवत्तियों पर अंकुश लगना अति आवश्यक है। यह महान् संस्कृति व परम्पराओं वाला देश, ''वसुधैव कुटुबकम'' व ''सर्वे भवन्तु सुखिन:'' वाली अवधारणा वाला देश है अत: इसके यश व गौरव को बचाये रखने तथा पुन: विश्व गुरु बनाने हेतु राजनीतिक चुनौतियों का मिलजुल कर समाधान करना होगा। इसके लिए सर्वाधिक आवश्यकता जनता की ''सतत् जागरूकता'' की है। जनता की जागरुकता ही राजनीतिक दलों व प्रत्याशियों की नकारात्मक गतिविधियों पर रोक लगा पायेगी। भारतीय राजनीति में आई वर्तमान चुनौतियों को खत्म करने की जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति, संस्था की नहीं हो सकती अपितु सभी भारतीय जनों को इसके लिए प्रयत्नशील होना होगा।

साधन अधिक दुरुस्त नहीं थे तो जनता को सदन की कार्यवाही का अधिक पता नहीं लग पाता था परन्तु आज इन्टरनेट के जमाने में सिर्फ देश ही नहीं विदेशों तक में तुरन्त प्रभाव से प्रत्येक घटना पहुँच जाती है और ऊपरवर्णित घटनाओं से भारत महान् देश की प्रतिष्ठा ही गिरती है।

मीडिया की भूमिका इसमें सर्वाधिक हो सकती है क्योंकि समाज में कोई भी सकारात्मक परिवर्तन या क्रान्ति की सफलता में मीडिया की भूमिका ही सबसे अधिक होती है। किसी भी घटना को समाज में पहुँचाना तथा जनता को प्रभावित करने में प्रिन्ट व इलेक्ट्रोनिक दोनों ही प्रकार के मीडिया की भूमिका की भूमिका होती है अत: मीडिया को सत्तारुढ दल व धनाढ्य वर्ग से प्रभावित हुए बिना जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित तथा जागरुक बनाने में अपनी भूमिका निभानी चाहिये।

देश मे सुदृढ़ व स्वस्थ परम्पराओं के निर्माण की भी आवश्यकता है तथा जो परम्पराएँ विद्यमान है उनके व्यावहारिक क्रियान्वयन पर ध्यान देने की जरुरत है। हमारे यहाँ कई बार विधायक को लोकसभा चुनाव लड़ाया जाता है तथा विधायक का उप-चुनाव करवाना पड़ता है। देखने-सुनने में यह साधारण सी बात है परन्तु सरकार धन के खर्च की दृष्टि से यह चिन्ताजनक तथ्य है तथा चुनाव के समय सारा प्रशासन चुनाव में ही लग जाता है अन्य सभी कार्य बन्द कर दिये जाते हैं। आज चुनावों का सरकारी खर्च जैसा कि आँकड़े बताते है कि 1952 में पहली लोकसभा के चुनाव में 51.12 लाख रु. खर्च हुए थे वहीं 2009 की 15वीं लोकसभा के चुनाव में 6306.00 करोड़ रु. खर्च हुए जो कि प्रतिशत की दृष्टि से काफी वृद्धि दिखाई देती है। ऐसे में किसी दुर्घटना के अलावा उप-चुनावों पर रोक का प्रयत्न किया जा सकता है।

आज भारत के युवा विश्व में आर्थिक, इंजीनियरिंग, मेडिकल व तकनीकी क्षेत्र में अपना प्रभाव दिखा रहे हैं तथा भारतीय राजनीति के स्वस्थ विकास में भी वो अपना आवश्य योगदान निभाकर भारत माँ के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाकर भारत देश को विश्व प्रमुख के लिए तैयार करेंगे तथा सारी दुनिया एक दिन भारत का लोहा मानेगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन व डालचन्द जैन, भारतीय राजनीति के नये आयाम, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, पृष्ठ-55*
2. *राजस्थान पत्रिका, 27 फरवरी 2014, सम्पादकीय पृष्ठ*
3. *डॉ. राजेश जैन व डालचन्द्र जैन, पूर्व उद्धृत, पृष्ठ-25*
4. *राजस्थान पत्रिका 03 फरवरी 2014, सम्पादकीय पृष्ठ*
5. *राजस्थान पत्रिका, 10 फरवरी 2014, पृष्ठ-1 (संपा.)*
6. *दैनिक भास्कर, दैनिक नवज्योति, इण्डिया टुडे, फ्रण्टलाईन, योजना, वर्ल्ड फोकस.*

शिक्षण प्रशिक्षण के क्षेत्र में नवीनता

विपिन सोलंकी
शोध-छात्र, सी.आई.ई. शिक्षा संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

shodhshree@gmail.com

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा का प्रसार तीव्र गति से हुआ। शिक्षा प्रसार के साथ अध्यापको की संख्या में भी वृद्धि हुई। प्रसार के साथ गुणात्मक सुधार पर भी ध्यान दिया जाने लगा हैं। इस दृष्टि से शिक्षण-प्रशिक्षण की महत्ता और बढ़ गयी है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के आरम्भिक वर्षो की कठिनाई के बावजूद शिक्षा और शिक्षक प्रशिक्षण की गति रुकी नहीं है। सभी के लिए शिक्षा का अधिकार और शिक्षा का महत्तव को ध्यान में रखते हुए अध्यापको की मांग में दिन प्रतिदिन वृद्धि होने लगी। इस दृष्टि से शिक्षक प्रशिक्षित संस्थान अधिक मात्रा में खुलने लगे है।

तालिका 1: संपूर्ण भारत में जिस तरह शिक्षा शास्त्र से जुड़ी शिक्षण संस्थाएं खुलने लगी हैं, इसे हम साथ में संलग्न एक तालिका के माध्यम से समझ सकते हैं।

तालिका 2: शिक्षण प्रशिक्षण के क्षेत्र में जितनी तीव्र गति से शिक्षण प्रशिक्षण की संस्थाएं उत्तर भारत में दुकान की तरह खुलने लगीं हैं, उसका विवरण हम साथ में संलग्न तालिका के माध्यम से समझ सकते हैं।

एक और शिक्षक-प्रशिक्षण के संख्यात्मक विकास की और ध्यान दिया जा रहा है तथा दूसरी ओर शिक्षाशास्त्री उसके गुणात्मक विकास के लिए प्रयत्नशील है। गुणात्मक विकास की दृष्टि से सुधार तभी संभव है, जब अध्यापक को उसके व्यवसाय का शिक्षण सफल रीति से दिया जाएं उसमें स्वंय ऐसी प्रवृति आ जाए कि शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक क्रांति ला सके और अपनी वृति के भावी विकास की नींव ठीक से डाल सकें। अत: स्पष्ट है कि उच्च कोटि की अध्यापक-प्रशिक्षण शालाएं बहुत बड़ा योगदान दे सकती है।

प्रशिक्षण शालाओं के विकास एंवम उनमें नवी लोन के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम शिक्षक प्रशिक्षण के उद्देश्य तथा लक्ष्य स्पष्ट हो तथा यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि शिक्षक-प्रशिक्षण के माध्यम से किस प्रकार के शिक्षक तैयार करने है? इन भावी शिक्षकों के लिए किस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है? शिक्षक को किन दक्षताओं का अर्जन एक सफल शिक्षक की दृष्टि से करना चाहिए? अध्यापक-व्यवसाय् को सफल बनाने को दृष्टि से, अध्यापको में किस प्रकार का दृष्टिकोण विकासित करने की जरुरत है इसी प्रकार के अनेक प्रश्नों का समाधान ढूँढ़कर ही शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में नवीनता लाई जा सकती है।

शिक्षण-प्रशिक्षण के क्षेत्र में नवीनता लाने के लिए निम्नलिखित पद्धतियों पर विचार किया जा सकता है-

1. **शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों को फन: गठित किया जाना चाहिए**- वर्तमान पाठ्यक्रम की आलोचना इसलिए की जाती है कि इसमें विद्यालय में किए जाने वाले व्यावहारिक कार्य पर कम ध्यान दिया जाता है, अध्यापक कही पर तो पूरे पाठ्यक्रम के अन्तर्गत केवल कुछ पाठ देने पड़ते है। यदि अध्यापक-अभ्यास पर्यात रूप से कराने की सुविधा किसी महाविद्यालय के पास अच्छे सहयोगी विद्यालयों के रुप में नहीं है, तो उन्हे प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। यह आवश्यक है कि प्रत्येक शिक्षक प्रशिक्षण संस्था दो साथ पर्याप्त संख्या में साधन- सुविधा पूर्व विद्यालय संलग्न किए जाएं। जिन संस्थाओं में अध्यापक-अभ्यास पर पर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता, वहाँ सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत शिक्षा, दर्शन मनोविज्ञान और पाठन विधियों के उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकती। यदि सिद्धान्तों की शिक्षा को वास्तविक बनाना है, तो यह नमनीय व स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बनने योग्य होनी चाहिए। शिक्षक-प्रशिक्षकों को उनकी रुचि के विशेष क्षेत्रों की ओर उन्युख करने के लिए नयें व्यावसाथिक पाठ्यक्रमों

का विकास किया जाना चाहिए।

2. **सहगामी प्रवृतियों का प्रशिक्षण**- प्रत्येक छात्र-अध्यापक को एक या दो सहगामी प्रवतियों का विशेष रुप से प्रशिक्षण मिलना चाहिए। महाविद्यालय को पुस्तकालय् संगठन शारीरिक शिक्षा आदि का विशेष प्रशिक्षण देना चाहिए इसी तरह विद्यालय प्रशासन दृश्य-श्रत्य शिक्षा, समाज शिक्षा, बालचर शिक्षा, नागरिक शिक्षा, रेड क्रॉस आदि का भी प्रशिक्षण दिया जा सकता है। प्रशिक्षण काल में प्रशिक्षण संस्थाओं में समय-समय पर विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का भी आयोजन करते रहना चाहिए जिससे छात्र-अध्यापकों की सृजनात्मक को उभरने व निखारने के अवसर प्राप्त हो सकें।

3. **महाविद्यालयों और शिक्षा अनुसंथान के मध्य खाई को पाटना**- शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों का काय केवल अध्यापको को प्रशिक्षण करना ही नहीं बाल्क शिक्षाशास्त्र के सभी पक्षों में अनुसंधान करना व कराना भी होना चाहिए। इस कार्य के लिए वहाँ योग्य प्राध्यापक होने चाहिए। और प्रयोग के लिए एक प्रायोगिक या प्रदर्शन विद्यालय भी होना आवश्यक है। साथ ही साथ संस्थानों के पास अपनी निजी पुस्तकालय भी होना आवश्यक है जिसमे खोज अनुसंधान व नवीन ज्ञान से व शिक्षा के आयोगो से संबधित पुस्तकें रखी गई हों।

4. **अधिक से अधिक मात्रा में समूह कार्य (सेमिनार पद्धति) का प्रयोग करना**- शिक्षा द्वारा विधार्थी में विचारों के विकास के अवसर दिए जाने चाहिए ताकि वह निर्भीक होकर अपने विचारों को स्वंतत्रतापूर्वक अभिव्यक्त कर सके। शिक्षक प्रशिक्षण के माध्यम से भावी अध्यापकों में विचारों के विकास के अवसर दिए जाने चाहिए। उनमे सृजनात्मकता को विकसित करना चाहिए। उनको सत्य खोजने के लिए जिज्ञासु बनाना चाहिए तथा तर्क शक्ति का विकास करना चाहिए। ये शिक्षा के ऐसे उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कोई निश्चित विधाएँ और कार्यक्रम शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में सामान्य रुप से दृष्टिगत नहीं होते।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ग्रुप कार्य या समुह में कार्य करनें की विधियों पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत सेमिनार पद्धति एक प्रभावशाली माध्यम है सेमिनार में विचार विमर्श के लिए किसी शैक्षिक समस्या को प्रस्तुत किया जाता है। प्रतिभागी पत्र-वाचन करतें हैं और उस पत्र की समीक्षा की जाती है। किसी विशेषज्ञ को समस्या पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए आमांत्रित किया जाता है। इन भाषणों की समूह समालोचना करता है।

इस सेमिनार पद्धति के तीन प्रमुख तत्व हैं-

प्रथम स्वतंत्र विचार-विमर्श जिसमें प्रशिक्षण न्यूनतम हस्तक्षेत करता है। द्वितीय प्रत्येक सदस्य को इसमें भाग लेने का समान अधिकार होता है और तृतीय विचार-विमर्श का केन्द्र, जिसमें विषय से संबंधित लिखित सामग्री होती है।

5. **व्यवस्था विश्लेषण पद्धति का प्रयोग करना**- सिस्टम विश्लेषण पद्धति शिक्षा में एक नया आध्याय है जो सीखने की प्रक्रिया में महान् परिवर्तन उत्पन्न कर सकता है। इस पद्धति के अन्तर्गत यह विश्वास किया जाता है कि यदि शिक्षा के उद्देश्य साधन और कार्य का विभाजन उचित ढ़ग से किया गया हो तो शिक्षण वैज्ञानिक रीति से संभव है। सिस्टम पद्धति का एक लाभ तो यह है कि किसी भी कार्य या सम्पूर्ण व्यवस्था का सिस्टम के अन्तर्गत विश्लेषण किया जाता है क्योंकि यह विशिष्ट कार्य किसी एक किसी एक सम्पूर्ण व्यवस्था का भाग होता है और उस कार्य या समस्या का उस सम्पूर्ण भाग से संबंधित करके अध्ययन किया जाता है।

शिक्षक प्रशिक्षण का सिस्टम पद्धति के अन्तर्गत यदि विश्लेषण किया जाए, तो स्पष्ट होगा कि शिक्षक का प्रशिक्षण किसी शाला अथवा महाविद्यालय क संदर्भ में किया जाता हैं जैसे देश कि शिक्षा नीति किसी अन्य विशाल व्यवस्था से अर्थात् समाज से संबधित होती है। इस कारण शिक्षक प्रशिक्षण के उद्देश्य विषय-वस्तु विधियाँ और मूल्यांकन सम्पूर्ण सिस्टम अर्थात व्यवस्था के अन्तर्गत स्पष्ट किए जाने चाहिए। साथ ही साथ विद्यार्थियों के व्यक्गित रुचियों क्षमताओं व योग्यताओं शिक्षण में प्रयुक्त होने वाली उपलब्ध शिक्षण-सामग्री का अभ्यास और उनके प्रयोग की जानकारी आदि बातो को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

6. **शैक्षाणिक तकनीक को प्रयोग में लाना**- शिक्षाशास्त्रयो द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि शिक्षक-प्रशिक्षण में शैक्षणिक तकनीक की आवश्यकता है जो सीखने के सिद्धान्तों नियमों और शिक्षा के उद्देश्य पर आधरित हो। आधुनिक शैक्षाणिक तकनीक को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए विद्यार्थी को व्यक्तिगत रुचियों सीखने के सिद्धान्तों और शैक्षिक वातावरण को ध्यान में रखना आवश्यक है। इसके लिए एक प्रयोगशाला बनाने आवश्यकता है जिसमें विभिन्न उपकरणों के उपयोग के संबंध मुं परीक्षण होते रहने चाहिए और प्रत्येक उपकरणों के उपयोग के संबंध में परीक्षण होने रहने चाहिए। प्रत्येक उपकरण को सापेक्षिक महत्व पर शोधकार्य होना चाहिए। आधुनिक विचार विनिमय के साधनों का ज्ञान प्रशिक्षणर्थियों को दिया जाना चाहिए। शैक्षाणिक तकनीक के ज्ञान को शिक्षक-प्रशिक्षण का एक उपयोगी अंग बनाने की दृष्टि से इस कार्यक्रम में निम्नलिखित सुझावों को सम्मिलित किया जाना चाहिए-

- शैक्षाणिक तकनीक के सैद्धान्तिक पक्षों का समोवश पाठ्यक्रम में होना चाहिए।
- शिक्षक-प्रशिक्षको को शैक्षणिक तकनीक के विभिन्न पक्षों का ज्ञान देना यथा-उसका उपयोग, मूल्य विभिन्न प्रकार के उपकरणों का ज्ञान उनका सापेक्षिक महत्व।
- उद्योग अन्य स्थानीय शिक्षण संस्थाओं से सहयोग बढ़ाना ताकि उपकरणों का आदान-प्रदान सम्भव हो सके आदि।

7. **प्रशिक्षण सुविधाओं का विस्तार**- प्रशिक्षण सुविधाओं में प्राथमिकता के आधार पर विस्तार किया आना चाहिए जिसकी सुंस्तुति शिक्षा आयोग 1964-99 के द्वारा भी की गई है। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि प्राथामिक या माध्यमिक विद्यालायों का प्रत्येक शिक्षक अपनी नियुक्ति के समय प्रशिक्षण हो या नियुक्ति के तीन साल के भीतर प्रशिक्षण प्राप्त कर ले। साथ ही साथ विद्यालय शिक्षको को शिक्षण कार्य करते हुए शिक्षा एंव प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधाएँ दी जानी चाहिए। इसके लिए विश्वविद्यालयों एंव प्रशिक्षण-संस्थाओं द्वारा विभिन्न कार्यक्रम संचालित किए जाने चाहिए।

8. **अध्यापक प्रशिक्षण की अवधि को बढ़ाना**- माध्यमिक विद्यालयी पाठ्यक्रम पूरा कर चुके प्राथामिक विद्यालयीन शिक्षको के

लिए व्यावसायिक पाठ्यक्रम की अवधि ढाई माह सैद्धान्तिक विषयों के पठन-पाठन व अध्ययन के लिए व 6 महीने इण्टरनशिप की व्यवस्था की जानी चाहिए जहाँ पर छात्र उन सैद्धान्तिक विषयों का प्रयोग कक्षा-कक्ष में कैसा किया जाता है सीख सकें। ठीक इसी प्रकार स्नातक पाठ्यक्रम पूरा कर चुके शिक्षकों की प्रशिक्षण अवधि को बढ़ा कर 15 माह तक किया जाना चाहिए।

राज्य शिक्षक-शिक्षा मंडलों से शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों व पाठ्यक्रमों का सर्वेक्षण करवाना चाहिए और उनमें आवश्यक संशोधन करने की पहल करनी चाहिए।

निष्कर्ष-

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं को न केवल शालाओं की वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षक प्रशिक्षित करने चाहिए, बल्कि भविष्य में होने वाले तकनीकी ज्ञान में विस्फोट के कारण शिक्षा जगत में होने वाले संभावित परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए शिक्षक-प्रशिक्षण की व्यवस्था करने का लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए। शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नवीनता तभी लाई जा सकती है जबकि इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के उद्देश्य समाज में निरंतर होने वाले परिवर्तनों, सामाजिक मूल्यों तकनीकी विकास और शालाओं की मांगों को ध्यान में रखते हुए निश्चित किए जाने चाहिए।

Table 1
All India Status Of Recognition Of Teacher Education Programmes (as On 31st March, 2010)

Total No. of Institutions	As on 30.03.2009	As on 30.03.2009
	1167	11712

S. No.	Name of Teacher Education course	Total No. of courses recognised as on 30.03.2009	No. of courses granted recognition during 2009-2010	No. of courses withdrawn recognition during 2009-2010	Total No. of courses recognised as on 30.03.2010	Total intake approved as on 31st March 2009	Total intake approved as on 31st March 2010
1	2	3	4	5	6	7	8
1	Pre-Primary	256	0	2	253	12638	12538
2	Elementary	6104	151	90	6165	344542	343052
3	B.E. Ed.	16	1	0	17	591	627
4	Secondary (B. Ed.) (Distance Education)	6185	433	253	6363	640183	651608
5	Secondary (E. Ed.) (Distance Education)	35	2	0	37	20350	20850
6	M.Ed. Face to Face	752	145	22	885	19038	22213
7	M.Ed. (Distance Education)	9	0	0	9	1455	1455
8	M.Ed. (Part Time)	5	1	0	7	150	175
9	C.P.Ed.	143	7	4	145	7297	7347
10	B.P. Ed.	513	27	22	518	29639	29399
11	M.P.Ed.	125	10	1	135	3769	3877
12	Others	254	5	1	258	16499	16539
13	Total	**14405**	**782**	**395**	**14792**	**1096053**	**1111680**

ISSN 2277-5587

Table 2a
Region/state-wise Status Of Teacher Education
State: Uttar Pradesh

Total No. of Institutions	As on 30.03.2009	As on 30.03.2009
	1507	1261

S. No.	Name of Teacher Education course	Total No. of courses recognised as on 30.03.2009	No. of courses granted recognition during 2009-2010	No. of courses withdrawn recognition during 2009-2010	Total No. of courses recognised as on 30.03.2010	Total intake approved as on 31st March 2009	Total intake approved as on 31st March 2010
1	2	3	4	5	6	7	8
1	Pre-Primary	20	0	0	20	961	961
2	Elementary	202	12	3	211	17450	17790
3	B.E.Ed.	6	1	0	7	210	245
4	Secondary (B. Ed.) (Distance Education)	913	192	24	1081	92640	108100
5	Secondary (E. Ed.) (Distance Education)	1	0	0	1	500	500
6	M.Ed. Face to Face	94	9	2	101	2310	2525
7	M.Ed. (Distance Education)	0	0	0	0	0	0
8	M.Ed. (Part Time)	2	0	0	2	50	50
9	C.P.Ed.	0	0	0	0	0	0
10	B.P. Ed.	142	18	2	158	7460	7900
11	M.P.Ed.	31	1	1	31	945	945
12	Others	12	0	0	12	729	729
13	Total	1423	233	32	1624	123255	139745

Table 2b
Region/state-wise Status Of Teacher Education
State: Haryana

Total No. of Institutions	As on 30.03.2009	As on 30.03.2009
	519	609

S. No.	Name of Teacher Education course	Total No. of courses recognised as on 30.03.2009	No. of courses granted recognition during 2009-2010	No. of courses withdrawn recognition during 2009-2010	Total No. of courses recognised as on 30.03.2010	Total intake approved as on 31st March 2009	Total intake approved as on 31st March 2010
1	2	3	4	5	6	7	8
1	Pre-Primary	13	0	1	12	650	600
2	Elementary	295	1	19	278	17420	13900
3	B.E.Ed.	0	0	0	0	0	0
4	Secondary (B. Ed.) (Distance Education)	275	9	24	260	28510	26000
5	Secondary (E. Ed.) (Distance Education)	1	0	0	1	500	500
6	M.Ed. Face to Face	37	3	5	35	880	875
7	M.Ed. (Distance Education)	0	0	0	0	0	0
8	M.Ed. (Part Time)	0	0	0	0	0	0
9	C.P.Ed.	11	1	2	10	550	500
10	B.P. Ed.	10	0	2	8	500	400
11	M.P.Ed.	0	0	0	0	0	0
12	Others	20	0	0	20	1332	1332
13	Total	**663**	**14**	**53**	**624**	**50342**	**44107**

ISSN 2277-5587

Table 2c
Region/state-wise Status Of Teacher Education
State: Bihar

Total No. of Institutions	As on 30.03.2009	As on 30.03.2009
	76	86

S. No.	Name of Teacher Education course	Total No. of courses recognised as on 30.03.2009	No. of courses granted recognition during 2009-2010	No. of courses withdrawn recognition during 2009-2010	Total No. of courses recognised as on 30.03.2010	Total intake approved as on 31st March 2009	Total intake approved as on 31st March 2010
1	2	3	4	5	6	7	8
1	Pre-Primary	1	0	0	1	150	150
2	Elementary	33	2	0	35	1850	1950
3	B.E.Ed.	0	0	0	0	0	0
4	Secondary (B. Ed.) (Distance Education)	35	17	0	52	4110	5710
5	Secondary (E. Ed.) (Distance Education)	3	0	0	3	1500	1500
6	M.Ed. Face to Face	3	0	0	3	75	75
7	M.Ed. (Distance Education)	0	0	0	0	0	0
8	M.Ed. (Part Time)	0	0	0	0	0	0
9	C.P.Ed.	0	0	0	0	0	0
10	B.P. Ed.	1	1	0	2	50	100
11	M.P.Ed.	0	0	0	0	0	0
12	Others	0	0	0	0	0	0
13	Total	**75**	**20**	**0**	**95**	**7735**	**9485**

Table 2d
Region/state-wise Status Of Teacher Education
State: Rajasthan

Total No. of Institutions	As on 30.03.2009	As on 30.03.2009
	854	726

S. No.	Name of Teacher Education course	Total No. of courses recognised as on 30.03.2009	No. of courses granted recognition during 2009-2010	No. of courses withdrawn recognition during 2009-2010	Total No. of courses recognised as on 30.03.2010	Total intake approved as on 31st March 2009	Total intake approved as on 31st March 2010
1	2	3	4	5	6	7	8
1	Pre-Primary	23	0	0	33	1770	1770
2	Elementary	292	0	2	290	16535	14500
3	B.E.Ed.	1	0	0	1	50	50
4	Secondary (B. Ed.) (Distance Education)	853	9	34	828	88850	82800
5	Secondary (E. Ed.) (Distance Education)	1	1	0	2	500	500
6	M.Ed. Face to Face	42	1	0	43	1105	1140
7	M.Ed. (Distance Education)	0	0	0	0	0	0
8	M.Ed. (Part Time)	0	0	0	0	0	0
9	C.P.Ed.	0	0	0	0	0	0
10	B.P. Ed.	16	0	1	15	1020	750
11	M.P.Ed.	3	0	0	3	45	45
12	Others	3	0	0	3	270	0
13	Total	**1244**	**11**	**37**	**1218**	**109945**	**101555**

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. हेडनफिल्ड.जी.के. तथा सटिनेट. टी.एम. (1965), अध्यापकों की शिक्षा, आत्माराम एंड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली.
2. जोशी. दिनेश चन्द्र तथा मेहता चतर सिंह (1995), शिक्षण-प्रशिक्षण के सिद्धांत की समस्याएं, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर (राजस्थान).
3. माथुर. बी.एस. (1956), आधुनिक शिक्षा की समस्याएं, दिल्ली पुस्तक सदन, नई दिल्ली.
4. हेगारटी. लीण्डा (1995), न्यू आइडिया फोर टीचर एजूकेशन, वैसल विलिंगटन हाउस, लण्डन.
5. चक्रवर्ती. मोहंती (1998), टीचर एजूकेशन मॉडर्न ट्रेन्ड्स, कनिष्का पब्लिशिंग, नई दिल्ली.
6. भाटिया. रंजना (2001), शिक्षण-शिक्षा में चुनौतियां, अमेटी इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन, नई दिल्ली.
7. चक्रवर्ती. मोहित (2008), शिक्षक-शिक्षा : आज और कल, कल्पना पब्लिकेशन्स इंडिया, दिल्ली.
8. शास्त्री. विपिन (2009), रॉल ऑफ आई.सी.टी. इन टीचर ट्रेनिंग, पेसिफिक पब्लिकेशन्स, दिल्ली.
9. जागीरा. एन.के. तथा आहूजा. अनुपम (1999), प्रभावकारी शिक्षण प्रशिक्षण, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा.
10. जागीरा. एन.के. (1979), टीचर ट्रेनिंग एंड टीचर इफेक्टीवनेस, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली.

गुरु जम्भेश्वर के दार्शनिक विचार : ब्रह्म एवं जीवात्मा

डॉ. ओमश्री राठौड
व्याख्याता, रा.बा.उ.मा.वि.डि.मी, ब्यावर

shodhshree@gmail.com

भारतीय इतिहास में मध्य काल सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और साहित्यिक दृष्टि से अराजकता का युग था। ऐसे समय में एक विशाल सांस्कृतिक और धार्मिक आंदोलन का उदय हुआ जिसे भक्ति आंदोलन कहा जाता हैं। भारतीय धर्म साधना में भक्ति मार्ग का अपना विशिष्ट महत्व रहा हैं। इसने सर्वप्रथम सम्पूर्ण सामाजिक संरचना को व्यापक रुप से प्रभावित किया और एक लम्बी अवधि तक उसका पथ प्रदर्शन किया। थार के मरुस्थल का एक महत्वपूर्ण खण्ड जांगल देश इन्हीं शाश्वत मूल्यों को परिष्कृत करने में तल्लीन रहा हैं। इस क्षेत्र की उदारता अपने दृढ़ निश्चयों से कभी डिगी नहीं हैं जब भी कभी सांस्कृतिक विश्मता या तनाव आया तो इसी धरती से महापुरुषों ने जन्म लेकर उस विश्रृंखलता को दूर कर दिया।

चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में न केवल राजनैतिक विश्रृंखलता की प्रक्रिया उभरकर सामने आई बल्कि सांस्कृतिक स्तर पर भी हलचल पैदा हो गई ऐसे समय में गोगाजी पाबूजी, मेहोजी, हडबूजी, रामदेवजी, तेजाजी, मल्लीनाथजी, जसनाथजी आदि संतो ने अवतरित होकर मरुस्थल के जनजीवन को सुधारने का अथक प्रयास किया लेकिन प्रत्येक के कार्यस्थल की एक सीमा थी। इसी संत परम्परा में जाम्भोजी अग्रगण्य थे जिन्होने अपना रास्ता आलोचना या समीक्षा तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि उन्होंने उसके स्थान पर एक नया रास्ता भी बतलाया जिसके फलस्वरुप धर्म के असली तत्व को समझा जा सके और आचार विचार की पवित्रता को पुन: स्थापित किया जा सके। वे जनता को प्रचलित धार्मिक पाखण्डो एवं बाह्याडम्बरो से मुक्त करना चाहते थे।

गुरु जम्भेश्वर (1451-1536ई.) ने 1485ई. में पीपासर से चार कोस दूर सम्भराथल नामक धोरे पर बिश्नोई सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। धर्म के क्षेत्र में जहाँ एकेश्वरवाद का संदेश दिया हैं वहीं 29 नियमों द्वारा मानव को नैतिक आचरण की शिक्षा भी दी हैं ताकि समाज में व्यवस्था बनी रहे। बिश्नोई सम्प्रदाय वर्ग भेद और जाति भेद का विरोध करते हुए सामाजिक एकता स्थापित करता हैं। यह एक मुक्त विचाराधारा हैं जो स्वतंत्रता, समानता और आध्यात्मिक आस्था पर टिकी हुई हैं।

गुरु जम्भेश्वर (जाम्भोजी) की अपनी ''सबदवाणी'' और परवर्ती बिश्नोई संत ईश्वरानन्द जी कृत ''श्री जम्भसागर'' संहिता स्वामी ब्रह्मनन्द कृत ''बिश्नोई धर्म विवेक'' ''जम्भाष्टक प्रकाश'' संत साहब राम जी राहड़ कृत ''श्री जम्भसागर'' में दार्शनिक विचारों प्रकाश पड़ता हैं इस आलेख में ब्रह्म एवं जीवात्मा की अवधारणा का विवेचन करने का प्रयास किया हैं।

ब्रह्म: जाम्भोजी निर्गुण विचारधारा के प्रमुख सन्त थे। वे परमतत्व को निर्गुण मानते हैं अर्थात् ब्रह्म अजर-अमर, निर्विकार, अयोनि, अजन्मा, अव्यक्त, अनाम तथा जाति बंधन से परे हैं, परन्तु घट-घट में व्याप्त हैं। उसके न कोई माता हैं, न पिता हैं।

''माय न बाप न बहण न भाई।
साख न सैण न होता परव परवारु''।।

(सबदवाणी सबद - 4)

वह साधारण योनि में उत्पन्न नहीं वरन् अगम और अगोचर हैं। जाम्भोजी के अनुसार अवर्णनीय हैं क्योंकि

 ISSN 2277-5587

वह इंद्रियों से परे हैं। जीव और परमात्मा परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं, परन्तु मायावश दोनों में चौड़ी खाई नजर आती हैं। यदि परमात्मा कृपा दृष्टि करें तो यह दूरी मिट सकती हैं अन्यथा ये किसी और के वश की बात नहीं हैं।

''ओउम् संहस्त्र नाम सांई मल शिंभु म्हे अपना आदि मुरारी।
जद में रहयों निरा लंभ होकर उत्पति धंधुकारी''।।

(सबदवाणी सबद -94)

जाम्भोजी ने अपनी सबदवाणी में परमसत्ता को घोषित करने के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया हैं। वे ब्रह्म को विसन (विष्णु), स्वयंभू, सुरराय, मुरारी, बिसमिल्ला, रहमान, रहिम, करीम, खुदाबंद, खुदा, अल्लाह, ओम, गुरू, सतगुरु, राम, कृष्ण, हरि, श्याम, पारब्रम्ह, लक्ष्मण, लक्ष्मीनारायण, मोहन, गोपाल, परमेसर, नारायण, परसाराम, आदि नामों से सम्बोधित किया हैं। जाम्भोजी ने स्वयं को परमसत्ता स्वयंभू माना है। बिश्नोई सम्प्रदाय में भी उन्हें ब्रह्म का ही रुप माना गया हैं। जाम्भोजी के अनुसार ब्रह्म का कोई आदि और अन्त नहीं हैं। वह किसी के द्वारा स्थापित नहीं किया गया, अपने आप में पूर्ण हैं।

''अनन्त जुगा में अमर भणीजु, न मेरे पिता न मायो।
ना मेरे माया, ना मेरे छाया, रुप रेखा, बाहर भीतर अगम अलेखा।
लेखा एक निरंजन जैसी, जहाँ चीन्हों तहाँ पायो''।।
ओम जय-जय पवन न होता, पाणी न होता न होता धर गेणारु।

(सबदवाणी सबद -28)

निरंजन स्वयंभू अनादि हैं। जब पवन, पानी, पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्र आदि कुछ भी नहीं थे, तब शून्य में केवल निरंजन ही थे। परमतत्व सबका सृजनकर्ता हैं। उसका रहस्य नहीं पाया जा सकता। वह ताप और शीत से परे, तन, रक्त, धातु, रुपरेखा, चिन्ह और वर्ण रहित गहन अथाह और केवल अनुभव का विषय हैं। उसके स्वरुप का वर्णन अमृत के स्वाद की भाँति वाणी से नहीं किया जा सकता और सागर में मछली के मार्ग की भाँति उसका भेद नहीं पाया जा सकता। विष्णु नाम के स्मरण को ऋग्वेद, अन्य शास्त्रों और विभिन्न संतों ने मनुष्य के लिए आवश्यक और हितकारी बताया है। ऋग्वेद में विष्णु को सूर्य बताया गया हैं क्योंकि सूर्य अपनी किरणों के द्वारा पृथ्वी, अंतरिक्ष और भूलोक तीनों प्रकाशित करता है, इसीलिए उसे त्रिविक्रम कहा हैं।

''विष्णु मंत्र हैं प्राणाधार हैं, जै कोई जपे सो उतरै पार।
ओम विष्णु सोहे विष्णु, तत स्वरूपी विष्णु''।।

जाम्भोजी अपनी सबदवाणी में कहते हैं कि विष्णु मानव मात्र के प्राणाधार हैं जो कोई उनका जप करता हैं वो भवसागर से पार उतर जाता हैं। जो मानव दिव्यता, के अभिलाषी हैं, देव बनने की कामना रखते हैं, उन्हें सूर्य के पंथ का अनुसरण करना पड़ता हैं।

ऋग्वेद में विष्णु शब्द व्यापक परमसत्ता के लिए आया हैं। वह सबसे प्रथम जगत् का उत्पादक हैं। हमें उसी का भजन, स्मरण, जप और उसी के समक्ष आत्मसमर्पण करना चाहिए।

''ओम् विष्णु सोहं विष्णु तत्व स्वरूपी तारक विष्णु
विष्णु विष्णु भण रे प्राणी, विष्णु भणंता अनन्तगुणू
जोय जोय नाम विष्णु के बीजै, अनन्त गुण लिख लीजै''।।

(सबदवाणी दर्शन पृ.118-119)

जाम्भोजी कहते हैं कि विष्णु तत्ववेता, परमतत्व स्वरुप तथा भवसागर से तारने वाला हैं। इसीलिए हैं प्राणी तू सदैव उस अनन्त गुणों से युक्त विष्णु का भजन कर तथा विष्णु के जितने भी स्वरुप हैं, नाम हैं, उन्हें अपने चित्त और आत्मा में उतार लें, क्योंकि विष्णु के नाम स्मरण से काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता को समूल नष्ट करना ही मनष्य जीवन का मूल उद्देश्य हैं।

तत्वरुप में विष्णु सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त हैं। निर्गुणवादी विचारधारा का समर्थन करते हुए जाम्भोजी कहते हैं कि जप करने योग्य केवल निर्गुण विष्णु ही हैं जिसके माता-पिता, भाई बहन आदि नहीं हैं, जिसका भौतिक शरीर भी नहीं हैं। वह उत्पति के साथ पैदा नहीं होता तथा प्रलय के साथ जिसका विनाश नहीं होता हैं, वही एक स्वरुप पर आधारित स्वयंभू हैं-

''जपां जो एक निरालंब शिंभू, जिहिं के भाई न पीऊ।
न तन रक्तु, न तन धातु न तन ताव न सीऊ''।।

(सबदवाणी दर्शन पृ.-112)

नाम जप और विष्णु नाम स्मरण पर बल देते हुए गुरु जम्भेश्वर कहते हैं कि ये सर्वश्रेष्ठ साधना हैं जो व्यक्ति विष्णु जप नहीं करता हैं उसका जीवन खीफ की फली औश आक के डोडों के समान निरर्थक हैं-

विष्णु अजपा जनम अकारथ, आके डोडा खीपे फलियों।।

(सबदवाणी दर्शन पृ.-116)

स्मरण के मार्ग के सभी बाधाओं को पार करते हुए निरंजन विष्णु जप करना चाहिए क्योंकि वृद्धावस्था में शरीर में शक्ति क्षीण हो जाती हैं इसीलिए बिना समय गंवाए उचित समय पर ही विष्णु पथ पर चलते रहो क्योंकि प्रतिक्षण उम्र कम होती जा रही हैं-

''काये रे प्राणी विष्णु न धाती भालू, घड़ी घटन्तरं पहर पटन्तर''।

(सबदवाणी दर्शन पृ.-177)

प्रत्येक क्षण जीभ पर विष्णु नाम का स्मरण चलता रहे, जिससे अमूल्य जीवन को कोई भी क्षण व्यर्थ न जाए। यदि विष्णु नाम स्मरण करते हुए जीभ थकती हैं तो ऐसी जीभ के बिना ही काम चलाया जा सकता हैं-

''विष्णु जपंता जीभन थाकै, तो जीभड़िया बिन सरियो।
हरि हरि करता हकरत आवै, तो ना पछतावो करियो''।।

(सबदवाणी दर्शन पृ.-117)

विष्णु नाम की महत्ता बताते हुए गरु जम्भश्वर ने उसे निरंतर बचत करने पर एकत्रित धन बताया हैं। जिस प्रकार एक-एक पैसे को इकठ्ठा करने पर लाखों रुपए हो जाते हैं, उसी प्रकार नित्य प्रति विष्णु मंत्र का जप करने पर दीर्घकाल में अत्यधिक पुण्य फलीभूत हो जाता हैं तथा ये शरीर जनम-मरण के चक्र से निकलकर वैकुण्ठ में वास पाता हैं-

''विष्णु विष्णु तु भजरे प्राणी, पके लाख उपाजूं।
रतनकाया वैकुण्ठ वासो, तेरा जरा मरण गया भाजूं''।।

(सबदवाणी दर्शन पृ.- 117)

इस प्रकार विष्णु निरन्तर रुप से विभिन्न युगों एवं कालों में अवतार लेते हैं तथा दुष्ट और आसुरी प्रवृत्ति वाले राक्षसों का विनाश करके सनातन सत्य की स्थापना करते हैं प्राचीन वैदिक काल से वर्तमान तक विष्णु नाम स्मरण की पद्धति धारा प्रवाह रुप से चलती आ रहीं हैं जिसे जाम्भोजी ने अपनी ओर से पुष्ट किया हैं।

जीवात्मा: गुरु जम्भेश्वर के अनुसार इस मायावी जगत में विभिन्न नाम रुप की जितनी भी वस्तुएँ नजर आती हैं उन सबकी उत्पत्ति ईश्वर के आदेश से होती हैं। वे कर्मफल के सिद्धान्त को मानते हैं, अर्थात् जो जीव जैसा कर्म करता हैं उसे अगले जन्म में वैसा कुल, योनि और वंश में जन्म प्राप्त होता है। अपने कर्मों के अनुसार निम्न या उच्च योनि प्राप्त होती हैं। जीव, ईश्वर की ही प्रतिछाया मात्र हैं क्योंकि प्राणतत्व और शरीर दोनों उसी के द्वारा प्रदत्त हैं इसीलिए किसी भी व्यक्ति को अपने वंश या जाति का अहंकार नहीं करना चाहिए। लेकिन जीव अपने आप को ब्रह्म से अलग अस्तित्व मानता है, यही द्वैत भाव जीव को जन्म-मरण के चक्कर में घुमाता रहता हैं। गुरु जम्भेश्वर ने आत्मा को जीवड़ा, हंस और रतनकाया कहा हैं। जैसे तिल में तेल और पुरुष में वास है, वैसे ही पांच तत्वों में निर्मित देह में आत्म ज्योति का प्रकाश हैं। जाम्भोजी ने इस आत्मा को अत्यन्त सूक्ष्म और निराकार बताया हैं जो आँखों से देखा ना जा सके और नहीं कोई मार्ग हैं, जिससे पहुँचा जा सके, ना ही कोई खोज चिन्ह हैं जिससे खोजा जा सके। अर्थात् आत्मा रंग रुप और आकृति रहित हैं। अज्ञानी जन चाहे उन्हें बावन प्रकार से भैरु और चौसट प्रकार की जोगिणी आदि में कहीं भी एक देश में मूर्ति मे खोजें वह परमसत्ता सीमित नहीं हो सकती।

''परम तन्त कै रुप न रेखा, लीक न लेहूँ खोज न खेहूँ।
वर्ण विबरजत, भावैं खोजो बावन बींरु ''॥

(सबदवाणी सबद-28)

इस सूक्ष्मतम आत्मा का ज्ञान तथा स्वरुप की प्राप्ति तो सतगुरु द्वारा व्यवहारिक एवं पारमार्थिक शास्त्रीय ज्ञान श्रवण, नाद ध्वनि, वेद पाठन से ही हो सकती हैं और जो इन साधनों को अपनाता हैं तत्व को तो वहीं प्राप्त कर सकता हैं अन्यथा स्थूल शरीर को ही आत्मा मानकर भटकता हैं।

''ज्ञाने ध्याने नादे वेद जे नर लेणा, तत भी ताही लीयो''।

(सबदवाणी सबद-27)

आत्मा निर्मल और शुद्ध होती हैं। उसमें कोई दोष नहीं होता, वह गुण-दोष से रहित होती हैं। परन्तु जिस शरीर में वह वास करती हैं उसके कर्मो के अनुसार उसे भी अच्छा-बुरा मानने की भूल अक्सर दुनिया करती हे। पर सत्य तो ये हैं कि सम्पूर्ण गुण दोष शरीर के कर्मो का परिणाम होते हैं अत: उनके द्वारा मिलने वाले फल का भोगी भी शरीर ही होता हैं आत्मा नहीं।

आत्मोपलब्धि गरु कृपा से ही प्राप्त होती है। अर्थात् मनुष्य अपनी आत्मा की पहचान तभी कर सकता हैं जबकि उसे सद्गुरु का आर्शीवाद प्राप्त हो, क्योंकि सद्गुरु के पास ही वह दिव्य ज्योति होती हैं जिससे सूक्ष्मतम आत्मतत्व को पहचाना जा सकता हैं। जब गरु कृपा करे ओर ज्ञान प्रदान करे तो मनुष्य इस योग्य बन जाता हैं।

''गरुध्याई येरे ज्ञानीं तोड़त मोहा, अति सुरसाणी छीजत लोहा।''

(सबदवाणी शबद-1)

वेदशास्त्रों में भी कहा गया हैं जो धर्म आधारित आचरण करता हैं उसे जीवन में सद्मार्ग मिलता हैं तथ मरने के बाद मोक्ष की प्रासि होती हैं।

''जा जन विष्णु न जंप्यो, ते अचल उठावत भारु।
जा जन विष्णु न जंप्यो, ते न उतरिबा पारु।
जा जन विष्णु न जंप्यो, ते दौरे घुप अंधारु ''।

(सबदवाणी शबद-13)

अर्थात् जिस जीवात्मा ने अनन्त भगवान विष्णु को हृदयस्थ नहीं किया हैं उसे चौरासी लाख योनि तक अचल भार उठाना पड़ेगा। बार-बार जन्म मरण के चक्र में आना पडेगा। वह संसार से पार नहीं उतर सकता और बार-बार इस चक्र में पड़ने से भयंकर नरक गिरेगा।

''माणक पायो फेर लुकायो नहीं लखायो''।

(सबदवाणी शबद-21)

हे जीव ये मानव शरीर अमूल्य माणिक के समान हैं जा पूर्व जन्मो के सद्कर्मो और ईश्वर की अनुकम्पा से प्राप्त हो गया हैं किन्तु वह सदा स्थिर रहने वाला नहीं हैं।

''ताछै होयसी रंड निरंडी देहूं, पवणा सोलै बीखर जैला गैल बिलंबी खेहूँ''।

(सबदवाणी शबद-25)

उपरोक्त शबद मे जाम्भोजी जीव को आगाह कर रहे हैं कि जब आत्मा शरीर से निकल कर चली जाएगी तब ये सौभाग्यवान शरीर विधवा हो जाएगा। जिस प्रकार से धूल के कण हवा के बहाव से बिखर जाते हैं उसी प्रकार ये पंचभौतिक शरीर भी बिखर जाएगा।

''हंस उड़ाणो पंथ विलंब्यो आसा सास निरास भई लो''।

(सबदवाणी शबद-25)

अर्थात् जब ये जीवात्मा रुपी हंस इस शरीर से अलग हो जाएगा तब अपने कर्मानुसार आगे का मार्ग पकड़कर स्वर्ग, नरक या मुक्ति को प्राप्त करेगा। किन्तु इस जीवन में होने वाली अनेक आशाएँ धूमिल हो जाएगी तथा अंत समय में निराश होना पड़ेगा। आत्मा की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए जाम्भोजी ने शरीर को तुच्छ बताया हैं-

''तेल लियों खल चौपै जोगी, तिहि को मोल थोडे रे कीयो''।

(सबदवाणी शबद-27)

अर्थात् तिलों में से तेल निकालने के बाद बची हुई खली पशुओं के ही योग्य होती हैं, उसी खली का मूल्य कम हो जाता है। उसी प्रकार इस शरीर रुप तिलों से जब जीवात्मा रुपी तेल निकल जाता हैं तो पीछे खल के समान व्यर्थ शरीर ही बच जाता हैं। अत: शरीर को अत्यधिक महत्व देना बुद्धिमानी नहीं हैं।

''कबही को बाइयो बाजत लोई, घड़ियार मस्तक तालूँ।
जीवां जूंणा पडे परासा, ज्यूं झींवर मच्छी मच्छा जालूँ''।

(सबदवाणी शबद-31)

अर्थात् इस जीवन का कोई भरोसा नहीं हैं। कभी ऐसा भयंकर वायु का झोंका आएगा जो इस शरीर को तोड़-मरोड़ कर इस जीव को ले जाएगा। जिस प्रकार से असावधानी के कारण सिर पर रखा हुआ घड़ा हवा के झोंके से गिरकर फूट जाता हैं वैसे ही शरीर भी कच्चे घड़े के समान ही हैं। इस जीव के गले में यमदूत फांसी डालेगा और चौरासी लाख योनियों में भटकने के लिए छोड़ देगा। जिस प्रकार झींवर मछली को मारने के लिए मछुआरा जाल डाल देता हैं और उनकी मृत्यु निश्चित हो जाती हैं उसी प्रकार शरीर की मृत्यु निश्चित हैं।

जाम्भोजी महाराज शरीर को नश्वर बताते हुए आत्मा की उन्नति का मार्ग बताते हैं वे जीव को सद्मार्ग हेतु सीख देते हैं कि यदि तू कृष्ण द्वारा गीता में बताए मार्ग पर चलेगा तो तेरी रत्न सदृश काया मुक्ति धाम पहुँच जावेगी और तू जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाएगा।

ISSN 2277-5587

''कान्ह दिशावर जेकर चालो,
रतन काया ले पार पहुँचो, रहसी आवा जाणो''।
(सबदवाणी शबद-69)

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *सबदवाणी (सं.) कृष्णानन्द आचार्य: सबदवाणी जम्भसागर बिश्नोई मंदिर ऋषिकेश देहरादून, 1992.*
2. *किशनाराम बिश्नोई: जम्भेश्वर-विविध आयाम, वी.आर. पब्लिकेशन्स कॉरपोरेशन दिल्ली, 1996.*
3. *स्वामी कृष्णानंद आचार्य: शब्दवाणी दर्शन*
4. *हीरालाल माहश्वरी: जाम्भोजी विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य भाग - प्रथम, कलकता, 1970.*
5. *गोविन्द त्रिगुणायत: हिन्दी की निगुर्ण काव्य और उसकी पृष्ठभूमि कानपुर, 1968.*
6. *स्वामी ईश्वरानंद गिरी: श्री जम्भसार हिन्दू प्रेस, दिल्ली संवत 1949.*
7. *हिरियन्ना: भारतीय धर्म दर्शन की रुपरेखा राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1997.*

मनरेगा: समीक्षात्मक अध्ययन एक आवश्यकता

डॉ. (श्रीमती) रमा शर्मा
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

भारत वर्ष कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाला देश है। हमारे देश में उपलब्ध श्रमशक्ति का तीन चौथाई से भी अधिक भाग ग्रामों में निवास करता है। सकल घरेलू उत्पाद में ग्रामीण क्षेत्र का योगदान घटता जा रहा है। जिसका कारण गैर कृषि कार्यो की ओर जनसंख्या का रूझान है। अर्थव्यवस्था का संतुलित विकास करने, ग्रामीण उत्पादन तथा उत्पादकता बढ़ाने, आर्थिक व सामाजिक समानता लाने के लिए ग्रामीण विकास की प्रक्रिया अति आवश्यक है, इससे हमारे गॉव सम्पन्न समृद्ध व खुशहाल हो सके। गरीबी एक सामाजिक व आर्थिक समस्या है, इससे उत्पन्न परिस्थितियाँ सामाजिक, आर्थिक जीवन को सबसे प्रतिकूल रुप से प्रभावित करती है। ग्रामीण जनसंख्या जो गरीबी के मकड़जाल में उलझी हुई है का सर्वांगीण विकास करते हुए उसका सामाजिक, आर्थिक विकास किया जाना चाहिए, ताकि श्रम शक्ति का शहरों की ओर पलायन रोका जा सके। ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए, ताकि गरीबी व बेरोजगारी को समाप्त किया जा सके और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी महत्व की परिस्थितियों का सृजन किया जा सके। ग्रामीण आधारभूत संरचनाओं व सुविधाओं में विस्तार हो तथा ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादकता मे वृद्धि हो ताकि हमारे ग्रामीण क्षेत्रों को विकास की मुख्य धारा शामिल किया जा सके। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास एक बहु आयामी अवधारणा है, जिसके उद्देश्यों को तीन प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है-

1. ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक व सामाजिक विकास हेतु सुदृढ़ आधारभूत ढांचा प्रदान करना,
2. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन करना एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना तथा
3. ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन करना।

उपरोक्त सभी उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में सरकार निरन्तर प्रयासरत रही है। सरकार अपने प्रयासों के माध्यम से साधन सम्पन्न तथा साधन विहीन व्यक्तियों के मध्य विद्यमान अन्तर को कम करना चाहती है ताकि गरीबी-उन्मूलन की प्रक्रिया को बल प्रदान किया जा सके। भारत में सुनियोजित रूप से ग्रामीण विकास का प्रारम्भ योजना आयोग के गठन के साथ हुआ। 1950 से लागू भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में लोक कल्याणकारी, समाजवादी व समानता के मूल लक्ष्यों को स्थान दिया गया। प्रारम्भ से आज तक निरन्तर लाये जाते रहे नवीनतम विकास कार्यक्रम इस बात के सूचक हैं कि सरकार ग्रामीण क्षेत्रों तथा ग्रामीण जनता के विकास के प्रति जागरुक एवं प्रतिबद्ध है।

ग्रामीण विकास की इसी प्रक्रिया को सतत् रुप से आगे बढ़ाते हुए महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी अधिनियम 2005 लागू किया गया है। यह अधिनियम आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक न्याय भी सुनिश्चित करता है। अकुशल ग्रामीण श्रमिकों के लिए रोजगार सुनिश्चित करने हेतु यह अधिनियम लाया गया। ''हर हाथ को काम दो'' के सिद्धान्त पर बना कानून है। यह एक ऐसा क्रान्तिकारी एवं सामाजिक सरकारी कार्यक्रम है। जिसने न केवल ग्रामीण गरीबों एवं मजदूरी पर आश्रित व्यक्तियों को सम्बल प्रदान किया है बल्कि वैश्विक मन्दी के इस दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था को सम्बल प्रदान किया है।

मनरेगा के अन्तर्गत यदि किसी ग्रामीण परिवार का कोई व्यस्क अकुशल श्रम करने को तैयार हो तो एक

वित्तीय वर्ष में उस परिवार को कम से कम 100 दिवस का रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा। मनरेगा एक कानूनी बाध्यता है, अधिकार है, अत: यह योजना पूर्ववर्ती अन्य विकास कार्यक्रमों की तरह स्वैच्छिक नहीं वरन् अनिवार्य है इसके क्रियान्वयन हेतु एक उपयुक्त ढ़ांचे की व्यवस्था की गई है हम सभी जानते हैं कि आदर्श कानून बन जाने के पश्चात् भी व्यवस्थाओं में सुधार नहीं होता है क्योंकि उन कानूनी अधिकारों का राजनैतिक दृष्टिकोण से उपयोग नहीं किया जाता है, स्वभावत: मनरेगा के सार्थक क्रियान्वयन हेतु ईमानदार, राजनैतिक प्रतिबद्धता होना एक अनिवार्य आवश्यकता होती है।

यह सत्य है कि अधिनियम में स्पष्ट रूप से न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा कम से कम 100 दिवस के रोजगार की गारण्टी, बेरोजगारी भत्ते, कार्यस्थल पर पीने का पानी, छाया, बच्चों के लिए झूलाघर, प्राथमिक चिकित्सा के अधिकार की बात करता है, परन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था में वंचितों का शोषण बिना फायदे के लिए भी किया जाता है, ताकि शक्तिशाली व हमलावर का भय बना रहे। इसी भय के वातावरण को बनाये रखने के लिए सरकारी तन्त्र, राजनीतिक प्रतिनिधि, समाज के तथा कथित दबंग इन प्रावधानों को लागू नहीं होने देना चाहते हैं। इतना ही नहीं प्रथम बार कोई कानून जनसंघर्ष की महत्ता को न केवल स्वीकार कर रहा है, बल्कि सामाजिक अंकेक्षण और पारदर्शिता के प्रावधानों के रूप में उसे वैधानिक स्वरुप भी प्रदान करता है।

यह कानून अपने आप में अधिकार के लिए संघर्ष की एक प्रक्रिया सिखाता है। यदि कोई व्यक्ति इसका उपयोग करता है तो उसे तीन अहम चरणों से गुजरना होगा। प्रथम तो यह है कि पंचायत स्तर पर पंजीकरण होने और रोजगार कार्ड जारी होने के पश्चात् उसे काम की मांग करनी होती है। काम की मांग किये बिना उसे रोजगार नहीं मिलेगा। द्वितीय चरण में यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि हर मजदूर को कानून में दर्ज सुविधाएँ लाभ और मानवीय व्यवहार मिले। पर्याप्त मजदूरी सही समय पर मिले मनरेगा कानून गांव और समाज में सहभागी विकास की सार्थक प्रक्रिया को आगे बढ़ाने वाला कानून है। इसका प्रमुख लक्ष्य है, ग्रामीण गरीब को राहत पहुँचाना, यदि उसे रोजगार मिल जाता है तो वह अन्य सुविधाएँ स्वयं बाजार से खरीद लेगा। व्यापक बेरोजगारी की स्थिति में सरकार की पहली प्राथमिकता रोजगार उपलब्ध कराना है और मनरेगा इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में सफल कही जा सकती है।

मनरेगा के क्रियान्वयन व प्रशासनिक ढ़ांचे में अनेक समस्याओं के प्रश्न उठाये जाते रहे हैं। भ्रष्टाचार व उत्पादकता को लेकर अधिनियम को समाप्त करने तक की बात चल पड़ी है, आलोचक इसे सफेद हाथी मानते हैं जिस पर बहुत पैसा व्यय हो रहा है। मनरेगा के क्रियान्वयन में प्रमुख समस्यायें जो स्पष्टत: दिखाई देती है, वे अधोलिखित है।

हमारे देश में विशेष रुप से ग्रामीण गरीबों के लिए विकास और कल्याणकारी योजनाओं की कमी नहीं रही अभी तक संचालित की गई विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों कसे यदि कारगर तरीके से काम में लाया जाये तो इस देश में विकास की अभूतपूर्व क्रान्ति हो सकती है। मनरेगा भी इसका अपवाद नहीं है लेकिन असली समस्या तो इनको कारगर ढंग से लागू करने की है। इसे बिडम्बना ही कहा जायेगा कि देश के जो क्षेत्र अथवा राज्य सर्वाधिक पिछड़े हैं, वहाँ इनको लागू करने में सबसे अधिक भ्रष्टाचार व्याप्त है। हमारे समाज की विवशता रही है कि अधिकारियों, प्रशासनिक कर्मचारियों, राजनीतिक प्रतिनिधियों ने खुली एवं दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ राष्ट्र व समाजहित में कार्यक्रमों का क्रियान्वयन नहीं होने दिया। प्रशासनिक लेट-लतीफी तथा भ्रष्टाचार अकुशलता ने पग-पग पर योजनाओं के क्रियान्वयन में शिथिलता ला दी है।

मनरेगा के दिशा निर्देशों की अनुपालना प्रभावी रुप से नहीं हो पा रही है। इसके लिए आवश्यक स्टॉफ, प्रशासनिक स्टॉफ, अपर्याप्त तकनीकी स्टॉफ, नौकरशाही की प्रतिबद्धता का अभाव प्रक्रियागत कर्मियों के लिए उत्तरदायी लक्ष्यों में अधिक विश्वास नहीं है, परिणामत: वे वचन बद्ध नहीं होते हैं।

ग्रामीण भारत में पहली बार इतना पैसा आया है कि भरपूर मात्रा में पैसा आने की वजह से ग्राम पंचायते बदल रही हैं। सरपंच महत्वपूर्ण बनते जा रहे हैं। भ्रष्टाचार की उपस्थिति मनरेगा के सफल क्रियान्वयन में बहुत अधिक बाधक तत्व है, महत्वपूर्ण बनते जा नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक (कैग) ने भी माना है कि योजना में व्यापक भ्रष्टाचार की उपस्थिति है। 24 अप्रेल 2013 को लोकसभा में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन मे कैग ने विभिन्न प्रकार के भ्रष्टाचार की बात कही जो योजनान्तर्गत व्याप्त है। इसमें चोरी इसलिए है कि न कोई परियोजना दिखानी होती है और न ही उसे पूरा करना होता है। बस पैसा बाँटना होता है। कहने के लिए रोजगार दिया जा रहा है, न तो काम की अपेक्षा होती है न परियोजना की पूर्णता होती है और उसका न कोई लेखा परीक्षण। राजस्थान के पूर्व पंचायतराज मंत्री श्री भरत सिंह ने भी माना कि जिसका जहाँ बस चला, वह वहाँ लूटने में लगा है। ग्रामीण भारत में इतना पैसा आया है कि यदि किसी पंचायत के एक करोड़ में से औसतन दस प्रतिशत की भी चोरी माने तो हर साल हड़पने वालों का गिरोह उस पंचायत में पैदा हो गया है। भ्रष्टाचार सबसे बड़ा शत्रु है जो कि विकास कार्यों को चौपट करने के साथ-साथ देश की अर्थव्यवस्था को भी अपने चंगुल में ले लेता है। शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार पोलियो ड्रॉप नहीं है, जो लोगों को पिला दी जावे। ये लोगों की सक्रिय भागीदारी और कल्पनाशील समाधान की मॉग करता है।

सामग्री व मजदूरी का अनुपात देखा जाये तो इसके लिए यह देखने में आया है कि फर्जी रिकार्ड संधारण किये जाते हैं। सामग्री की खरीद में पारदर्शिता पर कम ध्यान दिया जाता है, ऐसा माना गया है कि सामग्री खरीदने के दौरान ही 20 प्रतिशत से अधिक चोरी हो जाता है। मनरेगा बहुत अच्छा कार्यक्रम है, मगर अनेक छिद्र होने के कारण सब ठीक नहीं; चोरियाँ हो रही है, इसका ढांचा बदलने की आवश्यकता है।

अनेक ग्राम पंचायतों में फर्जी जॉब कार्ड के मामले भी आये हैं वे लोग जो गाँव में रहते नहीं है, या उन्होनें इस हेतु आवेदन भी नहीं किया है या अपात्र व्यक्तियों के भी जॉब कार्ड जारी हुए हैं। फर्जी जॉब कार्ड जारी होने से अधिनियम की क्रियाशीलता में बाधा आती है, जरुरतमंद पीछे रह जाते हैं। श्रमिकोन्मुखी रोजगार गारण्टी अधिनियम में रोजगार सृजन के दौरान निर्मित परिस्थितियों की गुणवत्ता पर कोई ध्यान नहीं है। करोड़ो रुपये के निवेश के बावजूद

ग्रामीण अंचल में स्थायी परिसम्पतियों का निर्माण नहीं हो पाया है, उनका रखरखाव चिंता का विषय है।

मनरेगा में अकुशल ग्रामीण मजदूर को काम का अवसर प्रदान किया जाता है, लेकिन ग्रामीण युवा की योग्यता को बढ़ाने और ज्यादा कमाने के लिए कोई प्रयास नहीं किये गये हैं। यह योजना बेहद गरीब परिवारों के लिए जीवन रेखा जैसी बन गई है, जबकि आवश्यकता हैं उन्हें योग्य, प्रोत्साहित व अपने पैरों पर खड़ा करने की। आलोचक दबे स्वर में कहते हैं कि इससे ग्रामीण लोग निठल्ले बन रहे हैं, जब बिना काम करे पैसा मिल रहा है तो काम क्यों किया जाये ? मनरेगा के कारण गाँवों में ही रोजगार उपलब्ध होने से शहरों में होने वाले कार्यों के लिए मजदूर नहीं मिलने से किल्लत हो गई हैं। सरकारी क्षेत्र का काम हो या निजी क्षेत्र सभी में मजदूर नहीं मिल पा रहे हैं मनरेगा में अपेक्षाकृत कम काम करना पड़ रहा है, इस कारण कटाई-बुवाई, छोटे व्यवसायों के लिए मजदूरों की कमी सामने आ रही है। छोटे व्यवसाय भी मजदूरों की कमी से जूझ रहे हैं। इनका बंद होना चिंता का विषय है न सिर्फ रोजगार के लिए, वरन् विकास के लिए भी ग्रामीण श्रमिकों को रोजगार सृजन के दौरान काम की सही माप नहीं होने से मजदूरी की दर सही नहीं मिल पाती है। सभी मजदूरों को 100 रुपये की औसत मजदूरी भी नहीं मिल पाती है। योजना में 100 दिवस रोजगार की बात कही गई है। देखने में आता है कि बहुत कम परिवार ही 100 दिवस का रोजगार पाते हैं। राष्ट्रीय औसत को देखा जाये तो यह बात सही सिद्ध होती है।

मनरेगा में न्यूनतम वेतन कानून व्यवहार में अधिकतम वेतन कानून बनकर रह गया है। कहा यह गया है कि न्यूनतम मजदूरी दी जयेगी, व्यवहार में इसे अधिकतम मजदूरी मान लिया गया है, जो कि श्रमिक को अधिक काम करने से रोकती है। इस योजना की काफी आलोचना हुई है, इसकी प्रभावशीलता पर अनेक प्रश्न उठाये गये हैं। ऐसा माना गया है कि मनरेगा दूसरा सहायक कार्यक्रम बन गया है। करदाताओं को यह जानने का हक है कि उनके पैसे से क्या बन रहा है? कैसे व्यय किया जा रहा है? पहली आलोचना वित्तीय है, मनरेगा अपनी तरह की सबसे बड़ी पहल है। मनरेगा जैसे समाधान न सिर्फ राजकोष पर भारी है वरन् रोजगार उपलब्ध कराने के सबसे कमजोर विकल्प हैं। क्रान्तिकारी कदम के बावजूद कागजों पर ही बदलाव हो रहा है। विकास को इस प्रकार नीचे पहुँचाना, जिसमें लोग भागीदार न हो, उनकी गरिमा के लिए उचित नहीं है।

पारदर्शिता व सामाजिक अंकेक्षण की जो व्यवस्था कानून में की गई है वह उतनी प्रभावी नहीं है, जितनी होनी चाहिए। सरपंच, पंच व राजनीतिक प्रतिनिधि नहीं चाहते कि सामाजिक अंकेक्षण हो इसके लिए वे राज्य सरकार पर दबाव बनाते हैं।

मनरेगा में अनेक शिकायतों एवं कमियों को भी ध्यान में रखते हुए इस तथ्य को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता कि यह कानून लाखों ग्रामीण लोगों के जीवन में खुशियाँ लाने में मददगार सिद्ध हो रहा है। इससे ग्रामीण गरीब तबके का जीवन स्तर ऊपर उठाने में सहायता मिली है और देश समाजवाद की ओर बढ़ रहा है। इस योजना ने गरीबों को खर्च करने की ताकत भी दी है। हम आलोचकों के दृष्टिकोण को अलग कर मनरेगा का समग्र एवं गम्भीर प्रभावकारिता उन्मुख विश्लेषण करें तो पाते हैं कि इस योजना में भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रहे साधन विहीन श्रमिक परिवारों की दशा व दिशा दोनों को बदल दिया है। आलोचकों का मानना है कि मनरेगा से स्थायी परिसम्पत्तियों का निर्माण नहीं हो रहा है, उन्हें यह समझना चाहिए कि यह मजदूरी प्रधान है, सामग्री प्रधान नहीं। लोगों को आजीविका उपलब्ध कराना इसका प्राथमिक उद्देश्य है। मनरेगा के कारण ग्रामीण मजदूरों के चेहरों पर आई रौनक को बिना उनसे मिले नहीं जाना जा सकता है। मनरेगा की उपलब्धियों व सकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण अधोलिखित है-

- मनरेगा एक सामाजिक प्रक्रिया है, इस पौधे को जड़ पकड़ लेने दे, अभी से उसे उखाड़ कर न देखे कि उस पर पुष्प पल्लवित नहीं हुए हैं। यह एक ऐसा कार्यक्रम है जो समवेशी विकास के मॉडल पर आधारित है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की प्रशासक न्यूजीलैण्ड की पूर्व प्रधानमंत्री हेलेन क्लार्क ने इसे रोजगार उपलब्ध कराने वाली बहुत ही अच्छी योजना बताया है। इसने ग्रामीण क्षेत्रों में इतना रोजगार उपलब्ध कराया है कि इससे शहरों की ओर पलायन रुक गया है। इसने आम आदमी को जीने का सहारा दिया है।
- गरीबों के लिए यह कानून वरदान है अकाल राहत सहित सभी विकास परक योजनाओं में देखा गया कि श्रमिकों को न तो काम मांगने का हक था, मुट्ठी भर लोगों को काम मिलता था, शेष लोग काम से वंचित रह जाते थे। इस आपसी प्रतिस्पर्धा में प्रभावशाली व्यक्ति हावी और गरीब व्यक्ति वंचित रह जाते थे, परिणामत: लोग काम की तलाश में परदेश पलायन करते थे। मनरेगा में ऐसा नहीं है लोग हक से अपना रोजगार मांग रहे हैं।

वास्तव में यह विश्व का सबसे बड़ा रोजगार कार्यक्रम है। आर्थिक व सामाजिक अधिकारों को कानून के माध्यम से स्थापित करने का सर्वप्रथम प्रयास है, तीन ऐसे हक हैं, जहाँ जनता के हाथ में चाबी देने की व्यवस्था हुई है। प्रथम काम मांगने पर 15 दिन में काम मिले, वरना आवेदक को बेरोजगारी भत्ता मिले। द्वितीय 15 दिवस के अन्तर्गत मजदूरी पाने का अधिकार अन्यथा विलम्ब से भुगतान के लिए मुआवजा और तीसरा है सात दिन के भीतर शिकायत निवारण करना अन्यथा शिकायत निवारण अधिकारी पर जुर्माना। स्थानीय अर्थव्यवस्था को रोजगार गारण्टी का प्रबल बल मिला है। स्थानीय हाट, बाजार, में इसका प्रभाव देखने को मिलता है। मजदूरों की क्रय क्षमता बढ़ने से बाजारों में आई रौनक को अनदेखा नहीं किया जा सकता। ग्रामीण महिलाएँ अपने बच्चों को साथ लेकर खरीददारी की करते हुए बेहद प्रसन्न व गौरवान्वित अनुभव करती हैं क्योंकि वह अब परावलम्बी नहीं है। मजदूरी मिलने से स्वाभिमान भी बढ़ा है।

ग्रामीण श्रमिकों को श्रमशोषण के अवसरों में कमी आई है सशक्तिकरण के अवसरों व मजदूरी की दरों के कारण गरीबी में कमी आई है, इससे न केवल आय में वृद्धि हुई है बल्कि क्रय क्षमता भी बढ़ी है। इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि मनरेगा से शहरों की ओर पलायन थम गया है। शहरों में उन्हें जिस अमानवीय परिस्थितियों में रहना पड़ता था, घर-परिवार से दूर, मनरेगा ने इसे बदल दिया है क्योंकि अब घर पर ही रोजगार उपलब्ध है। पहले परिवारों के पलायन के कारण बच्चों की शिक्षा अधूरी रह जाती थी, अब मनरेगा के

कारण गाँवों में रोजगार मिला तो बच्चे स्कूल जाने लगे क्योंकि स्थिरता का भाव उत्पन्न हुआ।

मनरेगा एक सामाजिक परिवर्तन के साधन के रुप में भी सामने आया है। अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान हुआ है सामाजिक समन्वय व सौहार्द की स्थितियाँ भी इससे बढ़ी। जातिवाद को कम करने में सहायता मिली। मनरेगा कार्यस्थलों पर दलित, आदिवासी तथा घुमंतु वर्ग की महिलाओं को पानी पिलाने के लिए भी नियोजित किया गया, जिसे एक सामाजिक बदलाव के रुप में देखा जा सकता है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था व सामाजिक सम्बन्धों का पुर्ननिर्माण अनेक स्तरों पर हुआ है, सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। दलितों, आदिवासियों, महिलाओं के लिए अलग से प्रावधान होने के कारण उन्हें रोजगार मिला है, जागरुकता का स्तर भी बढ़ा है, अपने अधिकारों के प्रति भी सचेत हुए हैं, ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिले हैं। मनरेगा ने महिलाओं को आगे आने के लिए अधिकार व मंच उपलब्ध कराया है। राष्ट्रीय ग्रामीण संसाधन व प्रबन्धन को प्रोत्साहन भी योजनान्तर्गत मिल रहा है। मनरेगा ने सिर्फ सामाजिक या आर्थिक बदलाव की ओर ही कदम उठाये हो ऐसा नहीं है। इससे भौतिक विकास भी सुनिश्चित हुआ है। गांवों में एनीकट, तालाब, कुँए, पानी के टांके बने, जिसके चलते भू-जल स्तर बढ़ा, कुओं में पानी आया। लोग दो-दो फसलें लेने लगे। जिन गाँवों मे सिर्फ कच्चे रास्ते या पगडंडियाँ थी, वहाँ पक्की सड़क बनी। चरागाह विकास और भूजल संवर्धन के कई कार्य मनरेगा ने सुनिश्चित किए हैं। जल संरक्षण व संग्रहण, पर्यावरण व कृषि पर सकारात्मक प्रभाव देखने को मिले हैं।

मनरेगा के प्रावधानों में मजदूरी का भुगतान श्रमिक के खाते में होता है। इस कारण ग्रामीणों ने बैंक व पोस्ट ऑफिस में अपने खाते खुलवाये हैं अर्थात् वे संस्थागत वित्त से जुड़े हैं, बड़ी संख्या में बैंक खाते खुलने के कारण बचत भी होने लगी है।

मनरेगा से ग्रामीण शासन संरचना पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। पंचायती राज संस्थायें व ग्राम सभायें अधिक सक्रिय व महत्वपूर्ण हो गई है। प्रत्येक निर्णय में स्थानीय जनता की भागीदारी, कार्यस्थल का चयन, सामाजिक अंकेक्षण, जमीनी स्तर से ही ग्राम सभा में योजना, निर्णय, पारदर्शिता व जबावदेहिता में सशक्त लोकतन्त्र की नीति देखी गयी है। इससे हमारा लोकतन्त्र व पंचायती राज व्यवस्था अधिक सशक्त होगी। यह कानून लाखों ग्रामीणों के जीवन में खुशियाँ लाने में सहायक रहा है और पारदर्शिता व जबावदेही सुनिश्चित करने हेतु इसमें और सुधार आने वाले समय में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

आलोचक, जो मनरेगा को भ्रष्टाचार का पर्यायवाची कह रहे हैं, उन्हें यह पता होना चाहिए कि रोजगार गारण्टी कानून में पारदर्शिता, जबावदेहिता व सामाजिक अंकेक्षण के अनेक प्रभावी उपक्रम किए गए हैं। गोपनीयता की संस्कृति में छिपे हुए मस्टररोल आम जनता के लिए गोपनीय नहीं है। मनरेगा की समस्त सूचनाएँ, श्रमिकों व सामग्री से संबन्धित गावों की सार्वजनिक स्थानों पर चस्पा होने लगी है। सामाजिक अंकेक्षण की समितियाँ भी बनी है।

मनरेगा के अन्तर्गत बालकल्याण केन्द्र की स्थापना से बच्चों के सामान्य स्वास्थ्य में उन्नति होगी, जो कि पौष्टिक खाना, स्वच्छ पर्यावरण की उपलब्धता से बीमारियों पर व्यय कम होगी और काम पर ज्यादा ध्यान होगा।

ग्रामीण शैक्षणिक स्तर में सुधार होगा क्योंकि गाँवों मे बहुत से बच्चे विद्यालय जाने की आयु में घर के कार्यो जैसे पशु चराना, ईधन जुटाना, चारा एकत्रित करना आदि कार्यो में व्यस्त रहते हैं। मनरेगा के कारण बेगारी में कमी आयेगी व आर्थिक स्थिति में सुधार होने से माता-पिता अपने बच्चों को नियमित विद्यालय भेज पायेंगे।

रोजगार गारण्टी के माध्यम से शिक्षा के अधिकतर, सूचना का अधिकार व रोजीरोटी का अधिकार तीनों आपस में श्रृंखलाबद्ध है। शासकीय तन्त्र की विधिक व कार्य प्रणाली के सन्दर्भ में सूचना का अधिकार अति महत्वपूर्ण है। सामान्य गरीब जनता में योजना के प्रति उत्साह बढ़ा है। इस वर्ष मानसून अपेक्षाकृत अच्छा नहीं रहने की बात कही जा रही है, ऐसी स्थिति में यदि अकाल जैसी प्राकृतिक आपदा का सामना होता है तो मनरेगा जीवनदायी सिद्ध होगी, क्योंकि यदि मनरेगा समुचित रुप से लागू होती है तो अकाल राहत कार्यो की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

आज आवश्यकता इस बात की है कि इस योजना को समाप्त करने या बन्द करने के बजाय इसे प्रभावी रुप से क्रियान्वयन किया जाये। योजना के प्रभावी रुप क्रियान्वयन हेतु विद्यमान कमियों को दूर करके इसे और अधिक प्रभावी व तर्कसंगत बनाया जा सकता है। विद्यमान कमियाँ उपलब्धियों की तुलना में नगण्य है। हर सिक्के के दो पहलू होते हैं, कमियों का निराकरण किया जा सकता है। आवश्यकता है दृढ़ इच्छा शक्ति व प्रतिबद्धता की। योजना में कोई दोष नहीं है, क्रियान्वयनकारी व व्यवस्थागत दोषों को कतिपय सुधारात्मक उपाय अपना कर दूर किया जा सकता है। मनरेगा के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन हेतु कतिपय सुझाव निम्नलिखित है-

- मनरेगा में भ्रष्टाचार को बहुत बड़ी समस्या माना जा रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, लेकिन काम भी हो रहे हैं, इससे मना नहीं किया जा सकता है, योजना का 70 प्रतिशत धन लोगों तक पहुँच रहा है। कानून के अन्दर ही भष्टाचार से लड़ने का सबसे धारदार उपाय है उनकी सख्ती से अनुपालना की जाये तो भ्रष्टाचार पर अंकुश लग पायेगा।
- फर्जी भुगतान पर अंकुश लगाने के लिए सार्वजनिक दीवारों पर वर्षभर कार्यरत श्रमिकों का ब्यौरा लिखा जाये। मनरेगा में कार्यो कर गुणवत्ता लाने के लिए प्रत्येक पंचायत समिति में एक सहायक अभियन्ता (मनरेगा) लगाया जाये। जनप्रतिनिधियों का मानना है कि वर्तमान योजना में पक्के कार्यो को भी जोड़ना चाहिए जैसे सी.सी.रोड़, ग्रामीण आवास, पेयजल, सिंचाई, कृषि व खरंजा निर्माण आदि।

मनरेगा कानून के अन्तर्गत सामाजिक अंकेक्षण, स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका, ऑनलाइन परिवेदना निवारण, इन्टरनेट पर मस्टरोल की उपलब्धता से लेकर सभी प्रावधान विद्यमान हैं, ताकि योजना में भ्रष्टाचार की उपस्थिति न हो। इन सब प्रावधानों के उपरान्त भी यदि योजना में भ्रष्टाचार व अनियमितताएँ हैं तो वे दूषित मानसिकता तथा राष्ट्रप्रेम के अभाववश है। चाहे हमारा संविधान हो या मनरेगा कानून नीतिनिर्धारण के क्षेत्र में भारत बहुत आगे हैं, किन्तु क्रियान्वयन में कमियाँ व्यवहारजन्य है। मनरेगा को भष्टाचार के लिए

क्रियान्वयन में कमियाँ व्यवहारजन्य है। मनरेगा को भष्टाचार के लिए दोशी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि कानून में कोई कमी नहीं है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि योजना को भ्रष्टाचार से दूर रखने के लिए सार्थक रुप से कदम उठाये जाये। यदि ग्रामसभा में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों की जानकारी एवं जागरुकता के स्तर को इस उद्देश्य के साथ बढ़ाया जाये कि मनरेगा का लाभ उठाते हुए इसकी कमियों को भी इंगित कर सके। इससे एक ओर तो ग्रामीण जनता में शिक्षा एवं जागरुकता का स्तर बढकर उन्हें शासित वाली मानसिकता से बाहर निकालना है। अपने हक को पहचान कर सामाजिक अंकेक्षण में प्रभावी जनसहभागिता करने में सक्षम बनाना है, तो दूसरी ओर क्रियान्वयनकारी तंत्र को पारदर्शी, जबावदेह व संवेदनशील बनाने की ओर उन्मुख करना है। इस प्रकार से समाज में पारदर्शिता एवं जबावदेहिता की संस्कृति विकसित होगी, जिससे समाज के सभी वर्ग सक्षम बनकर विकास की मुख्य धारा में शामिल हो पायेगे। यह संस्कृति सिर्फ मनरेगा की नहीं वरन् सामाजिक आर्थिक विकास की अन्य योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन में भी सहायक होगी। जिससे गरीबी हटाओ का नारा सार्थक होगा और बेरोजगारी की व्यापक समस्या को दूर किया जा सकेगा। प्रभावी सामाजिक अंकेक्षण पारदर्शिता व जबावदेहिता के लिए आवश्यक है। ग्राम पंचायतों व कार्यकर्ताओं का भी सशक्तिकरण होना चाहिए।

समर्पित व पूर्णकालिक प्रशिक्षित प्रोफेशलिस्ट नियुक्त किये जाने चाहिए, ताकि योजना की प्रभावी क्रियान्विति की जा सके। राजकोष के उचित उपयोग के लिए लोक उत्तरदायित्व तथा धन के दुरुपयोग को नियन्त्रित करने के लिए प्रबंधकीय सूचना व्यवस्था, व उचित मॉनिटरिंग की व्यवस्था की जाये। कार्यो के उचित नियोजन क्रियान्वयन व मॉनिटरिंग के लिए पंचायतें कार्ययोजना कर अपनी भूमिका निर्धारित करें।

क्रियान्वयनकारी प्राधिकरणों की जबावदेही ग्राम पंचायत से जिला स्तर तक सख्ती से स्थापित की जानी चाहिए, जो नियमों का उल्लंघन करते हैं, कानून के अनुसार दण्डित किया जाना चाहिए। शिकायतों, आरोपों व अभियोगों को देखने के लिए संस्थागत मशीनरी विकसीत की जानी चाहिए। जॉबकार्ड, मस्टरोल व अन्य समस्त दस्तावेजों की खण्ड व पंचायत स्तर पर उचित रखरखाव होना चाहिए। कार्यक्रम के बारे में सघन जागरुकता कार्यक्रम तकनीकी सहायता से बड़े स्तर पर चलाये जाने चाहिए, ताकि जन सहभागिता में वृद्धि हो।

मनरेगा के माध्यम से रोजगार सृजन के साथ-साथ स्थायी परिसम्पत्तियों के निर्माण व गुणवत्ता पर ध्यान देना भी हमारा प्राथमिक उद्देश्य होना चाहिए, ताकि सार्वजनिक वित्त का दुरुपयोग न हो। इससे अतिरिक्त विकासोन्मुखी कार्यो के प्रभावी संपादन व पूर्ण करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। राजस्थान जैसे राज्यों में जल संरक्षण कार्यो के लिए अतिरिक्त परिलाभ की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके प्रभावी क्रियान्वयन हेतु पंचायतों को आवश्यक कार्मिक एवं वित्तीय संसाधन संसाधन उपलब्ध कराये जाने चाहिए।

महात्मागांधी रोजगार गारण्टी अधिनियम सच्चे अर्थो में जनता का कानून है, जो लोकतंत्र में सत्ता अर्थात् कार्यकारी तन्त्र व योजनाओं को समुचित ही जनता द्वारा जनता के लिए एवं जनता का बनाकर जनता का आत्मीय जुड़ाव एवं पूर्ण जन सहभागिता प्राप्त कर सकता है।

अधिनियम को सफल कहा जा सकता है क्योंकि इसने हर हाथ को काम देने का संकल्प लिया है। इसमें कोई दोराय नहीं है कि मनरेगा में सुधारों की आवश्यकता है, सुधार होते रहने से यह योजना आगे चल पायेगीं। इसके लिए डॉ. मिहिर शाह कमेटी ने भी काफी बदलाव किये हैं। मनरेगा में भ्रष्टाचार पर निगरानी रखने के लिए सुधार की सख्त आवश्यकता है। अभी सूखे के हालात बन रहे है ऐसी परिस्थितियों में श्रम की मांग अधिक होती है। अभी कानून के अन्तर्गत श्रमिकों को रोजगार देना होगा। दृढ़ इच्छा शक्ति के सहारे ही कानून को सफलता पूर्वक लागू किया जा सकता है। ऐसे मनरेगा को समाप्त करने की मांग करना लाखों ग्रामीणों के साथ खिलवाड़ है, अत: हम चाहते हैं कि मनरेगा भी चले और सुधार भी हो।

सारत: यही कहा जा सकता है कि उत्तर स्वाधीनता काल में भारत में ग्रामीण विकास के क्षेत्र में एक नूतन युग का सूत्रपात हो चुका है। आज दलितों, पिछड़ों, निर्धनों, कमजोर ग्रामीणों को देश की मुख्यधारा में लाने के प्रति हमारी सरकार वचनबद्ध है। मनरेगा इस दिशा में किया जाने वाला सार्थक प्रयास है, जो सरकार की सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। आशा की जाती है कि पारदर्शिता एव जबावदेही सुनिश्चित करने से आने वाले समय में यह कानून और अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *तपेश्वर सिंह : ड्राट डिजास्टर एण्ड एग्रीकल्चर डवलपमेन्ट इन इण्डिया (देहली: पिपल्स पब्लि. हाउस 1995)*
2. *गिलबर्ट एटिनी : फूड एण्ड पावर्टी : इण्डियाज हॉफ वन बैटल (न्यूदेहली: सेज पब्लि. 1986)*
3. *कुरुक्षेत्र, वर्ष 56, अंक 2, दिसम्बर 2007*
4. *निखिल डे, ज्याद्रेंज, रीतिका खेरा : रोजगार गारण्टी अधिनियम (प्रवेशिका) नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, 2008*
5. *हनुमान सिंह गुर्जर : राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी अधिनियम 2005 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2008*
6. *दैनिक भास्कर, 19 अगस्त 2009*
7. *मिहिर शाह (योजना आयोग के सदस्य) दैनिक भास्कर 26 अगस्त 2009*
8. *राजस्थान पत्रिका, 14 जुलाई, 2014*

दृष्टि विकलांग व सामान्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतो का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन का अध्ययन

डॉ. दिनेश कुमार सिह
व्याख्याता, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उत्तरकाशी (उत्तराखंड)

shodhshree@gmail.com

मानव को ईश्वर ने पाँच इन्द्रियों से विभूषित किया है, लेकिन यदि उसकी कोई भी इन्द्रिय कार्य नहीं करती है तो उसे बहुत कष्ट होता है जैसे चक्षु! यह मानव की अमूल्य निधि है। इसके दोषपूर्ण होने पर या न होने पर व्यक्ति स्वयं अपने को अपूर्ण महसूस करता है। इस अपूर्णता के कारण उसे किशोरावस्था में अत्यधिक परेशानियों एवं कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। दृष्टिदोष से ग्रसित बालक अपनी दृष्टिहीनता के कारण बाह्य जगत की कल्पना मात्र भी नहीं कर सकते फिर भी यह वास्तविकता से दूर नहीं रहते और अपनी कमी के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण रखते हैं। यही कारण है कि ये बालक प्रत्येक कार्य एवं व्यवसाय को लगन व धैर्य के साथ रहते हैं। दृष्टिहीनता के अभाव की पूर्ति हेतु इनकी संवेदन व स्पर्श शक्तियाँ अत्यन्त तीव्र होती है। वे किसी भी कार्य को बड़ी एकाग्रता के साथ करते हैं। दृष्टिहीनता के कारण इन किशोरों को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। परन्तु फिर भी यह वातावरण के साथ पूर्ण सामंजस्य स्थापित करने का पूरा प्रयास करते हैं।

विद्वान लेखिका श्रीमती विमला शर्मा के अनुसार-"विशिष्ट असमर्थता के लिए विशेष अभ्यास की आवश्यकता होती है। जैसा कि सामान्य बालक दूसरों की क्रियाओं को देखकर एवं अधिगम द्वारा कई चीजों को सीखता है, किन्तु अन्धा बालक नकल नहीं कर सकता है। माता-पिता एवं अभिभावकों को कोई अन्य साधनों का प्रयोग करके दैनिक जीवन के क्रिया-कलापों को सीखाना पड़ता है। अन्धे बालक हमेशा भयभीत रहते हैं कि वे किसी चीज से टकराकर गिर न जाये, किसी चीज के लगने पर घाव न हो जाये अथवा वस्तुओं की उलट-पलट या टूट-फूट से सजा के भागीदार न बने।"

नेत्रहीन बालक सदैव अपने को अपूर्ण महसूस करता रहता है। ऐसे बालकों को विशेष सहयोग की आवश्यकता होती है दूसरों पर निर्भरता के कारण शैक्षिक समायोजन एवं जीवन जीने सम्बन्धी समस्यायें पैदा होती है। एक सफल शैक्षिक निर्देशन के लिए आवश्यक है कि उसे बालक के व्यक्तित्व की प्रत्येक बात ध्यान में रखनी चाहिए। जैसे शारीरिक, मानसिक योग्यता तथा अयोग्यतायें, उसका संवेगात्मक, सामाजिक विकास, सामाजिक गुण, इच्छायें, आकांक्षाएँ, आदतें, रुचियाँ, अभिवृत्तियाँ आदि। जिससे बालक एवं बालिका का शैक्षिक पर्यावरण में समायोजन हो सके।

किसी भी विद्यार्थी की अध्ययन आदतें तथा शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन निश्चित रुप से उनकी शारीरिक एवं मानसिक विशिष्टताओं तथा उनके व्यक्तित्व की प्रकृति पर निर्भर करता है ऐसे में यह निश्चित है कि दृष्टि विकलांग तथा अन्य या सामान्य विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों व समायोजन में अन्तर होगा। इसका कारण उनका शैक्षिक परिवेश, पारिवारिक माहौल एवं सामाजिक वातावरण हो सकता है। शोधकर्ता अपने इस शोध के माध्यम से सामान्य तथा दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों एवं शिक्षा की मुख्य धारा में समायोजन की तुलना कर प्राप्त अन्तर या समानता के कारणों का पता लगाने का प्रयास किया है। शोधकर्ता काफी आशान्वित है कि शोध के परिणाम विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों को सुधारने तथा शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में विशेष मदद मिलेगी। उपरोक्त प्रस्तावना के आलोक में शोधकर्ता द्वारा ली गयी समस्या निम्नलिखित हैं-

शोध समस्या-

''दृष्टि विकलांग व सामान्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतो का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन का अध्ययन''।

दृष्टि विकलांग- दृष्टि विकलांग बालक नेत्र रोग से पीड़ित होते हैं। प्राय: इनकी मुखाकृति भी सामान्य बालकों से भिन्न होती है। यद्यपि ये बालक देखने की कम शक्ति रखते हैं, लेकिन सीखने की शक्ति, आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर बनने की शक्ति तथा मानसिक शक्ति पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। महाकवि सूरदास जी इसके उदाहरण हैं।

दृष्टि विकलांगता का अर्थ- चक्षुदोष से पीड़ित बच्चे वे कहे जाते हैं, जिनकी केन्द्रीय दृष्टि तीक्ष्णता 20/200 से अधिक नहीं होती है।

बर्नाड जी सरन के अनुसार-''जिस व्यक्ति की केन्द्रीय दृष्टि-तीक्ष्णता 20/200 से अधिक नहीं होती है, उसे अन्धा समझा जायेगा या केन्द्रीय दृष्टि क्षेत्र अपनी अधिकतम् चौड़ाई की परिधि में 200 से अधिक नहीं फैलते हैं। **Lowenfeld** (1973) "During the past decades, educators have recognized that functional visual efficiency, the way in which a child utilizes his vision is more important than his measured visual activity. Therefore, a functional definition of blindness- is being sought." अंधता या अंधापन देख न सकने की दशा का नाम है। जो बालक अपनी पुस्तक के अक्षर नहीं देख सकता वह इस दशा से ग्रस्त कहा जा सकता है। दृष्टिहीनता भी इस का नाम है। प्रकाश का अनुभव कर सकने की अशक्यता से लेकर ऐसे कार्य करने तक की अशक्यता जो देखे बिना नहीं किए जा सकते, अंधता कही जाती है।

अध्ययन आदत- आदत शब्द अंग्रेजी के Habit शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। Habit शब्द लैटिन भाषा के Habitus शब्द से बना है जिसका क्रिया रुप hebere या to have (कैसे घटित होगा) होता है। मनोविज्ञान के सम्बन्ध में इस शब्द का अर्थ किसी व्यक्ति की प्रथागत या सामान्य रुप से कार्य करने की प्रवृत्ति से लिया जाता है जो कि उसने अभ्यास एवं अनुभव से अर्जित की हो। 'आदत' शब्द का प्रयोग सामान्य अर्थो में व्यवहार के विभिन्न रुपों के लिए किया जाता है जैसे-दैनिक कार्यो जिसे ड्रेसिंग के लिए किए गए विभिन्न चरणों या पदों का समूह या फिर विभिन्न क्रियाएं जो अक्सर उसी रुप में दोहरायी जाती हैं जैसे सिगरेट पीने की आदत, शराब पीने की आदत, गाली देने की आदत, पढ़ने-लिखने या अध्ययन करने की आदत आदि।

सोरेन्सन (1954) ने अध्ययन आदत को परिभाषित करते हुए लिखा है कि अध्ययन करने के प्रभावकारी तरीके ही अध्ययन आदत कहलाती है। **आर्मस्ट्रोग (1956)** के अनुसार व्यक्ति विशेष के द्वारा सीखने की प्रक्रिया में किए गए प्रत्येक उप कार्य को अध्ययन आदत की संज्ञा दी जाती है। शिक्षाशास्त्र के शब्दकोश के अनुसार अध्ययन आदतें यह संकेत करती हैं कि एक सोचने और कार्य करने की एक निश्चित प्रवृत्ति जिससे हम पुस्तकों से ज्ञान व सूचनायें प्राप्त कर सकें, अध्ययन आदतें कहलाती हैं। **ले टूसिग (1962)** के अनुसार ''अध्ययन आदते स्वत: ज्ञान प्राप्त करने, सीखने का व्यवहार है जो कि छात्र को यह बताता है कि अध्ययन कैसे करना है। एक अच्छी अध्ययन आदत वास्तव में वह है जो एक छात्र को न्यूनतम चिन्ता तथा अधिकतम एकाग्रता के साथ बैठकर अपना कार्य करने के लिए प्रेरित करें''। Christensen et al (1991) defined study habits as behaviour which relate to organization of time, space or resources for learning

सारांशत: हम कह सकते हैं कि अध्ययन आदतें किसी छात्र के व्यवहारों का वह पुंज हैं जो उसे सीखने की प्रक्रिया में समय, स्थान और साधनों को संगठित कर अध्ययन करने में मदद करती है। अध्यापक का कार्य सीखने वाले की सहायता करके उसके लिए ऐसे रास्तों की खोज करना है जिससे अध्ययन उनके लिए प्रिय हो सके तथा सफलता सम्भव हो सके। अनेक सीखने वालों को लगातार निर्देशन की आवश्यकता होती है जबकि कुछ लोग अपने लिए अध्ययन की अच्छी प्रणालियाँ खोज लेते हैं और मनोवांछित परिणाम प्राप्त करते हैं। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर सीखने वालो ने सीखने के बारे में अलग-अलग वक्तव्य दिये हैं जो अपने-अपने विचारों को सच मानकर कहते हैं कि मैं तभी पढ़ सकता हूँ जब रेडियो बज रहा हो, मेरी सारी पढ़ाई देर रात में होती है, मैं अपनी पढ़ाई सुबह सबेरे ही कर सकता हूँ। इन विचारों को हाईस्कूल व महाविद्यालयों के छात्रों ने अपनी अध्ययन आदतों के माध्यम से सिद्ध कर दिया है।

समायोजन- समायोजन की प्रक्रिया में व्यक्ति अपनी जैविक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति सरलता से नहीं कर पाता और संघर्ष करता हैं। नैराश्य की स्थिति उत्पन्न होने पर वह कुंठाग्रस्त हो जाता है। उसका समायोजन दूषित हो जाता है। सफल जीवन के लिए व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समायोजित होना आवश्यक है। यदि व्यक्ति के जीवन में समायोजन तत्व नहीं है, तो वह समाज एवं स्वयं के लिए समस्या बन जायेगा। जीवन का दूसरा नाम समायोजन है। **गेट्स के** अनुसार:''समायोजन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और अपने वातावरण के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।'' **कोल मेन के** अनुसार:''समायोजन व्यवहार वह है, जिसके द्वारा व्यक्ति प्रतिबल का सामना करता है, आवश्यकता को पूरा करने का प्रयास करता है, और अपने वातावरण से सामंजस्यपूर्ण सम्बंध बनाये रखता है''।

समायोजन सतत् चलने वाली प्रक्रिया एवं सामजस्य की स्थिति है, जो व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती हैं समायोजन का अर्थ है जीवन की परेशानियों, तनावों, कुंठाओं एवं समस्याओं को यथासंभव कम करना। परिस्थितियों के अनुरुप अपने व्यवहार को परिवर्तित कर शांतिपूर्ण ढंग से जीना।

समायोजन द्वारा व्यक्ति को संतोष प्राप्त होता है, और वह सामाजिक आदर्शो के अनुरुप समाज में व्यवहार करना सीख जाता है। समायोजन व्यक्ति के सामान्य क्षेत्र के अतिरिक्त संवेगात्मक, गृह, स्वास्थ्य, शैक्षणिक, व्यवसायिक, सामाजिक एवं आर्थिक आदि विशिष्ट क्षेत्रों में भी हो सकता हैं प्रस्तुत शोध में शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन शैक्षणिक क्षेत्र से सम्बन्धित है।

शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन- शिक्षा की मुख्यधारा से तात्पर्य

है कि दृष्टि विकलांग छात्र सामान्य छात्रों के साथ सामान्य स्कूल में, विद्यालय की सामान्य समयावधि में विशिष्ट तकनीकी के सहयोग से शिक्षण कराया जाये जिससे दृष्टि विकलांग विद्यार्थी अपने को अन्य विद्यार्थियों से अलग व कम न समझे जिससे कि उनका विद्यालय के सामान्य वातावरण में समायोजन हो सके।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का अध्ययन करना।
3. माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन का अध्ययन करना।
4. सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों की तुलना करना।
5. सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन की तुलना करना।

शोध की परिकल्पनायें-

1. माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है।
2. माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर हैं।
3. माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है।
4. माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं का शिक्षा की मुख्य धारा में समायोजन में सार्थक अन्तर है।
5. माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्य धारा में समोजन में सार्थक अन्तर है।

अध्ययन की परिसीमायें-

1. प्रस्तुत अध्ययन उद्देश्यपरक न्यादर्श द्वारा चयनित 300 विद्यार्थियों द्वारा सीमित है। जो कि उत्तर प्रदेश के सामान्य एवं विकलांग विद्यालयों से चयनित हैं।
2. प्रस्तुत अध्ययन में केवल माध्यमिक स्तर के ही विद्यार्थियों को ही सम्मिलित किया गया है।
3. प्रस्तुत अध्ययन में ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों के विद्यार्थियों का चयन किया गया है।
4. ये सामान्य एवं दृष्टि विकलांग सामान्य बुद्धि वाले छात्र हैं।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण-

Reason.R.D. and Evans. N.J. (2007), The chapter examines color- blind campuses that perpetuate White transparency and racially cognizant environments that reveal and challenge nations of color blindness. Recommendations are offered to help white students respond to the realities of whiteness and move beyond color-blind recism.

Jonathan Lazer: Aaron Allen (2007): In previous research, the computer frustrations of student and workplace users have been documented. However, the challenges faced by blind users on the Web have not been previously examined. In this study, 100 blind users, using time diaries, recorded their frustrations using the Web. The top causes of frustration reported were (a) page layout causing confusing screen reader feedback; (b) conflict between screen reader and application; (c) poorly designed/unlabeled forms; (d) no alt text for pictures; and (e) 3-way tie between misleading links, inaccessible PDF, and a screen reader crash. Most of the causes of frustration, such as inappropriate form and graphic labels and confusing page layout, are relatively simple to solve if Web masters and Web designers focus on this effort. In addition, the more technically challenging frustrations, such as screen reader crashes and conflicts, need to be addressed by the screen reader developers. Blind users in this study were likely to repeatedly attempt to solve a frustration, not give up, and not reboot the computer. In this study, the blind users reported losing, on average, 30.4% of time due to these frustrating situations. Implications for Web developers, screen reader developers, and screen reader users are discussed in this article.

Arora, S. (2003) Personality Make-up of Congenitally Visually Impaired and Adventitiously Impaired Children: A Comparative Study.

उद्देश्य- जन्मजात अन्धे और जन्म के बाद हुए अन्धे व्यक्तियों के व्यक्तित्व कारकों की तुलना करना।

परिणाम-

- CVI और AVI गुण में अन्तर गया।
- जन्मजात अन्धे बच्चों में बाहर जाने एवं घर में सुरक्षित रहने, दोनो में मिश्रित चारित्रिक गुण पाये गये।
- बाद में हुए अन्धें बच्चों के व्यक्तित्व में घर में सुरक्षित रहने के चारित्रिक गुण पाये गये, तथा बाद में हुए अन्धें बच्चों में बाहरी और स्वतन्त्र लक्षण पाये गये।
- बाद में अन्धें हुए बच्चों का आत्मविश्वास और स्वतन्त्र रहने की इच्छा अधिक थी, जबकि जन्मजात अन्धें बच्चों में आत्मविश्वास और दयालु स्वभाव का मिश्रण पाया गया है। ये एक जगह से दूसरी जगह जाने में ज्यादा दुख की अनूभूति करते हैं।
- जन्मजात अन्धों तथा बाद में हुए अन्धे बच्चों के व्यक्तित्व के

निम्न आयामों के सम्बन्ध में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया–भावनाओं से प्रभावित और भावनात्मक रुप से स्थिर, साधारण एवं खुश, विश्वसनीय और संदेहात्मक, तनाव रहित एवं तनावयुक्त।

Satapathy, S. (2003), Stress and behavioural Problems among Visually Impaired Adolescents: Grade and Gender Difference.

उद्देश्य– अन्धे किशोर छात्रों के व्यवहार एवं तनाव की समस्याओं का उनके वर्ग एवं लिंग के आधार पर अन्तर देखना।

परिणाम–

- अन्धतायुक्त लड़कियों में कक्षा 8 में अन्धे लड़कों की अपेक्षा ज्यादा तनाव पाया गया।
- तनाव एवं व्यावहारिक समस्याओं के बीच उनके वर्ग एवं लिंग के अनुपात में विपरीत अन्तर पाया गया।

सतपथी, सुजाता और सिंघल, सुशीला (2002)– दृष्टि बाधित तथा श्रवण बाधित बालकों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन।

उद्देश्य– सामान्य, दृष्टि बाधित व श्रवण बाधित बालकों की शैक्षिक उपलब्धियों का अन्तर ज्ञात करना।

पद्धति– न्यादर्श में 79 दृष्टि बाधित एवं 111 सामान्य छात्रों को दिल्ली के पांच स्कूलों से लिया गया। वार्षिक परीक्षा के अंकों का शैक्षिक उपलब्धि हेतु प्रयोग किया गया। एनोवा, मध्यमान, मानक विचलन व 't' मान का प्रयोग शैक्षिक उपलब्धि के विश्लेषण हेतु किया गया।

निष्कर्ष–

- दृष्टि बाधित बालकों ने श्रवण बाधित बालको से बेहतर उपलब्धि प्राप्त की।
- कक्षा 8 व कक्षा 10 की बालिकाओं ने बालकों की अपेक्षा अधिक शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त की।

सिंह, अभिषेक वर्मा कुमार अखिलेश (2006)– ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के समायोजन का स्थानीयता एवं लिंग के सन्दर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन किया।

निष्कर्ष– अध्ययन में प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषणोपरान्त निष्कर्ष से स्पष्ट हो जाता है कि छात्रों की तुलना में छात्रायें अधिक समायोजित, शहरी विद्यार्थी की तुलना में ग्रामीण विद्यार्थी अधिक समायोजित, ग्रामीण छात्रों की तुलना में ग्रामीण छात्रायें अधिक समायोजित, शहरी छात्रों की तुलना में ग्रामीण छात्र, ग्रामीण छात्रों की तुलना में शहरी छात्रायें एवं शहरी छात्राओं की तुलना में ग्रामीण छात्रायें अधिक समायोजित होती है।

क्लेमेण्ट, पेगी व रीड (2005)– ने सोवियत किशोरों व इजराइली किशोरों पर भाषा के माध्यम का उसकी उपलब्धि एवं समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन किया एवं पाया कि सोवियत विद्यार्थियों में अंग्रेजी भाषा के प्रति उपलब्धि व समायोजन स्तर इजराइली विद्यार्थियों की अपेक्षा भिन्न था।

निष्कर्ष–

- सामान्य छात्र एवं सामान्य छात्राओं के समायोजन समस्याओं के स्तर में सार्थक अन्तर हैं।
- सामान्य छात्र एवं सामान्य छात्राओं के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करने पर दोनों के समायोजन स्तर के मध्य सार्थक अन्तर पाया गया।
- विकलांग छात्र एवं विकलांग छात्राओं के समायोजन समस्या का तुलनात्मक अध्ययन करने पर दोनों के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।
- सामान्य छात्र एवं विकलांग छात्र के समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
- सामान्य छात्राओं तथा विकलांग छात्राओं के समायोजन प्राप्तांकों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

जनसंख्या– जनसंख्या से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों या वस्तुओं से होता है जिसे शोधकर्ता अपने शोध के सन्दर्भ में स्पष्ट रुप से परिभाषित करता है तथा उसकी पहचान करता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की जनसंख्या उत्तर प्रदेश के माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग छात्र हैं।

न्यादर्श– प्रस्तुत शोध में आवश्यकता, उद्देश्य, समय की न्यूनता, श्रम अर्थ को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने उपरोक्त जनसंख्या में से प्रतिदर्श का चयन करने के लिए सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश के (दृष्टि विकलांग) विद्यालयों में से 10 विद्यालयों का यादृच्छित रुप से चयन करके उसी जनपद के राजकीय इण्टर कालेज की कक्षा 9 के एक सेक्शन का यादृच्छित रुप से चयन करके 150 सामान्य विद्यार्थियों में से 75 छात्र एवं 75 छात्रायें है, तथा 150 दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों जिनमें से 75 छात्र एवं 75 छात्राओं का चयन किया गया है।

न्यादर्श वितरण तालिका

दृष्टि विकलांग विकलांग	सामान्य विद्यार्थी
150	150
75 छात्र +75 छात्राएँ	75 छात्र +75 छात्राएँ

स्वाध्याय–आदतें सूची (SHI)

'अध्ययन आदतें अनुसूची(SHI)' डा.बी.वी. पटेल द्वारा निर्मित माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों को मापने के लिए 5 बिन्दु प्रणाली पर आधारित 45 कथनों की सूची का प्रयोग किया गया है।

समायोजन क्षमता सूची–

इस परीक्षण का निर्माण A.K.P. Sinha (Senior Prof. & Head Depatt. Of Psychology Ravi Shankar University, Raipur, M.P.) And R.P. Singh (Reader, P.G. Deptt. Of Education, Patna University of Patna) ने भारतीय विद्यालयों के बच्चों को ध्यान में रखकर बनाया गया है।

आंकड़ों का संकलन, विश्लेषण एवं व्याख्या–

प्रथम शोध परिकल्पना का परीक्षण–

हमारी सातवीं शोध परिकल्पना है ''माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र–छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है''

इसका परीक्षण करने के लिए सर्वप्रथम इसे शून्य परिकल्पना में परिवर्तित किया जो इस प्रकार है-

''माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है''।

दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदत की सारणी

चर	प्रयोज्य एवं संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात (t)	परिणाम
अध्ययन	छात्र (75)	157.28	24.826	1.026	0.05 स्तर पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।
आदत	छात्राएँ (75)	153.12	24.833		

t0.05 = 1.96

0.05 स्तर पर सार्थक होने के लिए ज का मान 1.96 होना चाहिए। उपरोक्त तालिका में परिगणित (t) का मान 1.026 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक नही है । अत: यह शून्य परिकल्पना कि ''माध्यमिक स्तर के अन्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'', स्वीकृत होती है और हमारी शोध परिकल्पना यह कि ''माध्यमिक स्तर के अन्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है''अस्वीकृत होती है।

उपरोक्त तालिका के आधार पर निष्कर्ष रुप में कह सकते हैं कि माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं के अध्ययन आदतों में अन्तर नहीं पाया जाता हैं।

द्वितीय परिकल्पना का परीक्षण-

हमारी छठवीं शोध परिकल्पना है-''माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है।'' इसका परीक्षण करने के लिए सर्वप्रथम इसे शून्य परिकल्पना में परिवर्तित किया जो इस प्रकार है-

''माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है''।

सामान्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदत की सारणी

चर	प्रयोज्य एवं संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात (t)	परिणाम
अध्ययन	छात्र (75)	163.64	21.45	0.281	0.05 स्तर पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।
आदत	छात्राएँ (75)	162.25	21.74		

t0.05 = 1.96

0.05 स्तर पर सार्थक होने के लिए t का मान 1.96 होना चाहिए। उपरोक्त तालिका में परिगणित (t) का मान 0.281 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है अत: यह शून्य परिकल्पना कि माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है स्वीकृत होती है और हमारी शोध परिकल्पना यह कि ''माध्यमिक स्तर सामान्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है।'' अस्वीकृत होती है।

उपरोक्त तालिका के आधार पर निष्कर्ष रुप में कह सकते है कि सामान्य छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में अन्तर नही पाया जाता है।

तृतीय शोध परिकल्पना का परीक्षण-

हमारी आंठवी शोध परिकल्पना है-माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है इसका परीक्षण करने के लिए सर्वप्रथम इसे शून्य परिकल्पना में परिवर्तित किया जो इस प्रकार है-

''माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है''।

सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की अध्ययन आदत की सारणी

चर	प्रयोज्य एवं संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात (t)	परिणाम
अध्ययन	सामान्य विद्यार्थी (150)	162.17	23.05	2.52	0.05 स्तर पर शून्य परिकल्पना स्वीकृत होती है।
आदत	दृष्टि विकलांग विद्यार्थी (150)	155.2	24.83		

t0.05 = 1.96

0.05 स्तर पर सार्थक होने के लिए t का मान 1.96 होना चाहिए। उपरोक्त तालिका में परिगणित (t) का मान 2.52 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक है यह शून्य परिकल्पना कि माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों के अध्ययन आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं अस्वीकृत होती है और हमारी परिकल्पना यह कि माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है स्वीकृत होती है।

उपरोक्त तालिका के आधार पर निष्कर्ष रुप में कह सकते हैं कि माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों के अध्ययन आदतों में अन्तर पाया जाता है।

चतुर्थ शोध परिकल्पना का परीक्षण-

हमारी दसवीं परिकल्पना है ''माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में सार्थक अन्तर है इसका परीक्षण करने के लिए सर्वप्रथम इसे शून्य परिकल्पना में परिवर्तित किया जो इस प्रकार है-

''माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है''।

दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं का शिक्षा की मुख्यधारा में

समायोजन की सारणी

चर	प्रयोज्य एवं संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात (t)	परिणाम
शिक्षा की मुख्य धारा में समायोजन	छात्र (75)	14.08	06.17	4.048	0.05 स्तर पर शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।
	छात्राएँ (75)	19.32	09.36		

t0.05 = 1.96

0.05 स्तर पर सार्थक होने के लिए t का मान 1.96 होना चाहिए। उपरोक्त तालिका में परिगणित (t) का मान 4.048 है जो 0.05 स्तर पर सार्थक है, अत: यह शून्य परिकल्पना कि ''माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नही है ''अस्वीकृत होती है और हमारी परिकल्पना यह कि '' माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं का शिक्षा की मुख्यधारा में सार्थक अन्तर है स्वीकृत हो गई है''।

उपरोक्त तालिका के आधार पर निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं का शिक्षा की मुख्य धारा में समायोजन में अन्तर पाया जाता है।

शोध परिकल्पना का परीक्षण-

हमारी ग्यारहवीं परिकल्पना है, ''माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में सार्थक अन्तर है, इसका परीक्षण करने के लिए सर्वप्रथम इसे शून्य परिकल्पना में परिवर्तित किया जो इस प्रकार है-

''माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं है''।

सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन की सारणी

चर	प्रयोज्य एवं संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	क्रान्तिक अनुपात (t)	परिणाम
शिक्षा की मुख्य धारा में समायोजन	सामान्य विद्यार्थी (150)	14.70	07.40	2.20	0.05 स्तर पर शून्य परिकल्पना अस्वीकृत होती है।
	विकलांग विद्यार्थी (150)	16.70	08.33		

t0.05 = 1.96

0.05 स्तर पर सार्थक होने के लिए t का मान 1.96 होना चाहिए। उपरोक्त तालिका में परिगणित (t) का मान 2.20 है जो कि 0.05 स्तर पर सार्थक है अत: यह शून्य परिकल्पना कि माध्यमिक स्तर पर सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्य धारा में समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नही हैं अस्वीकृत हो गई और हमारी परिकल्पना यह कि माध्यमिक स्तर पर सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में सार्थक अन्तर है, स्वीकृत होती है।

उपरोक्त तालिका के आधार पर निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में अन्तर पाया जाता हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव-

1. माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर पाया जाता है।
3. माध्यमिक स्तर के सामान्य छात्र-छात्राओं का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में अन्तर होता है।
4. माध्यमिक स्तर के दृष्टि विकलांग छात्र-छात्राओं का शिक्षा की मुख्यधारा के समायोजन में अन्तर होता है।
5. माध्यमिक स्तर के सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में अन्तर पाया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ-

विश्व के बारे में मनुष्य इन्द्रियों द्वारा ही जानता है अधिकतर सूचनायें दृष्टि द्वारा ही मस्तिष्क में पहुँचती है। अत: दृष्टि की छोटी से छोटी अक्षमता बहुत महत्व रखती है। दृष्टि सम्बन्धी दोष बालकों के मानसिक, शारीरिक संवेगात्मक, शैक्षिक आकांक्षा स्तर तथा अच्छी आदतों के निर्माण पर भी प्रभाव डालता है। अत: अन्धेपन तथा अल्पनेत्र सम्बन्धी दोषों को दूर करने की आवश्यकता है। मूकबधिर तथा अपंग विद्यार्थी तो दूसरों की क्रियाओं को देखकर अपनी शैक्षिक आकांक्षा स्तर में वृद्धि तथा अच्छी अध्ययन आदतों के निर्माण करने में काफी हद तक सफल भी हो जाते हैं। लेकिन दृष्टिहीन विकलांगों का शैक्षिक आकांक्षा स्तर एवं अच्छी अध्ययन आदतें एवं उनका शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन नेत्रहीन होने के कारण काफी दयनीय होता है। हलाकि हमारे देश के अनेक नेत्रहीन शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान इन्हें शिक्षा की मुख्यधारा में जोड़ने के लिए प्रयास कर रहे हैं ताकि इनकी शैक्षिक आकांक्षा का स्तर उच्च हो सके, अच्छी अध्ययन आदतों का निर्माण हो सके।

सामाजिक तथा राष्ट्रीय दृष्टि से दृष्टिहीन विकलांग व्यक्ति भी बहुत महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि देश एक बड़ी जनसंख्या में ये लोग भी शामिल होते हैं जिसके कारण देश की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में भी इनका महत्वपूर्ण स्थान होता हैं इनके द्वारा किये गये कार्य व्यवहार सदैव कार्य में आते हैं। इनकी क्षमताओं को अनदेखा करके इनका उपयोग किसी कार्य व व्यवसाय में नहीं किया जा सकता है। इसलिए इनकी शैक्षिक आकांक्षा, अध्ययन आदतों एवं शिक्षा की मुख्यधारा में इनकी स्थिति जानकर उसी के आधार पर इनकी यथा स्थिति में सुधार करके इन्हें समाज का एक योग्य एवं सक्षम नागरिक बनाया जा सकता है। इस तथ्य से स्पष्ट है कि प्रस्तुत समस्या पर एक

वृहद अध्ययन की आवश्यकता थी। प्रस्तुत शोध कार्य में सामान्य एवं दृष्टिहीन संस्थाओं में अध्ययनरत सामान्य एवं दृष्टिहीन विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा, अध्ययन आदतों तथा शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन का अध्ययन किया गया है। अध्ययन में यह पाया गया है कि सामान्य एवं दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक आकांक्षा में काफी अन्तर है। दृष्टिहीन विकलांग विद्यार्थियों तथा सामान्य विद्यार्थियों की अध्ययन आदत में भी काफी अन्तर पाया गया है साथ शोध के निष्कर्ष से यह भी ज्ञात हुआ कि सामान्य एवं दृष्टि विकलांगों को शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन में भी काफी अन्तर पाया गया है।

अध्ययन के उपरान्त प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया का सामान्य बालकों के समकक्ष लाने के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये है। ताकि ये भी समाज के सक्षम एवं योग्य नागरिक बनकर समाज के कल्याण एवं राष्ट्र की प्रगति में अपना योगदान दे सके। साथ ही साथ शोध के निष्कर्षों से दृष्टि विकलांगता के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थायें तथा पुनर्वास केन्द्र भी इनकी शैक्षिक आकांक्षाओं एवं अध्ययन आदतों को जानकर और अधिक उच्च एवं अच्छा करने का प्रयास करेगें। दृष्टिहीन विद्यार्थियों का आकांक्षा स्तर कैसे उच्च हो, उनमें कैसे अच्छी अध्ययन आदतों का निर्माण हो? इसके लिए आवश्यक सुविधायें एवं मार्गदर्शन आदि की व्यवस्था करेगी ताकि दृष्टि विकलांग विद्यार्थियों का भी शिक्षा की मुख्यधारा में समायोजन हो सके। जिससे ये भी अपनी योग्यता एवं क्षमता को सिद्ध कर सके।

अमेरिका में इलिनॉयस में बहरे तथा अन्धों के राष्ट्रीय स्कूल में गर्मियों में एक-दो सप्ताह का स्कूल माता-पिता को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने के लिए लगता है। इसका उद्देश्य माता-पिता को अपने अक्षम बालकों की समस्याओं को समझने में सहायता देना है तथा उन्हें बालकों की शिक्षा में भली-भांति सहायक बनाना है। अमेरिका में अपाहिज बालकों तथा युवकों की राष्ट्रीय संस्था ने हमेशा से माता-पिता की शिक्षा को अपनी सेवाओं का अन्तरंग भाग माना है। यह संस्था सुझाव सेवायें भी देती है तथा The crippled child पुस्तक प्रकाशित करके विकलांग बालकों के माता-पिता को भेजती है। लॉस एन्जिल्स में जान ट्रेसी क्लीनिक जो कि बहरे बालकों के लिए है माता-पिता को तीन माध्यमों से शिक्षित करती है:

1. एक छोटे प्रयोगात्मक स्कूल द्वारा जो कि मूक बधिर बालकों तथा उनके माता-पिता के लिए है। यहाँ माता-पिता तथा बालक एक साथ प्रवेश करते हैं। माता-पिता अध्यापक को पढ़ाते हुए देखते हैं। वे बालक की खेल के मैदान तथा क्लीनिक में सहायता करते हैं।
2. मूक बधिर बालक चाहें वे किसी भी आयु वर्ग के हो कक्षायें आयोजित करके- इसमें सभी मूक बधिर बालकों के माता को बुलाया जाता है।
3. पत्राचार पाठ्यक्रम द्वारा-यह एक साल का है। इसमें माता-पिता को पढ़ाना, संवेदनाओं को समझना तथा बालकों को बोलने के लिए तैयार करने के क्षेत्र में प्रशिक्षित किया जाता है।

विकलांग बालकों के शिक्षण में एक नये दर्शन का आभास होता है। इस दर्शन के अनुसार कोई भी बालक चाहे विकलांग हो या सामान्य, उसके अध्यापकों के चार समूह होते हैं: (1) घर के अध्यापक (2) खेल के अध्यापक (3) स्कूल के अध्यापक, (4) समाज के अध्यापक। मनोविज्ञान के अनुसार इन चार प्रकार के अध्यापकों में घर के अध्यापक सबसे प्रमुख हैं। घर के अध्यापक ही इस बात के लिए उत्तरदायी हैं कि बालक अपने बारे में क्या सोचते हैं तथा दूसरों के विषय में क्या विचार रखते हैं। दूसरों के प्रति उनके व्यवहार को माता-पिता ही देखते हैं। स्कूल अध्यापकों द्वारा यह अनुभव किया गया है कि वे बालक जो स्कूल आने से पहले अपने माता-पिता द्वारा पढ़ते है वे सीखने के लिए अधिक उत्सुक रहते हैं। यही बात विकलांग बालकों के साथ भी लागू होती है। अत: बालकों की शिक्षा के लिए घर के, खेल के, स्कूल तथा समाज के अध्यापकों में मेल होना चाहिए। इसके लिए एक-दूसरे को समझना चाहिए। माता-पिता अपने विकलांग बालकों के प्रति निराश हो जाते हैं, इसका परिणाम अच्छा नहीं होता। वे अधिक उत्साहित और आशावान रहकर ही अपने बालकों की सहायता कर सकते हैं। विकलांग बालकों के माता-पिता को अपने बच्चों के सुधार का प्रयत्न आरम्भ से ही करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *आर.पी. सैनी (2005), "विभिन्न प्रकार के विकलांग किशोर छात्र-छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि, समायोजन क्षमता एवं उनकी व्यवसायिक चिन्ता का तुलनात्मक अध्ययन" पी.एच.डी., (शिक्षा शास्त्र), कानपुर: छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय।*
2. *कपिल, एच.के.(2003): "अनुसंधान विधियां (व्यवहारिक विज्ञानों में), आगरा, हर प्रसाद भर्गव पुस्तक प्रकाशन, कुल पृष्ठ संख्या- 210*
3. *गुप्ता, अल्का(2008): व्यवहारपरक विज्ञानों में सांख्यकीय विधियां, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, पृष्ठ संख्या-670*
4. *गुप्ता, एस.पी.(2008): उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन कुल पृष्ठ संख्या- 547*
5. *गुप्ता, एस.पी.(2008): आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, कुल पृष्ठ संख्या 569*
6. *भार्गव, महेश(1999): विशिष्ट बालक, आगरा, भार्गव बुक हाउस, राजामण्डी, पृष्ठ संख्या- 361*
7. *विकलांग व्यक्तियों की पहचान-2002, राष्ट्रीय संस्थान (विकलांगता के क्षेत्र), सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।*
8. *उत्तर प्रदेश में विकलांग कल्याण के पथ पर विभाग के बढ़ते कदम, फरवरी, 1998, विकलांग कल्याण निदेशालय उत्तर प्रदेश, इन्दिरा भवन लखनऊ।*
9. *Aptm. A.A. Handicapped: A challenge to the non handicapped: 1959, Citadel Press, New York*
10. *Website: google.com*

वैश्वीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन

सुमन गुप्ता
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

बहु आयामी एवं खुली अवधारणा 'वैश्वीकरण' व्यापार प्रौद्योगिकी और अर्थव्यवस्था के साथ-साथ सांस्कृतिक पहलुओं के रुपान्तरण को सार्वभौमिक दिशा की ओर इंगित करती है। सांस्कृतिक आशय से यह विश्व की संकुचन तथा समग्र विश्व चेतना से सघन सचेष्टता की ओर संकेत करती है। यह वह प्रक्रिया है, जो आधुनिकता से जुड़ी संस्थाओं का सार्वभौमिक दिशा की ओर रुपांतरित करती है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया वास्तव में आधुनिकीकरण की वैचारिकी का विस्तार है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया आज सम्पूर्ण विश्व में सक्रियता से चल रही है इसके कारण सभी समाज प्रभावित हो रहे हैं। आम तौर से वैश्वीकरण की प्रक्रिया का सम्बन्ध आर्थिक जगत से है किन्तु सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की यह प्रक्रिया समाज के अन्य क्षेत्रों से सम्बन्धित है। यह एक वृहद प्रक्रिया है जो सम्पूर्ण मानव जीवन को अपने अन्दर समा लेती है।

आज का युग संचार व प्रौद्योगिकी का युग है। वैश्वीकरण की हवा बह रही है पूरा विश्व एक छोटी सी दुनियाँ में सिमट गया है, स्थानीय और वैश्वीय लोग एक कडी में बंध गए है। भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण आज सर्वाधिक चर्चित शब्द है। एंथोनी गिडेंस के अनुसार ''भूमण्डलीकरण का अर्थ विश्व भर के सामाजिक सम्बन्धों को इतना प्रचंड बना देना है कि दूर दराज के क्षेत्रों में जो कुछ भी स्थानीय स्तर पर घटे, उसे हजारों मील दूर घटने वाली घटनाएँ तय करें।''[1] आज हम सूचना सूचना प्रौद्योगिकी के युग में जी रहे है, जहाँ समय और स्थान की दूरियाँ सिमट रही है। समूची दुनियाँ एक वैश्विक गाँव के रुप में बदलने की ओर अग्रसर है प्रत्येक देश का अन्य देशों के साथ वस्तु, सेवा पूंजी एवं बौद्धिक सम्पदा का अति बन्धित आदान-प्रदान ही वैश्वीकरण है।

आज वैश्वीकरण प्रत्येक क्षेत्र का मुख्य विषय बन गया है, क्योंकि इसने समाज एवं अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र को अत्यन्त प्रभावित किया है। वैश्वीकरण सिर्फ विश्व की अर्थव्यवस्था तक ही सीमित नहीं है। यह विश्व राजनीति विश्व समाज और संस्कृति तक विस्तारित होता है। लैक वैल-डिक्शनी ऑफ सोशियोलोजी में वैश्वीकरण को परिभाषित करते हुये कहा गया कि-''भूमण्डलीकरण अथवा वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत विभिन्न समाजों का सामाजिक जीवन राजनीति एवं व्यापारिक क्षेत्र से लेकर संगीत, वेशभूषा एवं जन मीडिया के क्षेत्रों तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अत्यन्त द्रुतगति से प्रभाव हुआ है।''[2]

वैश्वीकरण भौगोलिक सीमाओं से मुक्त एक बहु आयामी सामाजिक प्रक्रिया है जिसने पूरे विश्व को एक गांव में तब्दील कर दिया हैं आज विश्व के सभी देशों में साामजिक, आर्थिक, राजनैतिक शैक्षणिक पक्षों को एक ही व्यवस्था से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा हैं। जीवन के विभिन्न पक्ष आज वैश्वीकरण के तेजी से बढ़ते चरणों के कारण काफी प्रभावित हुये हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत स्थानीय और वैश्वीय लोग एक कड़ी में बंधे रहे है। वैश्वीकरण की इस सारी प्रक्रिया को देखने के दो दृष्टिकोण रहे है। आर्थिक और सामाजिक संस्कृति प्रारम्भ में वैश्वीकरण शब्द आर्थिक रुप से अधिक प्रयुक्त होता था। बाद में इस प्रक्रिया ने समाज संस्था, संस्कृति, राजनीति को भी प्रभावित कर लिया। वर्तमान में विश्व के विभिन्न देशों के बीच अन्योन्याश्रितता बढ़ रही है। वैश्वीकरण अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद के रुप में भी देखा गया है। एस.एस. बग्गा के

 ISSN 2277-5587

अनुसार वैश्वीकरण का अभिप्राय है '' उन्मुक्त बाजार एवं प्रतिस्पर्धा, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थ व्यवस्था के साथ समायोजन राष्ट्रीय बाजारों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में परिवर्तित करना है।''[3] वैश्वीकरण का अर्थ विश्व के देश व्यापार निवेश पूंजी, उद्योग, स्थापित करने व्यक्तियों के आने जाने पर पाबन्दियाँ कम से कम कर दे। पूरा विश्व एक ही बाजार बन जायें। इससे प्रतियोगिता बढ़ेगी। उससे कुशलता बढ़ेगी। उपभोक्ता वस्तु की बहुतायता होगी और गुणवत्ता बढ़ेगी। अत: पूरी मानव जाति को लाभ होगा। रोबर्टसन ने सबसे पहली बार इस अवधारणा को समाजशास्त्र में स्थापित किया। उन्हें इसका जनक भी कहा जाता है।[4] सरल शब्दों में वैश्वीकरण का अर्थ-किसी एक देश का स्वयं को शेष विश्व के साथ इस प्रकार से एकीकृत कर लेने के रुप में है कि वस्तुओं, सेवाओं, श्रम, पूँजी, विचार, ज्ञान, संस्कृति बिना किसी रोक टोक के देश के भीतर आ सकें ओर देश के बाहर जा सकें। वैश्वीकरण का सम्बन्ध अन्तर्देशीय निर्बाध व्यापार तथा अर्थव्यवस्थाओं के खुलेपन से है किन्तु यह जीवन के राजनीतिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक पहलुओं से भी पूरी तरह जुड़ा हुआ है। पिछले तीन दशकों में सेटेलाईट, संचार व्यवस्था का विकास कुछ इस तरह हुआ है कि सम्पूर्ण दुनिया के लोग एक दूसरे के साथ आसानी से सम्पर्क कर सकते हैं। ऐसी प्रक्रियाँए जो विश्व के सामाजिक सम्बन्धों को गहरा और घनिष्ठ कर रही है। वैश्वीकरण के अन्तर्गत आती है।

वैश्वीकरण में विभिन्न संस्कृतियों के एकीकरण पर जबर्दस्त प्रभाव डाला है। यह एक ऐसी परिघटना है जिसमें अन्य देशों के लोग मिलकर एक नये समाज व एक नई संस्कृति का निर्माण करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक तकनीकी सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों का समायोजन है। वैश्वीकरण राष्ट्रों की राजनीतिक सीमाओं के आर-पार आर्थिक लेन देन की प्रक्रियाओं और उनके प्रबन्धन का प्रवाह है। विश्व अर्थव्यवस्था में आया खुलापन, आपसी जुडाव और परस्पर निर्भरता के फैलाव को वैश्वीकरण कहा जाता है।

यद्यपि यह माना जाता है कि इस प्रक्रिया का प्रारम्भ लगभग तीन दशक पूर्व हुआ पर इसका इतिहास पुराना है। वैलन्सरीन ने वैश्वीकरण के विकास को पाँच चरणों में बांटा है-

- इसके बीज 1400 में पडे बाद में इसाई प्रभुत्व की समाप्ति हुई तथा राष्ट्रवाद का उदय हुआ।
- इसके साथ की यूरोप में अन्तर्राष्ट्रीयवाद तथा सार्वभौमिकतावाद का जन्म हुआ।
- इसका विस्तार हुआ और अंतर्राष्ट्रीय इकाई की अवधारणा विकसित हुई।
- विभिन्न विश्व संगठनों का निर्माण हुआ।
- इस विश्वव्यापी प्रक्रिया के अब हम अन्तिम चरण में है। वही विश्व के एकाकार होने की सम्भावनाएँ व्यक्त की जाने लगी है।

वैश्वीकरण की इस सारी प्रक्रिया को देखने के दो दृष्टिकोण रहे है आर्थिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक दृष्टि से 1980 के उतरार्द्ध तथा 1990 के प्रारम्भ में घटित घटनाओं के साथ इसे जोडा जा सकता है। इन घटनाओं में शीत युद्ध की समाप्ति, सोवियत रुस का अन्त, जैसी राजनीतिक घटना तथा पश्चिमी आर्थिक उदारवादी विचारों का प्रारम्भ होना था। सरकार की अपेक्षा निजी क्षेत्र आर्थिक स्त्रोत के नये केन्द्र बने। विश्व स्तर पर निजी क्षेत्र की क्षमताएँ बढ़ी, नये बाजार बने और उत्पादन तथा उपभोक्ताओं के नये स्वरुप उपयोग के बहुत से प्रतिमान विश्वदायीं हो गयें। ''पहले अधिकांश क्रियाओं पर राज्य तथा सरकारों का नियन्त्रण था, पर 80 के दशक में गैर सरकारी क्षेत्रीय संगठन तथा नीति समन्वयक समूह जैसे-जी -7, जी-10, जी-22 तथा ओ.एफ.सी.डी. जैसे संगठन बने। सस्ते संचार साधनों का विकास हुआ और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नये नियम तथा आचरणों की संहिता बनाई गई''[5]

यूरोप में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरुप उपभोक्ता वस्तु के निर्माण में गति आई। बाजार की तलाश में यूरोपीय देश शेष महाद्वीपों में पहुंच गए। उपनिवेशों में लोगों के एक छोटे किन्तु उच्च वर्ग को इससे लाभ भी हुआ। वस्तुत: इसी वर्ग के सहयोग से साम्राज्य स्थापित हुये और लगभग दो सदी तक चलते रहें। बीसवीं सदी के पूर्वी यूरोप व चीन में साम्यवादी सरकारें स्थापित हुई। विश्व दो खेमों में बट गया। महायुद्धों के समय फासिस्ट सरकारों का उदय एवं अंत हुआ। विश्व में आर्थिक मंदी मास्को ट्रायल-हिटलर-स्टालिन समझौता नाजी केम्प, निहत्थे जापानियों पर आणविक बम विस्फोट, वियतनाम युद्ध जैसे हिंसक ताण्डव सभी ओर से हुयें।

सन् 1955 से भारत, युगोस्लाविया, मिस्र आदि विकासशील देशों ने दोनों खेमों से तटस्थ रहकर मिश्रित अर्थ व्यवस्था के विचार की स्थापना की। इसे समाजवादी लोक कल्याणकारी राज्य कहा जा सकता है। कुछ दशक बाद 1989-91 के बीच सोवियत संघ तथा अन्य साम्यवादी देशों में टूटन हुई और चीन, उत्तरी वियतनाम उत्तरी कोरिया, क्यूबा आदि को छोड़कर लगभग सभी देशों ने गैर साम्यवादी व्यवस्था को अपना लिया। वैश्वीकरण का उद्भव बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रहारों और अनुदारवादी आन्दोलन में मिलता है, जिसमें पश्चिमी दुनियाँ को अपने शिकजें में जकड़ लिया था और जिसके प्रणेता ब्रिटेन की थेचर, जर्मनी के कोहल और अमरीका के रोनाल्ड रीगन थे। बहुराष्ट्रीय निगम और बैंक पूरी दुनियाँ में अपने चरण बढ़ाने लगे और पूंजी एवं मुद्रा पर लगे नियन्त्रणों को तोड़ते हुये विनिवेश और व्यापार के लिये मुक्त द्वार का नारा बुलंद करने लगे। फलत: वैश्वीकरण का उद्भव हुआ।

सितम्बर 2000 में विश्व के नेताओं ने संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच से अपनी सहस्त्राब्दि घोषणा में जोर दिया था कि वैश्वीकरण को सुनिश्चित करना सबको शक्तिशाली बनाने की दिशा में एक ठोस कदम है। तत्कालीन महासचिव कॉफी अन्नान के अनुसार यदि वैश्वीकरण को सफल होना है तो जनता की भागीदारी भी होनी चाहियें।

वाणिज्य एवं निर्यात शुल्क पर सामान्य समझौते तथा बाद में विश्व व्यापार संगठन के निम्न लिखित स्थूल मुद्दे रहे है-

- किसी देश की सीमाओं पर परस्पर व्यापार पूंजी निवेश वस्तु तकनीक तथा व्यक्तियों के आदान - प्रदान पर बंधन नहीं है।
- कृषि तथा उद्योग के क्षेत्र में उत्पादन तथा निर्यात संवर्धन पर सब्सिडी उसके कुल उत्पादन के 10% तक घटा दी जायें।
- पेटेन्ट कानूनों में बदलाव और उनकी सख्ती से पालना।
- सरकार अपने को देश के भीतर आर्थिक शैक्षणिक स्वास्थ्य जैसे कार्यो से हटाती जाए। ऐसे संस्थानों को निजी क्षेत्र के

लिये खुला छोड़ दें।

वैश्वीकरण ने दुनिया भर के राष्ट्र-राज्यों को आर्थिक और सांस्कृतिक सूत्र में बाँध दिया है। अब वैश्वीय मुद्दों का राष्ट्रीयकरण हो गया है। अब राष्ट्र राज्य के विचार और आर्थिक नीतियाँ क्षेत्रीय सीमाओं को लांघ रही है। वैश्वीकरण के आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक पर्यावरण आदि पहलू है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने स्थानीयता को विश्व के साथ जोड़ा है। यह एकता व समरुपता की वह प्रक्रिया है। जिसमें सम्पूर्ण विश्व सिमटकर एक हो जाता है।

वैश्वीकरण को आगे बढ़ाने वाले प्रमुख प्रेरक है-

- बाजार की खोज
- बहुराष्ट्रीय विनिवेश
- प्रौद्योगिकी, इलेक्ट्रोनिक के नये उपकरण और कम्प्यूटर से जुड़ा विश्व सूचना संकुल।[6]

  वैश्वीकरण उपभोक्ता मूलक अर्थव्यवस्था द्वारा अग्रसर है जबकि, सम्पूर्ण विश्व का 80% भाग उत्पादकमूलक अर्थव्यवस्था से संलग्न है।

वैश्वीकरण के चार अंग निम्न है-

- व्यापार अवरोध को कम करना ताकि वस्तुओं एवं सेवाओं का बेरोक-टोक आदान-प्रदान हो।
- ऐसी परिस्थिति कायम करना जिसमें विभिन्न राज्यों में पूंजी का स्वतन्त्र रुप से प्रवाह हो सकें।
- ऐसा वातावरण कायम करना ताकि टेक्नॉलॉजी का निर्बल प्रवाह हो सकें।
- ऐसा वातावरण तैयार करना जिसमें विश्व के विभिन्न देशों में श्रम का निर्बाध प्रवाह हो सकें।

वैश्वीकरण के समर्थक वैश्वीकरण के पक्ष में निम्नलिखित तर्क देते है-

- वैश्वीकरण से प्रत्यक्ष विदेशी निवेशी प्रोत्साहन होगा और परिणामत: विकासशील देश बिना अन्तर्राष्ट्रीय ऋणग्रस्तता कायम किए अपने विकास के लिये पूंजी प्राप्त कर सकेगें।
- वैश्वीकरण विकासशील देशों को उन्नत देशों द्वारा विकसित की गयी है। टेक्नालॉजी के प्रयोग में सहायता प्रदान करता है।
- वैश्वीकरण विकासशील देशों को विकासित देशों में अपनी उपज का निर्यात करने की पहुंच का विस्तार करता है। साथ ही यह विश्व के विकासशील देशों को गुणवता की उपभोग वस्तुओं विशेषकर चिरकालीन उपयोग वस्तुओं को सापेक्षत: कहीं कम कीमत पर प्राप्त करने योग्य बनाता है।
- वैश्वीकरण से ज्ञान का तेजी से प्रसार होता है और इसके परिणामस्वरुप विकासशील देश अपने उत्पादन और उत्पादित के स्तर को उन्नत कर सकते है। अत: यह उत्पादित के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर प्राप्त करने के लिये गति प्रदान करता है।
- वैश्वीकरण से परिवहन एवं संचार की लगभग लागत कम हो जाती है। इससे टैरिफ भी कम हो जाता है और इससे सफल देशी उत्पाद के प्रतिशत के रुप में विदेशी व्यापार का भाग बढ़ जाता है।

उदारीकरण वह विस्तृत एवं व्यापक प्रक्रिया है जो विश्व के विभिन्न देशों के मध्य व्यापारिक एवं आर्थिक सम्बन्धों का अधिक विस्तार करने की दृष्टि से विश्व के देशों को परस्पर ऐसी सुविधाएं प्रदान करने के लिये प्रेरित करती है ताकि मुत विश्व व्यापार एवं बेहतर अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के लक्ष्य तक पहुंचा जा सकें। वैश्वीकरण की प्रक्रिया विश्व की अर्थव्यवस्था को एक साथ जोड़ रही है। अर्थव्यवस्थाओं में एकीकरण की इस प्रक्रिया को उदारीकरण और निजीकरण ने आसान बनाया है।

वैश्वीकरण और उदारीकरण की अर्थव्यवस्था के सामने चुनौतियाँ-

- बाजार शक्तियों और औद्योगिक विकास में आने वाली बाधाएँ।
- उदारीकरण का दुष्परिणाम।
- आयात में वृद्धि निर्यात में कमी।
- बेरोजगारी में वृद्धि।
- राजस्व की हानि और विदेशी सामान की भरमार।
- विनियम दर में निरन्तर गिरावट।
- विदेशी कर्ज का बोझ बढ़ा।
- केन्द्र और राज्य सरकारें दिवालियापन की ओर।
- बाजार में आयातित कृषि उत्पादों का अम्बार।

भारत में वैश्वीकरण का प्रादुर्भाव-

भारत में वैश्वीकरण का प्रारम्भ 1991 में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव के कार्य काल में हुआ। उपयोग और उपभोक्तावादी एक समान वैश्विक स्वरुपों का उद्भव एक विश्ववादी सामान्य जीवन शैली की स्वीकारोक्ति विश्व स्तर पर परिस्थितिकीय एवं पर्यावरण सम्बन्धों संकटों एवं खतरों के बारे में चेतना, वैश्विक राजनीति एवं आर्थिक व्यवस्थाओं का उद्भव, मानवाधिकारों का सभी देशों तक प्रचार-प्रसार और विश्व के धर्मों में आदान-प्रदान आदि वैश्वीकरण का ही परिणाम है। अत: वैश्वीकरण एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें भौगोलिक दबाव कमजोर हो गए है। भारत में वैश्वीकरण का प्रारम्भ नये आर्थिक युग का सूत्रपात था। इस नई अर्थव्यवस्था से संघीय बाजार अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। इसमें राज्यों को भी यह अधिकार मिल गया कि केन्द्रीय योजना अर्थव्यवस्था के अर्न्तगत वे अपनी वित्तीय स्थिति में परिवर्तन कर सकें। इस व्यवस्था में सुधार आता है या खराबी इसके लिये राज्य स्वयं ही उत्तरदायी है।

''भारतीय वैश्वीकरण की व्याख्या तीन तत्वों से की है। इस प्रक्रिया में सब से बड़ा तत्व व्यापार का हैं। दूसरा निवेश का तीसरा वित्त का। इस प्रक्रिया द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक यह चाहते है कि यहां नई तकनीकी सूचनाओं और सेवाओं का विस्तार हो। भारतीय संदर्भ में आर्थिक वैश्वीकरण का अर्थ उदारीकरण, निजीकरण, व्यापार, निवेश, आयात और निर्यात से लिया जाता है''।[7]

भारत में वैश्वीकरण की चुनौतियाँ-

भारत में वैश्वीकरण का स्वरुप कई चुनौतियों के साथ उभरकर सामने आया है। इसे हम निम्न बिन्दुओं के द्वारा समझ सकते है।

- भारत गांवों का देश हैं। यहां कि अधिकांश जनता खेती पर निर्भर है अत: आर्थिक दृष्टि से पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं हैं। ग्रामीण जनता अपनी परम्पराओं एवं धर्म में रची बसी है। वह अपने नैतिक मूल्यों एवं मर्यादाओं से बाहर नहीं निकलना चाहती है।
- बढ़ते भ्रष्टाचार के कारण देश की विकास योजनाओं का पूरा

फायदा कुछ लोग ही उठाते है। इसका बहुत ही कम लाभ गांवों के लोगों तक पहुंच पाता हैं। यहां तक की उनकी मूलभूत आवश्यकताओं जैसे रोटी, कपड़ा, मकान, दवाईयाँ एवं उचित शिक्षा की व्यवस्था भी नहीं हो पाती है।

- वैश्वीकरण के कारण गाँवों के परम्परागत उद्योग धन्धे जो कि खेती पर निर्भर हैं, नष्ट हो रहे है, लोग बेरोजगार हो रहे है। युवा शक्ति चटक रही हैं उसमें हताशा, कुंठा एवं आत्महत्या की प्रवृत्तियाँ बढ़ रही है। युवा नशे का आदी हो रहा है।
- बड़े उद्योगों के लिये प्राकृतिक संसाधनों का अधिक दोहन गाँवों में भी होने लगा है जिससे पर्यावरण प्रदूषण बढ़ गया है एवं छोटे-उद्योग नष्ट हो रहे हैं।
- भारतीय संदर्भ में महात्मा गांधी ने जिस ग्राम स्वराज्य की भावना को मजबूत करने का आहवान किया है इससे वैश्वीकरण की आवश्यकता नहीं है।

उपाय-

- गांवों के प्राकृतिक संसाधनों का उचित दोहन हो।
- ग्रामीण युवाओं को उचित रोजगार मुहैया करवाया जाये।
- प्रगति की सहज रतार का विकास हो।
- हमारी प्राथमिकताएँ निश्चित हो, तभी हम भारत के सर्वांगीण विकास की कल्पना कर सकते है।

वैश्वीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव-

ऐसा कोई भी क्षेत्र समाज एवं व्यक्ति के जीवन का नहीं है जो वैश्वीकरण से अप्रभावित रहा हो, ये प्रभाव चाहे देशज परिस्थितियों के संदर्भ में सकारात्मक हो अथवा नकारात्मक अपरिहार्य रुप से प्रत्येक क्षेत्र पर पड़े हैं। यदि देशज जनता पर वैश्वीकरण के प्रभावों के संदर्भ में बात करे तो हम पाते है कि आज का भारतीय समाज एवं संस्कृति सत्तर-अस्सी के दशक के भारतीय समाज एवं संस्कृति से काफी कुछ भिन्नता लिये हुये हैं। संक्षेप में वैश्वीकरण के भारतीय अनुभव का विश्लेषण अग्रानुसार है।

आज की संस्कृति की उपज पूंजीवाद करता है। इसके उत्पादन के लिये बड़े-बड़े निगम होते है। दुनियाँ के विभिन्न देशों की संस्कृति को ये निगम नजर अंदाज नहीं कर सकते। वैश्वीकरण ने सर्वदेशीय संस्कृति को उत्पन्न किया है। पूंजीवाद और प्रजातंत्र के इस युग में धर्म निरपेक्ष संस्कृति को प्रोत्साहन दिया जाता है। भारत ने भी अपने संविधान में स्वयं को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है। वैश्वीकरण के माध्यम से जो संस्कृति दूर-दराज के क्षेत्रों में पहुंचती है, वह सर्वदेशीय होती है अर्थात जब अनेक संस्कृतियाँ स्थानीय संस्कृति पर अपना प्रभाव डालती है तो फलत: जो संस्कृति उभरती है वह स्वदेशीय होती है। छत्तीसगढ़ की पडवानी विध्य प्रदेश का आल्हा, महाराष्ट्र का तमाशा आज अपनी पहचान खो रहे है। सांस्कृतिक वैश्वीकरण के कारण आज युवाओं में भारतीय पहनावें की बजाएं पश्चिमी वेशभूषा का प्रचलन अधिक है। वैश्वीकरण से दो ओर सशक्त प्रक्रियाएँ उदारीकरण एवं आधुनिकीकरण जुड़ी हुई है। जिससे हमारा समाज प्रभावित हुआ है। नवीन तकनीकी ज्ञान एवं आविष्कारों से हर समाज का हर व्यक्ति चाहे पश्चिम का हो या पूर्व का प्रभावित हो रहा है। जिसके कारण उनके जीवन स्तर में भी बदलाव आ रहा है। इससे सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भी परिवर्तन होना भी निश्चित था। भारतीय संस्कृति एवं कला का सभी देशों में प्रदर्शन हो रहा है। परिणामत: पूरे विश्व में भारतीय कला एवं संस्कृति के प्रति आस्था एवं कला पर लोग निवेश करने लगे है। जिससे सांस्कृतिक मेलजोल बढ़े।

आज वैश्वीकरण ने पर्यटन क्षेत्र को बहुत अधिक प्रभावित किया है। इन दोनों से न केवल अर्थव्यवस्था के विकास में गति आयी बल्कि विश्वभर के लोगों के कामकाज रहन-सहन एवं घूमने-फिरने में काफी परिवर्तन ला दिया है। जिसमें जन संचार माध्यम इंटरनेट प्रशिक्षण तथा संचार साधन महत्वपूर्ण है साथ ही वैश्वीकरण से सड़क परिवहन में भी आमूल चूल परिवर्तन हुये है। विमान सेवाओं के प्रसार यात्रियों की सुख सुविधाओं को भी विश्व स्तर का बनाया है।

वैश्वीकरण के दौर में सूचना क्रांति ने शिक्षा एवं प्रशिक्षण को नई गति, दिशा एवं स्वरुप प्रदान किया है। सूचना प्रौद्योगिकी की नवीन तकनीकों, उपकरणों एवं माध्यमों ने ज्ञान, सूचना संकलन, प्रसारण एवं जागरुकता के लिये नये आधार दिये है। वैश्वीकरण के समय में महिलाओं ने अपनी भूमिका एवं क्षमता से समाज एवं राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर पुरूष से अपनी समानता को प्रभावित कर दिया है। आज महिला स्वतंत्र रूप से आत्मनिर्भरता का जीवन जीने में सक्षम है। वैश्वीकरण से औद्योगिकरण, शहरीकरण एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने पम्परागत मूल्यों एवं संस्कारों के समझ चुनौती प्रस्तुत की है। इस नवीन प्रक्रिया ने जाति, धर्म, भाषा एवं क्षेत्र के बंधनों को तोड़कर अन्तर-व्यक्ति सम्बन्धों को वैचारिक आधार प्रदान किया। नई पीढ़ी के आधुनिक एवं प्रगतिशील विचारों ने पुरानी पीढ़ी को विवश कर दिया है कि वे स्थापित सामाजिक मूल्यों, परम्पराओं एवं मान्यताओं का पुन: परीक्षण करें।

यदि वैश्वीकरण के लाभों को निधनों तक पहुंचाना है तो घरेलू नीतियों में इस प्रकार से बदलाव लाना होगा कि वे निर्धनों के हितों की रक्षा करने वाली हो, ये नीतियाँ निम्नलिखित क्षेत्रों से सम्बन्धित हो सकती है-

- साख एवं विपणन सुविधाओं का विस्तार
- भूमि सुधार कार्यक्रमों का नये सिरे से क्रियान्वयन
- राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी कार्यक्रम जैसे सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों को चलाया जाना।
- सामाजिक सुरक्षा।
- बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छ पेयजल, स्वच्छता का प्रावधान।
- निर्धनों के लिये वहनीय कीमतों पर खाद्यन्न जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं वाली वस्तुओं तक निर्धनों की गांरटी शुदा पहुंच।
- निर्णयन के प्रत्येक स्तर पर वंचितों की भागीदारी उपर्युक्त सम्बन्धित नीतियाँ तथा कार्यक्रम वैश्वीकरण की प्रक्रिया के समानान्तर चलाये जाने चाहिये।

समालोचना-

बहुराष्ट्रीय निगमों एवं कम्पनियों का वर्चस्व और आर्थिक एवं बाजार क्षेत्रों में अग्रिम भागीदारी विकसित देशों की ही दिखाई पड़ रही है। वैश्वीकरण को अंगीकार करने का सीधा आश्रय विश्व के बहुसंख्यक समाजों पर सुसंगठित अल्पसंख्यक राष्ट्रों के प्रभुत्व और प्राथमिकता

को स्वीकार करना है। विकासशील देशों तथा भारत में रह रहे निर्धन कमजोर वर्ग, पिछड़े वर्ग, कृषि श्रमिक आदि की आवश्यकताओं और आशाओं के लिये यह भ्रामक है क्योंकि यह धनी और निर्धन के बीच उग्रवादी चेतना और सामाजिक आर्थिक दूरी को बढ़ावा देता है। वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण का कार्यक्रम सहभागी प्रजातांत्रिक व्यवस्था के प्रतिकूल है क्योंकि विश्व के 80 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व एवं सहभागिता वैश्वीकरण के कार्यक्रम से सम्बन्धित नीति निर्माण एवं निर्णय में नहीं है। ''वैश्वीकरण से निकलने वाली सर्व जन हिंताय सर्व जन सुखाय की ध्वनि के विपरीत यह व्यवस्था सारे संसार को कुछ सशक्त पूंजीवादी प्रतिष्ठानों यानी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और उनके संकेन्द्रण के सबसे सबल केन्द्र अमेरिका के हितों की रक्षा का माध्यम बनी हुई हैं। यह सिर्फ व्यापार के लिये दुनिया को एक करना चाहती है बाकी सारी बाते आनुप्रासाँगिक है''।[8]

प्रौद्योगिकी और तकनीक की अभूतपूर्व प्रगति सूचना क्रांति का तीव्र विस्फोट, कम्प्यूटर और मोबाइल के क्षेत्र में अपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तनों, विज्ञापन के मायावति जगत से प्रोत्साहित उपभोक्तावाद, विपणन प्रबन्धन की नित-नई युक्तियों ने हमारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिवेश पूरी तरह बदलकर रख दिया है। हम अपने स्थापित पारम्परिक मूल्य-मानो श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों को क्षरित और ध्वस्त होते देख पूरी तरह विचलित हैं। इन सारी स्थितियों को हम भले ही अपनाने के लिये प्रस्तुत हो, कि परिवेश ने हमारे ऊपर इन स्थितियों को पूरी तरह थोप दिया है। वैश्वीकरण के दो पक्ष है-आर्थिक और सांस्कृतिक किंतु ये दोनों कोई बिल्कुल पृथक-पृथक समान नहीं है। वैश्वीकरण के आर्थिक पक्ष से उपयोक्तावाद या बाजारवाद जुड़ा हुआ है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में श्रेयस्कर यह था कि विश्व के समस्त देश उनकी संस्कृतियाँ, एक दूसरे को प्रभावित करते, एक दूसरे का श्रेष्ठ ग्रहण करते किंतु वास्तविकता यह है कि यह प्रक्रिया मात्र पश्चिमीकरण बन कर रह गई और दो टूक कहे तो वह पश्चिमीकरण भी नहीं है अपितु मात्र अमेरिकीकरण हैं।

प्रख्यात वैज्ञानिक शिक्षाविद् प्रो. यशपाल ने भी विचार किया है कि वर्तमान में यह वैश्वीकरण हमारे प्राचीन सांस्कृतिक आदर्श से किस प्रकार भिन्न है, ''भूमण्डलीकरण का अर्थ यह नहीं है कि यह सब लोगों के लिये बराबर है। इससे ''वसुधैव कुटुम्बकम'' जैसी बात बिल्कुल नहीं है, भूमण्डलीकरण एक ऐसी स्वेच्छाकारी प्रक्रिया है जिसके नियमों का पालन हमें करना पड़ेगा और हम सबको उसके पीछे चलना पड़ेगा। ये यह भी तय करेगी कि हमारी स्थितियाँ कैसी होगी? उन्हें कैसी होनी चाहिये? आपको अनुकूलित किया जायेगा''।[9]

मीडिया जगत, टी.वी. तथा समाचार पत्र-पत्रिकाएँ ही मुख्यत: वे माध्यम है जिनके कंधों पर चढ़ यह उपभोक्तावादी वैश्विक संस्कृति अपना पसारा फैलाती जा रही है। ''समकालीन भारतीय समाज तीव्र संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। परिवर्तन की आँधियाँ कई दिशाओं से आ रही है। एक ओर आधुनिकीकरण की अनिवार्यता है दूसरी और परम्परा के आग्रह है। पश्चिम की आर्थिक और तकनीकी सहायता अपने साथ वहां की जीवन शैली और मूल्य ला रही है जिन्हें अपनी जड़ से कटे भारतीय-आधुनिकता समझकर बिना तर्क के अपना रहे हैं। हमारी संस्कृति अनुकरण की भोगवादी और लिप्सावादी संस्कृति बन गई है। आर्थिक, उदारता, खुलापन और वैश्वीकरण संसार-भर में एक अपसंस्कृति फैला रहे हैं। हम इस संस्कति के असहाय दर्शक मात्र बन कर रहे गये है''।[10] इस प्रकार वैश्वीकरण के सकारात्मक प्रभाव के साथ-साथ कुछ नकारात्मक प्रभाव भी उभर कर सामने आये है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *एंथनी गिड्डेन्स ''द कॉसीक्वेंस ऑफ माडर्निटी'' 1990*
2. *बर्नैक बैल ''डिक्शनरी ऑफ सोशियॉलोजी''*
3. *बग्गा, एस. एस. ''महाशक्तियाँ तथा भारत की विदेश नीति''*
4. *Robertson, Ronald, "Golobalization Social Theroy and Golobal Culture" 1992 London : sage.*
5. *Rajasthan Journal of Sociology, Volume I December – 2009*
6. *मदन जी. आर. ''परिवर्तन एवं विकास का समाज शास्त्र'' 2008*
7. *Rajasthan Journal of Sociology Volume III October – 2011*
8. *सिन्हा, सच्चिदानन्द, ''भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ, भूमिका।*
9. *प्रो. यशपाल, उद्धृत'' अक्षरपर्व'' मार्च 2004, नरेन का लेख*
10. *दुबे, श्याम चरण, ''समय और संस्कृति''*

महात्मा गांधी और राष्ट्रभाषा हिन्दी

ममता वालिया
शोध छात्रा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

गांधी जी कहते हैं ''बिना राष्ट्रभाषा के राष्ट्र गूंगा है''। इससे स्पष्ट होता है कि गांधी जी राष्ट्रभाषा को अत्यधिक महत्व देते थे ताकि भारत के संदर्भ में हम लोग ऐसी शक्ति बनकर उभरे जिससे किसी के मोहताज ना रहें, इतना ही नहीं बल्कि आत्मनिर्भर बनकर स्वपरुषार्थ से अपनी प्रगति करें, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए गांधी जी ने अपने अठारह रचनात्मक कार्यक्रम दिये जिनमें राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार भी एक कार्यक्रम है-

राष्ट्रभाषा का प्रचार- भाषा कोई बन्द कमरों में पनपने वाली चीज नहीं है, वो तो आपसी सम्पर्क और उसके विस्तार से फलित होती है अर्थात् भाषाएं बनती हैं मिलन की अपरिहार्यता में से, तदनुरुप वे विकसित हो पाती हैं। साधारण तौर पर राष्ट्रभाषा का मतलब है ''राष्ट्र की भाषा'', ऐसी व्याकरण की व्याख्या है और इस दृष्टि से देखेंगे तो हमारे देश में अनगिनत भाषाएं विद्यमान हैं। इन सभी को वैसे तो राष्ट्रभाषा ही कह सकते हैं लेकिन इन सभी का व्यक्तिगत विस्तार मर्यादित होने की वजह से जो समग्र राष्ट्र में चल सके, ऐसी भाषा को ही राष्ट्रभाषा का गौरव दिया जा सकता है। इसीलिए भारत में हिन्दी ने सैंकड़ों वर्षों से राष्ट्रभाषा का स्थान ग्रहण किया हुआ है। समग्र राष्ट्र के अधिकांश लोग इस भाषा को बोल सकते हैं और समझ भी लेते हैं। यही कारण है कि गांधी जी ने भी राष्ट्रभाषा के रुप में हिन्दी की ही हिमायती की और इसके प्रचार-प्रसार हेतु आजीवन प्रयत्न भी किए।

हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और गांधी जी ने भी इस समर्थन किया है लेकिन यहीं पर प्रश्न उठता है कि राष्ट्रभाषा की आवश्यकता क्यों होती है?

- प्रत्युत्तर में कह सकते हैं कि किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के लिए अपने आंतरिक कारोबार के लिए एक स्वीकृत भाषा होती है। भारत एक विशाल भू-भाग में फैला हुआ अत्यन्त विस्तृत उपखण्ड जैसा है। समग्रतया हमारे देश की आबादी की दृष्टि से देखा जाए तो संसार भर में चीन के बाद दूसरा स्थान है। अत: करोड़ों लोगों के अंतर व्यवहार हेतु किसी एक भाषा की आवश्यकता होती है।
- सम्पूर्ण राष्ट्र के राजकीय, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार के व्यवहारों के लिए देश के केन्द्रीय और आंतर-प्रांतीय उपयोग के लिए राष्ट्रभाषा अत्यन्त आवश्यक होती है।
- इसी प्रकार देश अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के लिए भी अपनी भाषा का आग्रह रख सकता है और दूसरे राष्ट्रों को भी यह स्वीकार करना ही होगा, परन्तु जब तक हम लोग अपने ही देश में इसको योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक अन्तर्राष्ट्रीय दावे दूर रह जाते है।

(वर्तमान में हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय दर्जा दिलाने हेतु यू.एन.आ. से अपील की जा रही है)

कवीश्वर श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं ''मन के विचार तथा भाव शब्दों में प्रकट करने की साधना ही शिक्षा का प्रमुख अंग है। भाषा आंतरिक तथा बाह्य आदान-प्रदान की प्रक्रिया का सामंजस्यपूर्ण साधन है।

राष्ट्रभाषा के लक्षण: गांधी जी की दृष्टि में- अक्तूबर 1917 में, गुजरात के भरुच में दूसरी ''गुजरात शिक्षा परिषद्'' का अधिवेशन हुआ, जिसमें गांधी जी ने अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए को राष्ट्रभाषा के लक्षण बताएं जो इस प्रकार है-

- यह भाषा अधिकारी वर्ग हेतु सरल होनी चाहिए।
- इस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का परस्पर धार्मिक व्यवहार संभव बनना चाहिए।
- जिस भाषा को भारतवर्ष के अधिकाधिक लोग बोलते हैं।
- यह भाषा राष्ट्र के लिए सरल होनी चाहिए।
- इस भाषा का ख्याल जब करते हैं तब क्षणिक या अल्पस्थायी स्थिति के ऊपर आग्रह नहीं होना चाहिए।

उपरोक्त सभी लक्षण हिंदी भाषा में दिखाई देते हैं। अत: गांधी जी ने हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा के रुप में अपनाने पर जोर दिया।

बचपन में हिंदी के संस्कार- गांधी जन्म से गुजराती थे, उनकी मातृभाषा गुजराती थी, परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी के संस्कार बचपन से मिल रहे थे और तब से उनके ऊपर हिन्दी का जो प्रभाव था वह जीवन्त पर्यन्त रहा। उनके पिताश्री की बीमारी की अवस्था का कुछ समय उनकी मातृभूमि पोरबन्दर में बीता था। वहां रामजी का एक मंदिर था, जहां प्रतिदिन रात को तुलसी रामायण का पाठ चलता रहता था। कथा करने वाले महाराज बीलेश्वर के लाधा महाराज थे, वे रामचरितमानस से दोहे तथा चौपाईयां गाते थे तथा इसका भावार्थ बताते थे। उस वक्त गांधी जी की उम्र करीब 13 साल की होगी, ऐसा वे आत्मकथा में लिखते हैं। गांधी जी ने 'रामराज्य' का आदर्श इस तुलसी रामायण से ग्रहण किया था। बचपन में घर की आया रंभाबाई ने जो 'रामनाम' का बीज बोया था-किशोरावस्था में रामायण सुनने से वह बीज परिपक्व हुआ और जब वे वयस्क हुए तब 'रामराज्य' का आदर्शरुपी महान् वृक्ष विकसित हुआ।

दक्षिण अफ्रीका में हिन्दी का प्रयोग- 1904 में फिनिक्स आश्रम की स्थापना की और वहां आश्रमवासियों और बच्चों को स्वयं पढ़ाना शुरु किया। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की लड़ाई के दौरान सत्याग्रहियों के निवास के लिए 1920 में गांधी जी ने 'टालस्टॉय फार्म' नाम से अलग से आश्रम की स्थापना की। इस कार्य में हिन्दू, मुसलमान, पारसी तथा ईसाई-चारों धर्मो के लोग बसे हुए थे। भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो यहां के बच्चे गुजराती, तमिल, तेलुगू आदि विविध भाषाभाषी थे। इन सभी को वहां हिन्दी-उर्दू भी सिखाई जाती थी। प्रत्येक को उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। ऐसा होते हुए भी वहां भारत की राष्ट्रभाषा के रुप में तमाम हिन्दूस्तानी बच्चों को हिन्दी-उर्दू भाषाओं का ज्ञान व्यवस्थित रुप से दिया जाता था।

एक महत्वपूर्ण घटना 1912 में घटी। गांधी जी के राजनीतिक गुरु गोपाल कृष्ण गोखले गांधी जी के निमन्त्रण से दक्षिण अफ्रीका की समस्या के संबंध में वहां दौरे पर गए थे। वहां हिन्दूस्तानियों की सभा में गोखले भाषण किस भाषा में करें, यह समस्या खड़ी हुई, तब गांधी जी ने कहा कि आपको अपनी मातृभाषा मराठी में भाषण करने होंगे और उसका हिन्दी अनुवाद मैं करुंगा। इस तरह गोखले जितना समय दक्षिण अफ्रीका में रुके और जहां-जहां आम सभाओं में हिन्दूस्तानियों के समक्ष किए, वे उनके भाषांतर भी किए, लेकिन गोखले को अंग्रेजी में बोलने की इजाजत नहीं दी। बापू खुद भी हिन्दूस्तानियों की सभा में अपनी टूटी-फूटी हिन्दी भाषा में ही अपना व्यवहार चलाते थे। इसके पीछे उनका हिन्दी भाषा के प्रति जो अप्रतिम स्नेह था, वह प्रकट होता है तथा राष्ट्रभाषा के बारे में स्पष्ट दृष्टि से दर्शन होते हैं। गांधी जी का मानना है "मां के दूध के साथ जो संस्कार और मीठे शब्द मिलते हैं, उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए, वह विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा में टूट जाता है"।

हिन्द-स्वराज में शिक्षा संबंधी प्रकरण- इस पुस्तक का 28वां प्रकरण 'शिक्षा' संबंधी है। इसमें गांधी जी ने अपनी शिक्षा विषयक पैनी दृष्टि अत्यन्त सुस्पष्ट तरीके से प्रस्तुत की है, जैसे: "यह कितने दु:ख की बात है कि हम स्वराज्य की बात भी पराई भाषा में करते हैं। हमारी दशा कैसी है? हम एक-दूसरे को पत्र लिखते हैं तब गलत अंग्रेजी में लिखते हैं। एक साधारण एम.ए.पास आदमी भी ऐसी गलत अंग्रेजी से बचा नहीं होता। अंग्रेजी शिक्षा लेकर हमने राष्ट्र को गुलाम बनाया है। अंग्रेजी भाषा से दंभ, राग, जुल्म वगैरह बढ़े हैं।...यह क्या कम जुल्म की बात है कि अगर मुझे इन्साफ पाना हो तो मुझे अंग्रेजी भाषा का उपयोग करना चाहिए। बैरिस्टर होने पर मैं स्वभाषा में बोल नहीं सकता। यह गुलामी की हद नहीं तो और क्या है?"

इस प्रकरण में हिंदी के संबंध में लिखते हैं कि "प्रत्येक शिक्षित हिंदुस्तानी को स्वभाषा, हिन्दू को संस्कृत, मुसलमान को अरबी, पारसी को पार्शियन का तथा सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए। तथा इसको फारसी या नागरी लिपि में लिखने की छूट देनी चाहिए।" इस तरह हिंदी की आवश्यकता और दोनों लिपियों को स्वीकारने की बात गांधी जी बता रहे हैं। चालीस वर्ष के बाद 14 सितम्बर 1949 को हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ।

गांधी जी द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी हेतु किए गए प्रयत्न-

- 1915 में बापू 21 वर्ष के विदेश निवास के बाद जब भारत आए तो उनको ऐसा लगा कि अगर समस्त देश को ध्यान में रखते हुए काम करना है तो हिंदी भाषा में ही काम करना चाहिए और इसके द्वारा ही करोडों निरक्षर आम जनता के हृदयों तक पहुंचना सुलभ होगा। अन्य भाषाभाषी लोगों के साथ बातें करने का सिर्फ एक ही माध्यम हिंदी उनके काम आ सकी और इस राष्ट्रव्यापी यात्रा से ही उनके राष्ट्रभाषा हिन्दी के संबंध में विचार सुदृढ़ हुए।
- 1916 में उत्तर प्रदेश में लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन में बापू ने अपना दक्षिण अफ्रीका वाला प्रस्ताव पेश किया, उसके संबंध में अपना भाषण हिंदुस्तानी में दिया। प्रतिनिधियों ने अंग्रेजी में बोलने का आग्रह दोहराया। बापू ने एक शर्त रखी कि एक साल में सबको हिन्दी जान लेना आवश्यक होगा और अब दुबारा वे अंग्रेजी में नहीं बोलेंगे साथ ही साथ इसी अधिवेशन में हिंदी प्रचार की आवश्यकता का विशेष आग्रह किया।
- 1917 में देश में पहला सत्याग्रह बिहार में चम्पारण में शुरु हुआ। इस सत्याग्रह के दौरान गांधी जी फुरसत में राजेन्द्र बाबू और कृपलानी जैसे साथियों के साथ अपनी दक्षिण अफ्रीका के संस्करण भी हिन्दी में सुनाते थे, लेकिन साथियों के कहने पर अंग्रेजी में भी सुनाते थे। फिर भी गांधी जी का आग्रह तो हिन्दी का ही था। इस बात से पता चलता है कि गांधी जी हिन्दी के प्रति कितने चिंतित और आग्रही थे।

- अक्तूबर 1917 में गुजरात में भरुच में दूसरी ''गुजरात शिक्षा परिषद्'' का अधिवेशन हुआ जिसके अध्यक्ष गांधी जी चुने गए। अध्यक्ष पद से दिया गया वह भाषण शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण साबित हुआ। इस भाषण में गांधी जी ने देश की राष्ट्रीय भाषा का विचार भी दिया कि कौन सी भाषा इसके लायक मानी जाए। इस हेतु लक्षण भी बताए जिनका वर्णन पहले किया गया है। ये सारे लक्षण हिंदी भाषा में पाए जाते हैं।
- दिसम्बर 1917 में कलकत्ता में अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का 33वां अधिवेशन श्रीमती एनीबेसेण्ट की अध्यक्षता में हुआ था। उस वक्त कलकत्ता के अल्फ्रेड थियेटर में लोकमान्य तिलक की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय भाषा सम्मेलन का आयोजन हुआ था, जिसमें महात्मा गांधी, सरोजनी नायडु तथा पंडित मदन मोहन मालवीय भी उपस्थित थे। इस सम्मेलन में अध्यक्ष के रुप में तिलक महाराज ने अंग्रेजी में भाषण दिया। उसकी आलोचना करते हुए गांधी जी ने अपना वक्तव्य हिंदी में दिया। गांधी जी ने कहा ''लोकमान्य तिलक अगर हिंदी में बोले होते बहुत ही लाभ होता''।
- 31 दिसम्बर 1917 में कलकत्ता के विश्वविद्यालय प्रांगण में भाषण करते हुए गांधी जी ने कहा ''देश सेवा के लिए सब उत्सुक है परन्तु राष्ट्रसेवा तब तक संभव नहीं, जब तक कोई राष्ट्रभाषा ना हो। इस अर्थ में बहुत लोगों के द्वारा हिन्दी को काम में लाया जाना मानवतावाद के क्षेत्र की बात हो जाती है''।
- 1910 में उत्तर प्रदेश में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना हुई जिसका अधिवेशन प्रतिवर्ष होता था, सिर्फ उत्तर प्रदेश में अर्थात् हिंदी भाषी प्रदेश में जितने भी अध्यक्ष हुए वे भी हिंदीभाषी प्रदेश के ही थे। पहली बार 1918 में उसके 8वें अधिवेशन के लिए अहिंदीभाषी महात्मा गांधी को चुना गया। यह अधिवेशन मध्यप्रदेश के इन्दौर नगर में मार्च मास के अंतिम दिनों में आयोजित किया गया था। गांधी जी ने अपने इस अध्यक्षीय भाषण में बताया कि हिंदी की उन्नति के लिए हमें क्या-क्या करना होगा।

गांधी जी ने महसूस किया कि भविष्य में जब भी हिंदी भाषा का विरोध होगा तो यह दक्षिण भारत में ही होगा, अत: सबसे पहले हिंदी प्रचार का कार्य दक्षिण भारत में शुरु करने के उद्देश्य से अपने छोटे बेटे देवदास गांधी को 1918 में मद्रास भेजा और वहां हिंदी प्रचार वर्ग का प्रारम्भ किया।

- जून 1918 में वायसरॉय ने दिल्ली में जो एक युद्ध परिषद् आयोजित की थी, उसमें गांधी जी को भी निमंत्रण मिला था तब गांधी जी ने अपने भाषण में हिंदी में बोले। यह सर्वप्रथम प्रसंग था कि कोई हिन्दुस्तानी वायसरॉय की परिषद् में राष्ट्रभाषा में बोला हो।
- बापू ने 1921 में 'हिन्दी नवजीवन' साप्ताहिक शुरु किया तथा उसके प्रथम में लिखा कि ''हिन्दुस्तानी को भारत-वर्ष की राष्ट्रीय भाषा बनाने का प्रयत्न मैं शुरु से करता आया हूं। हिन्दुस्तानी के सिवा दूसरी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती, इसमें कुछ भी शक नहीं। जिस भाषा को करोड़ों हिन्दू-मुसलमान बोल सकते हैं, वही अखिल भारतवर्ष की सामान्य भाषा हो सकती है''।
- उस समय देश में राष्ट्रीय मंच पर काम करने वाली संस्था कांग्रेस थी अत: बापू ने कांग्रेस के कामकाज में हिन्दी का उपयोग करने का विशेष आग्रह किया। 1925 के कानपुर अधिवेशन में हिन्दी को स्वीकारा गया था। गांधी जी ने कहा कि ''हिन्दुस्तानी का उपयोग करने के बारे में कांग्रेस में हुए लोकमत के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि और प्रगति करने वाला है।''
- हिन्दी साहित्य सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन इन्दौर में सम्पन्न हुआ तथा गांधी जी को ही दुबारा अध्यक्ष पद हेतु चुना गया। इस अधिवेशन में गांधी जी ने अपने भाषण में प्रांतीय भाषाओं तथा हिंदी के विषय में स्पष्टता करते हुए बताया ''हम लोग किसी भी हालत में अपनी प्रांतीय भाषाओं को खत्म करना नहीं चाहते हैं। हमारा उद्देश्य तो सिर्फ इतना ही है कि भिन्न-भिन्न प्रांतों का परस्पर व्यवहार अच्छा बनाने के लिए हम हिंदी भाषा सीखें''।
- बापू ने वर्धा में ''राष्ट्रभाषा प्रचार समिति'' की स्थापना की तथा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को प्रथम सभापति नियुक्त किया।
- 1927 में गांधी जी ने देश की सभी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि की बात कही थी। इसके प्रत्यक्ष अमल के रुप में अपनी गुजराती आत्मकथा देवनागरी लिपि में छपवाई। इस नागरी आवृति का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए बापू प्रस्तावना में लिखते हैं-''प्रमुख उद्देश्य तो यह रहा है कि गुजराती पढ़ने वाले देवनागरी लिपि को कहां तक झेलते हैं यह देखना था। इस साहस के पीछे दूसरा उद्देश्य यह भी रहा है कि हिंदी जनता को गुजराती पुस्तक देवनागरी लिपि में प्राप्त हों... इस आवृति को लोकप्रिय करने के उद्देश्य से उसकी कीमत कम रखी है''।
- 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' का पंजाब अधिवेशन 1941 में अबोहर में पं. अमरनाथ झा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में गांधी जी की राष्ट्रभाषा की परिभाषा में बहुमत से परिवर्तन किया गया क्योंकि गांधी जी तो उस वक्त व्यक्तिगत सत्याग्रह में फंसे थे। अत: उनकी अनुपस्थिति का फायदा उठाकर उर्दू लिपि वाली बात को हिंदुस्तानी में शामिल करने को अस्वीकार कर दिया गया।
- 1941 में बापू की छोटी सी लेकिन महत्वपूर्ण पुस्तक ''रचनात्मक कार्यक्रम'' नाम से प्रकाशित हुई। इसमें बापू ने अंतिम 20 से 24 वर्षों में देष के नवोत्थान तथा नवजागृति हेतु विविध 18 रचनात्मक कार्यक्रमों का उल्लेख किया गया है। इसमें ''राष्ट्रभाषा का प्रचार'' को भी 12वें कार्यक्रम के रुप में शामिल किया गया है।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा- 1941 में राष्ट्रभाषा की परिभाषा में हिंदी साहित्य सम्मेलन में गांधी की उर्दू लिपि वाली बात को अस्वीकारा तो बापू ने तुरंत मई 1942 में वर्धा में ही ''राष्ट्रभाषा प्रचार समिति'' के सामने ''हिन्दुस्तानी प्रचार सभा'' की स्थापना

की। इस हिंदुस्तानी प्रचार सभा के अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद बाबू हुए। इस संस्था का सम्पूर्ण कामकाज दोनों लिपियों (नागरी, उर्दू) में चलाने को तय हुआ।

हिन्दी व अंग्रेजी-भारत के संदर्भ में- चालाक, अनपढ़ और अंधे है वे लोग जो कहते हैं कि अंग्रेजी के बिना ना हम शिक्षित हो सकते हैं, ना आधुनिक। समझ में नहीं आता कि यह नुस्खा तीसरी दुनियां के देशों को ही क्यों सुझाया जाता है? यह समृद्ध देशों पर हमेशा निर्भर बनाए रखने का षड्यंत्र नहीं तो क्या है?

दूसरे नजरिए से देखें तो अंग्रेजी के जरिए भारत को सुविधा रहेगी कि वह अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना महत्व का स्थान बनाए रखें। अंग्रेजी उसके संस्कार में दाखिल हो गयी है। यह भी स्पष्ट है कि अंतर्राष्ट्रीय कारोबार में अंग्रेजी ही सर्वमान्य भाषा बनते दिखाई दे रही है। इस सुविधा से भारत को वंचित नहीं किया जा सकता। लेकिन इससे आगे अंग्रेजी भाषा की निर्भरता भारत के हित में नहीं है। भारत उस पराश्रय के कारण खण्डित हुआ पड़ा है। ऊपर के कुछ लोगों के कारण असंख्य जनता आसानी से उनके आतंक के नीचे दबी रहती है। साथ ही साधारण जनता के साथ सम्पर्क टूटा सा दिखाई देता है, सभी के मन में एक कुण्ठा जन्म लेने लगी है।

इससे भारत का आत्मबल कमबल नहीं बन पाता है। परिणाम यह कि भारत पश्चिम की उन्नति की पीली नकल सा रह गया है अर्थात् आत्म-प्रतिष्ठा पूर्ण रुप से झलक नहीं पाती है।

एक महादेश जिसके पास हजारों वर्ष गहरी अविच्छिन्न सांस्कृतिक परम्परा है, जिसके पास धर्मौतिक क्षेत्र का अमित अनुभव और ज्ञानकोष है, वह देश मानो केवल अंग्रेजी की निर्भरता के कारण मानव-जाति के संचित कोष में से एक साथ ऋणी हो जाता है। यदि भारत के पास कुछ देने को है तो वह उसका आत्मदान है। अंग्रेजी के द्वारा हम सिर्फ पश्चिम का अक्स दुनिया को दे रहे हैं, अपना आत्म नहीं दे रहे हैं।

इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि अंग्रेजी भाषा अच्छी नहीं है। कहना सिर्फ इतना है कि भारत के संदर्भ में हिन्दी अधिक उपयुक्त है। यह कभी सत्य नहीं हो सकता कि भाषा में कमी है, होती है तो कमी उन लोगों के मन में होती है जिनकी वह भाषा है।

''गांधी जी और राष्ट्रभाषा हिन्दी'' के इस विचार के अंतर्गत हमनें गांधी जी पर हिन्दी का प्रभाव, सम्पर्क, बापू द्वारा समय-समय हिन्दी हेतु किए गए सक्रिय प्रयत्न आदि देखे हैं जिनसे महसूस होता है कि गांधी जी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को राष्ट्रीय भाव के रुप में ग्रहण किया। भाषा का यह सम्मान राष्ट्र का सम्मान होता है।

''लौहार जो लोहा पीट रहा है और उससे ठन-ठन की आवाजें निकल रही हैं तो इससे चिंचित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि कल इन्हीं लोहे के तारों से वीणा या सितार के तार कसे जाएंगे और इन्हीं से निकलेगी मीठी झंकार।'' इसी आशावादिता से राष्ट्रभाषा हिन्दी के राष्ट्रीय सम्मान को रुप में अपनाना चाहिए।

कालानुक्रम:

1. 1882 लाधा महाराज से तुलसी रामायण का श्रवण।
2. 1893 नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना।
3. 1895 नाटाल सुप्रीम कोर्ट में भारतीय द्वारा हिन्दी सीखने की गांधी जी को प्रेरणा।
4. 1906 'इंडियन ओपीनियन' में हिंदी भाषा के संबंध में राय।
5. 1909 'हिन्द स्वराज' में 'केलवणी' प्रकरण में हिन्दी।
6. 1910 हिन्द साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की स्थापना।
7. 1912 गोखले के मराठी भाषणों का हिन्दी में अनुवाद गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में किया।
8. 1916 लखनऊ कांग्रेस में दक्षिण अफ्रीका के संबंध में प्रस्ताव हिंदी में रखा।
9. 1917 दूसरी गुजराती शिक्षण परिषद्, भरुच में अध्यक्ष, राष्ट्रीय भाषा कलकत्ता में हिन्दी विषयक प्रस्ताव।
10. 1918 हिन्दी साहित्य सम्मेलन इन्दौर अधिवेशन के अध्यक्ष।
11. 1920 अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना।
12. 1921 'हिन्दी नवजीवन' साप्ताहिक शुरु किया।
13. 1925 कानपुर कांग्रेस में हिन्दी का स्वीकार।
14. 1926 आश्रम में तुलसी-रामायण का पाठ।
15. 1927 समग्र राष्ट्र के लिए एक लिपि नागरी की बात की।
16. 1933 हिन्दी 'हरिजन सेवक' साप्ताहिक शुरु किया।
17. 1935 हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन के दौबारा अध्यक्ष।
18. 1936 ''राष्ट्रभाषा प्रचार समिति'' वर्धा की स्थापना।
19. 1937 ''गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार'' के द्वारा गुजरात में हिन्दी।
20. 1941 हिन्दी साहित्य सम्मेलन का पंजाब अधिवेशन रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दी प्रचार का स्थान।
21. 1942 हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा की स्थापना।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *कैलाश बाजपेयी- 'राष्ट्रभाषा हिन्दी पर गांधी जी के विचार' गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति दिल्ली, 2003, प्रथम संस्करण।*
2. *सुरेन्द्र प्रसाद अग्रवाल- महात्मा गांधी: विचार-वीथिका कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी दिल्ली प्रथम संस्करण 2001*
3. *दशरथ लाल शाह-''गांधी जी और हमारी राष्ट्रभाषा'' गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद-प्रथम संस्करण 2004*
4. *गांधी हरदान हर्ष-''गांधी विचार और दृष्टि'' श्याम प्रकाशन, जयपुर द्वितीय संस्करण 2002*
5. *मोहनदास कर्मचन्द गांधी-''हिन्द स्वराज (1949)'' नवजीवन ट्रस्ट अहमदाबाद*
6. *गांधी जी: ''रचनात्मक कार्यक्रम नवजीव प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 1946।*
7. *जैनेन्द्र कुमार: ''समय और हम'' पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली*
8. *सम्पूर्ण गांधी वाड.मय: (खण्ड 14) प्रकाशन विभाग, दिल्ली*
9. *सुधाकर पाण्डेय: ''हिन्दी साहित्य चिंतन'' कला मन्दिर, प्रथम संस्करण 2002 पृ. 116*
10. *प्रताप सिंह: ''गांधी जी का दर्शन''*
11. *प्रो. बी.एम. शर्मा: ''गांधी दर्शन के विविध आयाम'' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, प्रथम संस्करण 2007.*
12. *गोपाल प्रसाद व्यास: ''गांधी हिन्दी दर्शन'' दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य नई दिल्ली।*

ऐतिहासिक दृष्टि से डिंगल गीतों का महत्व: मालाणी क्षेत्र के रावल मल्लीनाथ एवं रावल जगमाल के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. सुरेश कुमार चौधरी
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

राजस्थान अपनी समृद्ध साहित्यिक, सास्कृतिक परम्परा एवं गौरवपूर्ण ऐतिहासिक विविधता के कारण सम्पूर्ण भारत में अपना विशिश्ट स्थान रखता है। यहाँ के वीरों ने समाज, मानवीय आदर्श एवं मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान करते आये है। जैसे शौर्य और त्याग राजस्थानी वीरों ने दिखाया। वैसी ही सशक्त ओजस्वी वाणी में यहां के कवियों और साहित्सकारों ने अभिव्यक्त भी किया है। बलिदान एवं उत्सर्ग का वह स्वर डिंगल भाषा में सहज ही मुखरित हुआ है। डिंगल भाषा प्राचीन राजस्थानी भाषा है, जो चारणों द्वारा गीत-विद्या में प्राचीन राजस्थान में प्रचलित थी। यह भाषा दमंगल अर्थात युद्ध-घटनाओं के वर्णन के लिए अत्यन्त ही सशक्त भाषा है। इस भाषा के शब्दों में मंत्रो जैसी अमोघ शक्ति है। वीरों के लिए डिंगल भाषा के गीत मृत्युंजय मंत्र के समान है। इन सिद्ध डिंगल गीत मंत्रों के रचियता चारण ऋषि है। इन चारण ऋषियों ने वीरों को वीरगति प्राप्त करने के पश्चात् भी जीवित रखा है।

राठौड वंश के संस्थापक राव सिन्हा (सिंहराज) के नवे उत्तराधिकारी राव सलखा (सलक्षराज) के ज्येष्ठ पुत्र व उत्तराधिकारी रावल मल्लीनाथ हुए। रावल मल्लीनाथ वर्तमान बाड़मेर जनपद के बाड़मेर, जसोल, सिणधरी, कोटड़ा, पोकरण, चौहटन, थोब, नीमड़ी ठिकाने वालों के आदि पुरुष थे। रावल मल्लीनाथ स्वतंत्र शासक थे, उन्हीं के नाम पर इस भू-भाग को मालाणी मालाणा कहलाया।

मालाणी की तप: पूत मल्लीनाथ एवं रानी रुपादे की भक्ति-गंगा तरंगिणी के साथ-साथ क्षात्रधर्म की, पराक्रम पराकाष्ठा की साक्षी भी रही है। मारवाड़ की राठौड़ सत्ता के स्थायित्व के लिये न जाने मलानी के कितनी ही वीर शहीद हुए। मालाणी के वीरों की गाथाओं से स्फूरित होने वाले कवियों के वाग्विलास से मलानी के यश की धवल कीर्ति पत्ताका दिग्दिगन्त में फैलती रही।

मालानी की कोई भी जागीर हो, जसोल, सिणधरी या बाड़मेर, चोहटन या पोकरण, कोटड़ा, सेतराऊ हर स्थान के कवि उन वीरों की यशोगाथाओं को गाता रहा। हरिरस के रचियता ईसरदास, दूरसा आढा, बांकीदास के कवि इस गाथा-गान से जुड़ गये। मल्लीनाथ के वंशजों के साथ-साथ वे भी अमर हो गयें।

नैणसी की ख्यात में राव सलखा (सलक्षराज) के चार पुत्र थे इसकी पुष्टि एक दोहे से होती है-

चारि तनय मारु मिलक जाये सलखा राई।
राऊ, माला अरु , जेतमाल, वीरम सोभित नांई।।

रावल मल्लीनाथ को एक सिद्ध पुरुष बताया गया है। वे नाथ सम्प्रदाय के सिद्ध थे। मल्लीनाथ को सिद्ध पुरुष मानकर दिल्ली के बादशाह ने जालौर बुलाया और मल्लीनाथ से कहा कि यहां वर्षा होनी चाहिए तो उसी दिन वर्षा होने लगी। इन तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं रावल मल्लीनाथ सिद्ध पुरुष थे। इसकी अन्य पुष्टि डिंगल गीत ''रावल मल्लीनाथ सलखाउत मलानी री'' से होती हैं जो इस प्रकार है-

प्रथी देसांतरां मुरधरा अनेरा वडेरा पीरां,
सूरवरां मुरां च्यारां पैकंबरा साथ।
श्रगरां अम्मरांपुरा करां जोड़ मानै सेव,
नरां अहोपुरां सुरां दीपै मलीनाथ।।
तरवेस नरश थाट सुरेसल मांनै तुझ,

महेस दीनेस तुं ही देव तूं मुरार।
प्रवेस तैतीस कौड़ अंसदेव तुहा प्रभु,
दसीं देसा तणा जीता माल रै दुबार।।
सहसौई कला भाल ब्रिमलां विराजै सूर,
बलीवला अण कलां प्रहालां बखांण।
अलांहलां दीपमाला अप्रलां जागै जोत,
ऊजला पखां री बीज मेली आंण।।
नवै ग्रहां सेवा तूझ नवे कुली सेवै नाग,
नवा नाथा सिरै नाथ नवे खेड़ा नाम।
नवे ही पवन्ने खेड़ा नवै नेह आगै नीत
सेतां नवे निध देवं महेवा री सोम।।

भावार्थ- इस डिंगल गीत में रावल मल्लीनाथ को राजस्थान के लोकमानस में एक सिद्ध पुरुष बताया गया हैं। गीता में उनके षासन रुप के स्थान पर देव रुप का वर्णन किया गया है। उन्हें नाथ सम्प्रदाय का सिद्ध बताया गया है। मल्लीनाथ जी की देश-देशान्तरों तक मान्यता थी। दिल्ली के सुल्तान ने मल्लीनाथ की बढ़ती शक्ति को देखकर अपनी सेना की तेरह टुकड़ियों को मल्लीनाथ को दबाने के लिए भेजा। मेहवे की सरहद पर युद्ध हुआ, जिसमें सुल्तान की फौज भाग गई। रावल मल्लीनाथ विजयी हुए। यह घटना 1378 ई. की है।

"तेरा तुंगा भागीया माले सलखांणी"

यह कहावत आज भी मलाणी क्षेत्र में प्रचलित है। दिल्ली के सुल्तान के साथ हुए युद्ध में जैसलमेर के रावल गड़सीजी ने मल्लीनाथ जी का साथ दिया। उस समय जैसलमेर तुर्कों के कब्जे में था। मल्लीनाथ के पुत्र कुंवर जगमाल ने रावल गड़सीजी को तुर्कों से वापस जैसलमेर दिलाया तथा मल्लीनाथ जी ने जम्मीदारों को दण्ड देकर बहुत सा क्षेत्र मेहवे में सम्मिलित कर लिया।

ठस घटना की व्याख्या एक डिंगल गीत में मिलती हैं जो इस प्रकार है-

बढनगर वाराह विधु सै,
पौकारै नित पंडर वेस।
सूअर माल चरै सलखाउल,
ढाढसं मांह किया देस।।
गिड गरुवी आंगमण न आवै,
सरबस मारै महा संग्राम।
मोथी माल चरै नर मोठा,
गढ मलै मूलै बहौ गांम।।
भांजे भीम भीलावा भालै,
वोकम माल वलै वउवाय।
पहौकरण पूंगल पै गाहै,
खोत्राडे खोडा बल खाय।।
बाहडमेर कोटडौ मंडोवर,
मोटी माल चढावै मौड।
धूहड़ियौ नीजांही धोखै,
रस कांधै लागौ राठौड़।।

भावार्थ- इस डिंगल गीत में रावल मल्लीनाथ को वाराह के रुप में बताया गया हैं और विरोधियों के पोकरण, पुंगल (जैसलमेर) आदि राज्यों के मोथ रुपी गाय को चरने का वर्णन किया गया है। मल्लीनाथ ने अपनी तलवार रुपी ढ़ाढो से दस देशों की उपज प्राप्त करता हुआ बाड़मेर कोटड़ा एवं मण्डोर को गौरवान्वित करता है। इसकी पुष्टि राजा सूरसिंह जोधपुर की प्रशंसा में रचित सुरसिंह वंश प्रशस्ति (रचनाकाल वि.सं. 1777) में रावल मल्लीनाथ को दिल्ली के तैमुरलंग, गुर्जरपति और मांडू का विजेता बताया गया है।

रावल मल्लीनाथ की राणी रुपादे एक सिद्ध-स्त्री थी। डॉ क्षीरसागर ने अपने ग्रंथ "राजस्थान संत शिरोमणि राणी रुपादे और मल्लीनाथ" में लिखा है। कि रावल मल्लीनाथ अपनी राणी रुपादे के पंथ में शरण ढूंढने लगे।" इससे स्पष्ट होता है। कि राणी रुपादे सिद्ध-स्त्री थी। इसकी पुष्टि एक डिंगल गीत "गीत राणी रुपादे जी री" के द्वारा भी की जा सकती है। जिसमें कहा गया है कि रुपादे के समान सत्यव्रती नारी न सिसोदियों के चितौड़ राज्य में जन्मी, न कछवाह और न ही गुजरात के यदूवंश में उत्पन्न हुई।

डिंगल गीतों की सहायता से इतिहास के कई बिन्दुओं पर प्रकाश डाला जा सकता है।

गुजरात के बादशाह का नवाब अब्दुल्ला खां रावल मल्लीनाथ के पास कर लेने आया तथा सीणली गांव की लड़कियों को पकड़ कर ले गया। जब इसकी सूचना रावल मल्लीनाथ को हुई तब उन्होंने अन्न-जल का त्याग कर दिया। तब कुंवर जगमाल ने इसका बदला लेने की शपथ रावल मल्लीनाथ के सामने लेकर अन्न-जल ग्रहण कराया। कुवर जगमाल ने मौका पाकर बादशाह की बेटी गीढोली का अपहरण कर अपने घर में रखा। बादशाह ने फौज लेकर मेहवा पर आक्रमण किया, लेकिन बादशाह को सफलता नहीं मिली। कुंवर जगमाल इसमें विजयी रहें।

इस घटना की पुष्टि डिंगल गीत "गीत जगमाल मलिनाथोत खेड रौ के द्वारा भी होती हैं जो इस प्रकार है-

दुहतर मांहरी गुरवै दाखी,
म्हानू दै मालाणा।
जनागढ जेहड़ा गढ पावै,
ठावा देऊ ठिकाणा।।
मनसुध लिखै बेगडौ महुमढ,
साहजादौ सूंपीजै।
कंवरागुर कीजै मौ कहियौ,
लाखा जवहर लीजै।।
त्रजउहथी कमधज तुरकां री,
भोजां सगली मेटी।
धर गुजरात घणी री घाती,
बलबेत खोसै बेटी।।
उसरां सूं आहुउवा ऊभा,
तेरा भुजाबल तोली।
मणीगर जगमाल महेची,
बळ बांधी गींदोली।।

भावार्थ- यह डिंगल गीत महेवा खेड़ के स्वामी रावल मल्लीनाथ के पुत्र कुंवर जगमाल से संबद्ध है। इसमें अहमदाबाद के बादशाह महमूद बेगड़ा की कन्या का हरण कर उसको अपने घर में रखने का वर्णन है। महमूद बेगडा ने अपनी पुत्री लौटा देने के लिए जगमाल से अनुनय

तथा प्रलोभन की बाते की लेकिन कुंवर जगमाल सहमत नहीं हुआ। श्रावल मल्लीनाथ के पुत्र कुंवर जगमाल ने अपनी तलवार के बल पर शत्रुओं का नाश करके नवीन राज्य प्राप्त किया। उसने तुर्कों को पराजित कर उनकी भूमि को अपने आधिपत्य क्षेत्र में लिया। रावल जगमाल ने अपने शौर्य और पराक्रम से सिंध कच्छ, पारकर (सांचौर) सिवाणा, जालौर, जैसलमेर और पुंगल पर विजय प्राप्त की।

इस बत की पुष्टि डिंगल गीत ''गीत रावल जगमाल मलीनाथेत मालानी रौ'' में होती है, जो इस प्रकार है-

खंडा जी खित खातण हारी,
भड़ आरेणी भांजण हारी।
आचांही जगमाल अकारी,
बंकिम बींद विलस्सै वारी।।
सह रावां सिर सेर सप्रांणी,
निहिं बींढै तोडे तुरकांणो।
जिन दिस जाय जिणी दिस जाणी,
मारकी थकी रहै मालाणी।।
काल कलाधर जगड़ कहीजै,
प्रथमी तेण प्रताप पतीजै।
भुखंड जैत तणै भ्रातीजै,
लगू हूवै परायी लीजै।।
धासण खांगा सिंध तणीधर,
पाधर काछ लगी पाराकर।
कौपे ओ किण ऊपर कुंकवर,
मीडे ढाल मंहलग दे वर।।
सिवियाणौ, जालौर संकाडे,
पीढी, पूंगल खाग पजाडे।
बीकमपुर नीसांण बजाडै,
आयौ भिड़ जीते अखाडे,
निमधै जुध जैसांण निहेणी,
पिडि भू थार सहस पुड पैठी।
बाहडगिरी खाबड गल बैठी।
सारी धरा धूपती सैठी।।
माल तणै मोरां तउ मारै,
सारे गढ़ राउद्रहा संधारै।।
अनिमेध कोरां नीर उतारै।।
वधियो अधिक सिंध वधारै।।
कहै तै बाखांव कहेवी,
आणै आथ विधू सै अेवी।
कोतां सरिस न छाडै केवी,
मोतां माथां सूल महेवी।।

भावार्थ- इस गीत में मलानी राज्य के अधिपति रावल जगमाल की युद्ध विजयों का वर्णन है। रावल जगमाल ने अपनी खडग के बल पर शत्रुओं का विनाश कर एक नया राज्य को प्राप्त किया। वह तुर्कों को परास्त कर उनकी भूमि रुपी भार्या का भोगी है। उसने सिंध, कच्छ, पारकर, सिवाणा, जालौर, जैसलमेर और पुंगल पर विजय प्राप्त कर अपने यश का विस्तार किया।

ऐतिहासिक दृष्टि से ''डिंगल गीत'' अति महत्वपूर्ण साक्ष्यों के रुप में प्रयोग में लिये जा सकते है। डिंगल गीत के रचियता उस समय के कवि थे, जिन्होंने अपनी समकालीन घटनाओं को आंखों से देखा तथा उन घटनाओं का वर्णन अपनी रचनाओं के माध्यम से किया। मलाणी के सन्दर्भ में ऐसे असंख्या कवियों को लिया जा सकता है। इनके माध्यम से हम तत्कालीन समाज के कतिपय पक्षों का अध्ययन कर सकते है। इस प्रकार डिंगल गीत, राजनैतिक घटनाओं, युद्धों, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों के प्रमाणिक दस्तावेज है।

इस शोध-पत्र में मलानी के रावल मल्लीनाथ एवं रावल जगमाल की ऐतिहासिक घटनाओं की पृष्टि डिंगल गीतों के माध्यम से करने के पूर्ण प्रयास किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से डिंगल गीतों को साक्ष्य के रुप में भी प्रयोग लिया गया है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *सौभागयसिंह शेखावत, मालाणी के गौरव-गीत, पृ.सं.4*
2. *वहीं, पृ.सं. 5, 6*
3. *जसवंत-उद्योग, पृ.सं. 5*
4. *मलाणी के गौरव गीत-10, गीत रावल मल्लीनाथ सलखाऊत रौ, पृ.सं. 11,12*
5. *ख्यात, बी.एल. भदानी, मरुभूमि शोध संस्थान, पृ.सं. 33*
6. *सौभाग्यसिंह शेखावत, मलानी के गौरव गीत, पृ.सं. 11,12*
7. *ख्यात, बी, एल, भदानी, मरुभूमि शोध संस्थान, पृ.सं. 33*
8. *वहीं पृ.सं. 33*
9. *मलाणी के गौरव गीत, रावल मल्लीनाथ सलखाऊत महेबा रौ, पृ.सं. 13,14*
10. *सुरसिंह वंश प्रशस्ति, सुरसिंह पृ.सं. 84*
11. *डी.बी. क्षीरसागर, राजस्थान के संत शिरोमणि राणी रुपादे और मल्लीनाथ, जोधपुर, 1998, पृ.सं. पग*
12. *मलाणी के गौरव-गीत, गीत राणी रुपादे जी रौ, सौभग्यसिंह शेखावत, पृ.सं. 19,20*
13. *इस घटना का सन्दर्भ एक राजस्थानी बात में मिलता है। (जगमाल मालावत, राजस्थानी बातां, सूर्यकरण पारीक दिल्ली, 1936, पृ.सं. 50-65)*
14. *मलाणी के गौरव-गीत, सौभग्यसिंह शेखावत गीत कुंवर जगमाल मलिनाथोत खेड रौ, पृ.सं. 19,20*
15. *ख्यात, बी.एल. भदानी, मरुभूमि शोध संस्थान, पृ.सं. 37*
16. *मलाणी के गौरव-गीत, सौभग्यसिंह शेखावत गीत कुंवर जगमाल मलिनाथोत मलानी रौ', पृ.सं. 20,21,22*

नई सदी में साहित्यऔर समाज का वंचित विमर्श (किन्नरों के विशेष संदर्भ में)

डॉ. सुरेश सिंह राठौड
सहायक आचार्य, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, अजमेर

shodhshree@gmail.com

मन करता है सूरज बनकर, आसमाँ में दौड़ लगाऊँ,
मन करता है चंदा बनकर, सब तारों पर अकड़ दिखाऊँ,
मन करता है बाबा बनकर, सारे घर पर धौंस जमाऊँ,
मन करता है पापा बनकर, मैं भी मूंछ बाऊँ
मन करता है माँ बनकर, मैं भी नन्हों को दुलारुं...लेकिन...

उक्त कविता का संदर्भ चाहे जो भी हो परन्तु प्रकृति की मार झेल रहे किन्नरों पर यह कविता निर्विवाद रुप से खरी उतरती है। किन्नरों को हिजड़े, नादर, अली, खुसरो, खोजा, अरुवानी, छक्का, पावैया आदि-आदि कई नामों से जाना जाता है। चाहे इन्हें कोई भी नाम दे परन्तु दुनिया के हर देश, देश के हर कोने में इनका अस्तित्व है । यद्यपि हमारे वैदिक ग्रंथों तथा संस्कृत ग्रंथों में किन्नर लोक का पूरा वर्णन है। वहां यक्ष, गन्धर्व, किन्नर सब जाति के रुप में वर्णित है। शायद यही कारण है कि इन्हे किन्नर कहने में हिमाचल प्रदेश के लोग पक्षधर नहीं हैं । उनका मानना है कि हिमाचल के जनजातीय जिला किन्नोर के निवासी किन्नोरा व किन्नर जाने जाते हैं । किन्नर हिमालय क्षेत्र में बसने वाली अति प्रतिष्ठित व महत्वपूर्ण आदिम जाती है जिसके वंशज किन्नोर के निवासी माने जाते हैं।

वस्तुत: किन्नर कौन है? जिनमें शारीरिक अभाव हो अर्थात जो न नर हो और न नारी हो। प्राकृतिक रुप से बीच की स्थिति। वैसे हिजड़ों की चार शाखाएँ हैं-बुचर, नीलिमा ,मनसा और हंसा। किन्नर समाज में जन्मजात हिजड़ों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, इन्हें बुचरा' कहा जाता है। अधिकतर हिजड़े नकली होतें हैं जिन्हें अबुआ' कहा जाता है। लिंगोच्छेदन कर बनाए हिंजडो को छिबरा' कहा जाता है। स्वयं बने हिजड़े नीलिमा तथा शारीरिक कमी के कारण बने हिजड़ें हंसा कहलातें हैं।

प्राचीनकाल में इन लोगों को समाज में यथोचित स्थान प्राप्त था। वे भी समाज की मुख्यधारा के अंग थे। अर्जुन द्वारा वृहन्नला का रुप धारण कर विराट नरेश के रनिवास में रहना तथा सामाजिक भागीदारी निभाना,शिकंडी का किन्नर के रुप में पैदा होना तथा भीष्म के लिए काल बनना सर्वविदित है। परंतु प्राचीन इतिहास के पन्ने पलटते हैं तो ज्ञात होता है कि अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में किन्नर वरिष्ठ सैनिक अधिकारी होते थे मलिक गफूर' एक ऐसा ही अधिकारी था। गुजरात में सुलतान मुजफ्फर के शासन काल में 'मुफित उल-मुल्क' नामक किन्नर कोतवाल था। जहाँगीर के शासन काल में ख्वाजा सराय हिलाल नामक किन्नर प्रमुख प्रशासनिक पद पर तथा खान नामक किन्नर अदालत में कार्यरत था। तत्कालीन समय में इन लोगों को हेय दृष्टी से नहीं देखा जाता था। परन्तु आज मनुष्य की मानसिक विकलांगता के चलते समाज और सरकार दोनों ही से यह समुदाय कटा हुआ है। यह बात अलग है कि आज निगम चुनावों से लेकर विधान सभा तक ये लोग पहुँच गए है। सन 1994 में महिला मतदाता के रुप में पहचान मिलने के बाद सन1995 में हरियाणा के हिसार की वार्ड नंबर 09 से शोभा नेहरु नामक किन्नर पार्षद बनी। इसी प्रकार शबनम मौसी मध्य प्रदेश के शहडोल जिले के सोहागपुर विधान सभा सीट से विधायक बनी।

 ISSN 2277-5587

सामान्य बच्चों की तरह ही माँ की गोद में ऐसे बच्चों की किलकारी गूंजती है माँ बाप भी अपने कलेजे के टुकड़े को अन्य बच्चों की तरह प्यार करते हैं परन्तु जब उन्हें बच्चे के शारीरिक अभाव का ज्ञान होता है तो वे सिर धुनकर रोने लगतें हैं तथा सामाजिक प्रतिष्ठा व सामाजिक दबाव के चलते अपने लाडले को किन्नर लोगों की गोद में सौंप देतें हैं। मनुष्य के रुप में जन्म लेने के बाद भी ये अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर होते हैं। राजस्थान जैसे प्रदेश में जहाँ लड़कियों को जन्म लेते ही मार दिया जाता है, वहां इन किन्नर बच्चों को जिन्दा रखने कल्पना करना भी निरर्थक है। भारत में इनकी संख्या लगभग बीस लाख है। समाज का अभिन्न अंग होते हुए भी समाज की मुख्य धारा से कटे हुए है तथा उपेक्षित एवं तिरस्कृत है। कितनी विडम्बना की बात है कि इस समुदाय के बच्चों को स्कूल में प्रवेश भी नहीं दिया जाता। 'तीसरी ताली' उपन्यास में आनंदी आंटी किन्नर निकिता का स्कूल में दाखिला करवाने की हर संभव कोशिश करती है परन्तु उन्हें हर जगह एक ही जबाब मिला कि जेंडर स्पष्ट न होने के कारण हम दाखिला नहीं दे सकते।[1] अपने बच्चे को पाने की लालसा मन में ही रह जाती है और समाज से हारकर एक दिन निर्णय लेती है और अपनी बेटी को किन्नरों को सौप देती है। केवल शारीरिक अभाव के कारण ही समाज इन्हें हेय एवं हिकारत की दृष्टि से देखता है।

आधुनिक साहित्यकारों ने भी इस प्रकृति के लोगों पर अपनी लेखनी चलायी है। चतुरसेन शास्त्री, खुशवंत सिंह मिथिलेश्वर, नीरजा माधव, महेंद्र भीष्म, प्रदीप सौरभ, निर्मला भुराड़िया, यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, उमेश शास्त्री, जैसे साहित्यकारों ने अपने कथा साहित्य में पर्याप्त स्थान दिया है। यमदीप, किन्नर कथा तीसरी ताली तथा गुलाम मंडी उपन्यास तो पूर्णत इन्ही के जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त करतें हैं। खुशवंत सिंह के दिल्ली उपन्यास में एक हिजड़ा ही सूत्रधार होता है। दिल्ली के निर्माण में हिजड़ों की भूमिका और दिल्ली के चरित्र को भी खुशवंत सिंह ने हिजड़ों से जोड़ कर एक मोहक रुपक रचा है। किन्नर कथा उपन्यास में महेंद्र भीष्म ने हिजड़ों की तकलीफों, उनकी उपेक्षा, उनकी व्यथा और उनकी तमाम समस्याओं से दो-चार करवाया है। नीरजा माधव ने अपने उपन्यास यमदीप में हिजड़ों के जीवन की मार्मिक कथा का चित्रण किया है। उनके पुनर्वास, रोजगार और शिक्षा का प्रश्न उठाया है। अपने उपन्यास में उन्होंने इनके समुन्नत जीवन के लिए मुख्य धारा से जोड़ने पर बल दिया ह। राजस्थान के साहित्य में यत्र-तत्र इनका वर्णन मिल ही जाता है क्योंकि यहाँ के नरेशों के रनिवासों में ये चौकीदारी करते थे। यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र ने अपने उपन्यासों जनानी ड्योडी, रक्त कथा तथा मरु केसरी उपन्यासों में इनका वर्णन किया है। उमेश शास्त्री ने राजस्थान के सामंतों की ठसक एवं नृत्यांगना रसकपूर के जीवन को आधार बनाकर लिखे उपन्यास रसकपूर में इनका पर्याप्त वर्णन किया है।

किन्नरों पर साहित्य सृजन करना साहसिक और चुनौती भरा होता है परंतु 2011 से 2014 के बीच का समय किन्नरों के लिए साहित्यिक दृष्टि से उत्तम कहा जा सकता है क्योंकि इस बीच इनके जीवन पर आधारित चार महत्त्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित हुए। इन उपन्यासों में इनके सुख-दुःख, हाशिए पर जिंदगी जीने की व्यथा कथा है तथा परिवार से परित्यक्त होकर जीवन जीने की समस्याओं को प्रमुखता से उठाया है। दुर्भाग्य इस बात का है कि इन्हें आम इंसानो की तरह नहीं समझा जाता, हर जगह हेय दृष्टि से देखा जाता है, समाज का प्रत्येक व्यक्ति इनके साथ भेदभाव करता है। किन्नर कथा उपन्यास में महाराज जगत सिंह को भगवान की बहुत मिन्नतों के बाद औलाद का मुख देखने को मिलता है परन्तु एक संतान तो पूर्ण लड़की है और दूसरा हिजड़ा मालिक न, देखाई...के...मोय...लगत...जो...हिजड़ा भओ है।[2] ऐसे बच्चे को देखकर माँ-बाप का कलेजा भी मुँह को आ जाता है। ईश्वर ने पता नहीं किस जन्म की सजा दी है इस मासूम को, कितना बड़ा अन्याय किया है उसने इस बेचारी के ऊपर। क्या ईश्वरीय पाप का परिणाम है ...क्या हिजड़े ईश्वर का पाप है।[3] ये भी अपने माँ-बाप का प्यार पाना चाहते हैं परन्तु महाराज जगत सिंह जैसे व्यक्ति अपनी तथाकथित आन-बान को बचाने के लिए उन्हें मौत के मुंह में धकेल देते हैं। उनका का सोचना है अपने बुंदेला खानदान को नाम डुबो दें, क्षत्री वंश में हिजड़ा, का ऊ हिजड़ा हां पाले-पोसे अरे आज नहीं तो कल,जब सब के सामने जा बात आ जेहे कि हमाई संतान हिजड़ा है, बुंदेला खून हिजड़ा पैदा करत तो का गत हुई हमाई, समझत काय नईय्या तुम इत्ती सी बात।[4] और यह इत्ती सी बात कल भुंसारे, मो अंधियारे इंदीरा की डांग ले जा के मार डारो।[5] इस प्रकार जगत सिंह अपनी संतान का संहार करवा देता है। ये दंश प्रत्येक किन्नर बालक को सहन करना पड़ता है। इसी उपन्यास का तारा चंद अग्रवाल भी इसी प्रकृति का है। अपने परिवार को याद करते हुए कहता है ओर चौदह-पन्द्रह का होते होते उसे उसके ही परिवार से दूर कर दिया गया। बहनों की शादी का वास्ता, घर-परिवार की मान-मर्यादा का खयाल, उसे दूर जाने के लिए विवश किए था। अपने भाग्य और नियति की इच्छा जान वाह हिजड़ों के साथ हो लिया था। बहनों की शादी...पिता की मृत्यु की सूचना उसे नहीं मिली थी, माँ की मौत की सूचना पाकर वह आया तो बड़े भाई और भतीजे ने माँ की चिता के पास फटकने भी नहीं दिया।[6] पराकाष्ठा तो तब हो गई जब जब उसी के भतीजे ने उसे धमकाते हुए कहा तू हिजड़ा है, हिजड़ा, हमारा तेरे से कोई नाता नहीं, तू हमारा कुछ नहीं लगता, भागजा यहाँ से, क्यों हमारी नाक कटाने पर तुला हुआ है, हिजड़ा कहीं का।[7] तीसरी ताली उपन्यास में एक पिता अपनी किन्नर संतान को लड़का बनाकर घर में रखता है पर कितने दिन। समाज से हार मान कर उसे भी छोड़ना ही पड़ता ह। हम क्यों नहीं सोचते कि ये भी हमारी ही तरह है, हमारा ही खून है। क्यों नहीं हम अपने अन्य बच्चों की तरह इनका लालन-पालन करें, उचित शिक्षा दे। अब तो न्यायालय ने भी इन्हें निजता और वैयक्तिकता के वो सारे अधिकार दे दिए हैं जो हमें प्राप्त हैं। कोई भी स्कूल इन्हें प्रवेश के लिए मना नहीं कर सकता, वोटर कार्ड से लेकर आधार कार्ड बनवाने, स्वास्थ्य कल्याणकारी योजनाओं का लाभ तथा शैक्षणिक व सरकारी सेवाओं में अन्य पिछड़ा वर्ग के तहत आरक्षण का लाभ आदि प्राप्त हैं। सोचने और समझने के लिए इनके पास भी दिल होता जो भावनाएँ महसूस करता है। ये भी प्यार चाहते हैं, मान चाहते हैं, घर-परिवार के बीच रहना चाहते हैं परन्तु समाज की दुहाई देकर इन्हें घर से निकाल दिया जाता है जिसके कारण हाशिए का जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

तीसरी ताली उपन्यास का कथानक दिल्ली के सिद्धार्थ एन्कलेव से लेकर कुबंगम तक का है। इसमें हिजड़ों की कथा के साथ-साथ

लेस्बियन, गेय, बायो सेक्सवल एवं ट्रांसजेंडर की कथा भी शामिल है। डिम्पल गद्दी की मालकिन है तो दूसरी ओर रेखा चितकबरी है जो कालगर्ल्स का धंधे में शामिल ह। गद्दी के लिए होने वाले संघर्षों की जीवंत अभियक्ति इस उपन्यास में हुई है। साथ ही इनकी लोक संस्कृति एवं लोकाचारों भी वर्णन हुआ है। कथाकार प्रदीप सौरभ ने इस उपन्यास में हिजड़ों के डेरे, उनकी गद्दी डेरे की गतिविधियों का बेबाक चित्रण किया है। इस समुदाय का सदस्य स्वयं को मंगलमुखी कहता है क्योंकि ये मांगलिक कार्यों में ही सम्मिलित होते हैं, मातम आदि में नहीं।

लेखक ने उनके मंगल मुखी तथा आशीर्वाद देने के लोकाचार को अभियक्त करते हुए लिखा है हिजड़ों को खाली हाथ लौटाने से अपशकुन होता है।[9] समुदाय को शुभाशीष प्रदान करने वाला भी कहा जाता है इसीलिए नववधु तथा नवजात को इनका आशीष दिलवाया जाता है। यह भी माना जाता है कि इनके द्वारा दूसरों के लिए मांगी गई मन्नत सदैव पूरी होती ह। इसी कारण अग्रवाल साहब उनके जुड़वां बच्चों के जन्म के मौके पर जब तक डिम्पल ने गोद में लेकर बच्चों को आशीर्वाद नहीं दिया तब तक माने नहीं थे।

अन्य समाजों के समान इस समुदाय की भी अपनी मान्यतायें हैं। भोपाल में राखी के त्योहार के बाद भुजरिया उत्सव मनाया जाता है, जिसमे देश के कोने कोने से सामाजिक बंधु एकत्रित होते हैं। बेंगलोर में प्रति वर्ष इस समुदाय का उत्सव मनाया जाता है। तमिलनाडु में हिजड़ें स्वयं को थिरुनान्गाई (ईश्वर-पुत्री) मानतें हैं और अरुवानी कहलाना पसंद करतें है और अर्जुन पुत्र अर्वान की पूजा करते हैं। तमिलनाडु के कुवंगम गाँव, जिसे किन्नर लोगों का मक्का कहा जाता है; में प्रतिवर्ष ये लोग दुल्हन बन कर अपनी साध पूरी करतें हैं। केरल में आयप्पा और चामय्या विक्कू उत्सव, नाटक में येल्लामा देवी उत्सव और गुजरात में बहुचर देवी के नवरात्र पूजा में देश भर के हिजड़े सम्मलित होतें हैं।

इनके अपने देवी देवता भी होतें ह। ये बहुचर देवी की उपासना करते हैं, जिसका मंदिर गुजरात में स्थित है। तीसरी ताली उपन्यास में देवी के बारे में लिखा है वैसे हिजड़े मुर्गेवाली माँ को अपनी इष्ट देवी मानते हैं।[9] मुर्गी के ऊपर सवार चार भुजाधारी माँ बहुचर देवी एक हाथ में त्रिशूल, दूसरें में तलवार, तीसरें में चूड़ियाँ तो चौथें में धार्मिक ग्रन्थ धारण किए रहती है। ये काली देवी की भी पूजा करते हैं तथा चांवल, मूंग, दाल, शक्कर एवं देसी घी में बनी खिचड़ी का माता के भोग लगाते हैं फिर इसका प्रसाद बांटा जाता है।

इस समुदाय का प्रत्येक सदस्य धर्म एवं आस्था में पूरा विश्वास रखता है। गुरु-शिष्य परम्परा आज भी विद्यमान है। हमारें नाम मुस्लिम हो या हिन्दू हम सब एक हिंजड़ा समाज के होतें हैं। हमारे सात घर होतें हैं। प्रत्येक घर का एक मुखिया होता है, जिसे नायक कहतें हैं, जो गुरु नियुक्त करता है। गुरु अपने चेलों को बधाई, गाना-नाचना सिखाता है, गुरु के स्थान को गुरुधाम बोला जाता है।[10] समुदाय के किसी सदस्य की मौत के बाद ये लोग मातम नहीं मानते, अपितु खुशी मनाते हैं क्योंकि नर्क रुपी इस जीवन से छुटकारा मिल जाता है। परंपरा में है की हिजड़ा को दूबारा हिजड़ा का जन्म न मिले, इसलिए उसे रात में जब लोग सो चुके होतें हैं, चुपके से दफना दिया जाता है। उसकी अर्थी पर जूते-चप्पल भी मारतें हैं ताकि मृत अभागा पुन: किन्नर का जन्म न ले।[11] इसी प्रकार गुलाम मंडी उपन्यास में भी सौ वर्षीय हिजड़े के मरने पर साथी हिजड़े मारते हैं। कफ़न को गड्ढे में रखने के बाद उन्होंने लाश को कफ़न में उतारा मगर सीधे नहीं लेटाया बल्कि लेटाया पेट के बल। लाश को उल्टा रखकर उन सभी ने अपनी-अपनी कमर में बंधे जूते-चप्पल निकल लिए और लाश को पीटना शुरु कर दिया। इस कथन के साथ कि अगले जन्म में हिजड़ा न बनना।[12]

इस प्रकार दूसरों की खुशियों में अपनी खुशी ढूँढने वाला यह समाज पुत्र जन्मोत्सव, विवाहोत्सव तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर भेंट मांग कर अपना जीवन यापन करता है। परन्तु समाज का यह उपेक्षित, तिरष्कृत और अपमानित वर्ग आज स्वयं बेपनाह दर्द से छटपटा रहा है। आज आवश्यकता इस बात कि है की हम इनकी पीड़ाओं को जाने, इन्हें भी समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करें साथ ही इनके साथ किसी प्रकार का भेद-भाव ना करें। गुलाम मंडी, किन्नर कथा, तीसरी ताली तथा यमदीप जैसे उपन्यासों के माध्यम से इनकी पीड़ा समाज के समक्ष आयी है। अत: साहित्यकारों ने इस वंचित वर्ग को अभियक्ति दी है तथा इनके लोकाचारों व लोक संस्कृति को भी रुपायित करने का प्रयास किया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची:

1. *तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ,42*
2. *किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, सामायिक बुक्स, दिल्ली पृष्ठ,16*
3. *किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, सामायिक बुक्स, दिल्ली पृष्ठ,34*
4. *किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, सामायिक बुक्स, दिल्ली पृष्ठ,27*
5. *किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, सामायिक बुक्स, दिल्ली पृष्ठ,26*
6. *किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, सामायिक बुक्स, दिल्ली पृष्ठ,51*
7. *किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, सामायिक बुक्स, दिल्ली पृष्ठ,51*
8. *तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ, 13*
9. *तीसरी ताली, प्रदीप सौरभ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ, 14*
10. *किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, सामायिक बुक्स, दिल्ली पृष्ठ,92*
11. *किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, सामायिक बुक्स, दिल्ली पृष्ठ,133*
12. *गुलाम मंडी, निर्मला भुराड़िया, सामायिक प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ,66*

Tirthankar painting evidence from miniature painting in Jain manuscript

Srashti Jain
Research Scholar,
Dayalbagh Educational Institute Deemed University,
Agra (Uttar Pradesh)

shodhshree@gmail.com

The scared land of India is the land of religion. Many religions, religious beliefs and religious sects have played their role for the enlightenment of the man and for the removal from sufferings of the mankind. Still there were certain cults, creeds and the religious beliefs which claim their genesis to remote past but never lost their appeal and have reached the modern times. Jainism happens to the one of them, the historicity of which could conveniently be traced to centuries before the advent of the Christian era and has come down to us during the present times facing many storm and upheavals, before reaching the modern age.

In the Jain traditions besides the other deities, the Arhants, the Siddhas, the kevals have been treated with great reverence. The Sadhuhas been defined to be of two kinds including Acharyas, Upadhyayas and other monks. The Keval knowledge is also considered to be holy discourse of the Jinas and is also called Shruta.

The methods of the adoration of the Jina, and the need for their worship have been defined in several Jain texts. Many of the Acharyas have conceived it to be the part of Vaiyavrtya. That is the Samantabhadraincluded it in his text of RatankarandaSravakachar in the same Yasastilaka. Jinsena too included it in his Adipurana is one from or the other.

According to are Jain traditions all the Tirthankaras reached Nirvanaat their death. Though, released from the world, they neither care for nor do they have any influenced on worldly affairs. They are nevertheless the objects of worship and are regarded as the gods by the Jains.

Tirthankar has been defined variously in both the Svetambara and Digambara jain literature. All of them however, agree on the point that Tirthankarameans a prophet. According to the literature definition, a Tirthankara is the one by who was shown the place of virtue, the best of all, reaching which means man overcome sorrow.

येन प्रणीतं पृथुधर्म तीर्थं ज्येष्ठं जना: प्राप्य जयन्ति दुखम्।
Brhatsvayambhu Stortra-9
{By Samantabhadra Acharya}

All the *Tirthankara* have been described in details in several Jain texts, including the *charit puranas*. As for example the *Adipuran* highlighted the life of *Rishabhnath*, The *Uttarpurana* describes the lives of other Jains.

It is difficult to conceive of any *Jain* artistic or architectonic creation that does not pertain to and can be isolated from the mainstream of the Indian art and architecture. This new moment in art was not confined to *Gujrat*, *Malwa* and *Rajasthan*only. There is evidence to prove that the movement had spread as far as *Uttar Pradesh* and had affected the progress of painting part as evidence by the illustrations of the *Kalpsutra* painted at *Jaunpur* in 1465 A.D. Though following the hieratic tradition this manuscripts has adopted a new movement and a new approach to figure drawing which finally evolved in the Rajasthan type. Besides the sculpture and bronzes, the Tirthankaras were also portrayed in the miniatures in the kalpsutra and other illustrated Jain manuscripts. There are four Tirthankar who were illustrated in Jain manuscript-

1. Rishabhnath
2. Mahavir
3. Parshvnath
4. Arithinemi

Rishabhnath-

One night as Marudevi lay asleep on her coach, there came to her sixteen auspicious dreams. In the dream she saw an elephant, a bull, a lion, goddess laxmi, a pair of fragrant flower, the moon, the sun, two golden vases, two fish, a lack, a high throne of sparkling gems, a heavenly carriage studded with pearls and precious stones, a mansion from the neither world, a heap of jewels illuminating the very firmament, a bright smokeless fire. At these dreams, Marudevi saw beautiful golden bull entering her mouth.

Then she made her way to *Nabhi*. She related her sixteen reams to him and inquired what they might portend. After a moment of reflection, *Nabhi* told her fruits of dreams. When the moon was in the asterism of *Uttarasadha*, *Marudevi* gave birth to *Rishabh*. The days passed with *Rishabh* fulfilling his royal duties and enjoying his good fortune. With this in mind, *Indra* descended on earth accompanied by the celestial dancer *Nilanjana*, whose life was nearing its end. As *Nilanjana* danced in *Rishabh's* court, she suddenly staggered, collapsed and vanished. *Indra* created another dancer in her place and the performance continued. But the momentary interruption left *Rishbha* deeply disturbed and he began to reflect on the ephemeral nature of life. *Rishbha* appointed his son Bharat as king and his son *Bahubali* as the next in command. The coronation of the princes coincided with the renunciation rites of their father. The gods prepared *Rishbha* for *Diksha* by lustrating him with holy waters. Although many temptations came this way, *Rishbha* ignored them he continued to practice meditation and penance until he attained the fifth kind of knowledge *Kevala Gyan*. *Rishabh* face could be seen from all four sides and when he spokes it was like the sound of thunder. His massage was like a ray of the sun which dispels the darkness and the minds of all who had assembled there were illuminated.

Figure 1- Kalpsutra, Indra seated, from the national museum New Delhi, 17th century A.D.

Mahavira-

On the night when lord *Mahavira* descended in to the womb of *Devandra*, and as she lay half asleep on her bed, she had fourteen wondrous and lucky dreams auspicious and sublime. She saw an elephant, a bull, a lion, and the lustration of goddess, a garland, the moon, the sun, a flag, an urn, a lout's pound, the sea, a celestial vehicle, a heap of jewels and a burning fire.

Figure 2 Devendra's dream, kalpsutrs, national museum, 14thcentury, A.D.

From the heavenly heights Indra kept watch over earth. Through *Avadhi–Gyan* he noted that *Mahavir* had entered the womb of *Devandra*. He recognized of his event, rose from his throne, place his seamless robe over his left shoulder and with palm folded to form a bud; he took seven or eight steps in the direction of *Mahavira*. He knelt and did obeisance by thrice touching his forehead to the floor, and in reverence praised the *Tirthankara*.

Figure 3 Kings Siddhartha in his court, kalpsutra, national museum, New Delhi 14th century A.D.

Figure 4 Kings receive the news of dream of Trishla, kalpsutra, and 14thcentury A.D.

On the night that *Mahavir*was placed in to the womb of *kshatriyani Trishla*, she saw the same forteen auspicious dreams the *Devandra* had witnessed at the time of *Mahavira's* conception. The exterior of *Trishla's* bed chamber was placed in glamming white and its interior was decorated with murals bathed in a soft glow emanating from the gem studded ceiling. The floor smooth and covered with auspicious signs and diagrams.

Figure 5 Trishla dreams. Kalpsutra National Museum, 14th century A.D.

Mahavira was born at midnight on the thirteen day of the bright half on the month of Chaitra. On the night Mahavira was born, countless Gods and Goddesses glide up and downcreating divineluster everywhere, and hosts of flying gods showered silver, gold Jews and ornaments, leaves flowers and fruits, color and powered perfumes were showered on king Siddhartha's place.

Figure 6 Mahavir seated in Mediation, Kalpsutra, National Museum Delhi 17th century A.D.

Once during his peregrinations, Mahavira was advised to avoid walking through a forest because a fierce serpent named Chandra kaushika lived there. Mahavira undeterred, entered the forest which was desolate with withered trees and dead leaves. While he sat in mediation, the serpent saw him and attacked him, but to no avail.

Finally, in the thirteenth year of his wanderings Mahavira attained ultimate knowledge while meditating under a Sala tree and become omniscient.

Figure -7 Birth of Mahavira, Kalpsutra National Museum Delhi, 14th century A.D.

Parshvnath-

The five important events in the life of *Tirthankra Parshav* occurred when the moon was in conjunction with the constellation visakha. On the fourth day of the dark half of the month of *Chaitra-Parsav* after having spent twenty *Sagaropamasa* in a celestial adobe called pranata – kalp, descended consort of king *Ashvasena* who ruled *Varanasi*. At the time of his conception he was in possession of three out of the five types of knowledge. On the night, *Parsav's* mother saw the fourteen auspicious dreams that come to the mother of every *Tirthankara* at the time of conception. She gave birth to Parsav at midnight on the tenth day of the dark half of the month of *Pause*, and the world was filled with divine lusters caused by the caused by the gods and *Goddesses*. The infant received the name of Parsav because at the time of his conception his mother saw a snake crawling by her side.

Once Parsva came across kamatha engaged in Panchagani Tapas. Through his transcendent knowledge Parsava perceived a family of snakes is one of the logs burning in the fire near Kamatha and freed them. Kamatha was angered and humiliated by this action.

Figure -8 Parsavnanth protected the snake, Kalpsutra, National Museum Delhi, and 14th Century A.D.

At the age of hundred years Parsav berated his last at forenoon on the eight day of the bright fortnight on the month of *Sravana*, atop the summit of mount *Sammeda*, and attained *Moksha*. He was at the time meditating in a posture with uplifted hands.

Figure -9 Parsavnath seated in meditation, kalpsutra, national museum Delhi, 17th centuary A.D.

ISSN 2277-5587

Figure-10 Samavsaran of Parsvnath, kalpsutra, National, Museum, Delhi 17th century A.D.

Figure -11 Neminath in Meditation, Kalpsutra, National museum Delhi, 17th Century A.D.

Aristanemi-

The five important events in the life Aristanemi, also known as Nemi, occurred when the moon was in conjunction with the constellation Citra. He was conceived in the womb of queen shiva, the wife of king Samudravijay who was the chieftain of the city of Sauripura in Gujrat. At the time of his conception his mother envisioned the same fourteen lucky dreams that were seen by all mothers of Tirthankaras. Aristanemi is considered to be cousin of the Hindu God Krishna. Nemi gifted away all his possessions and stepped in to his renunciation seated in palanquin to Uttarakura. Nemi alighted and under a large Ashoka Tree, he shed his clothes and ornaments and plucking his hair in five handfuls, became a homeless mendicant along with a thousand others.

In the image off the Jina from the eastern region of Bengal, Bihar, and Orissa, the depiction of Yakshas, Yakshis, Lion throne, Dharma-Chakra. And musician etc., was not quite popular. By about the tenth century A.D. the practice of carving twenty-three or twenty-four miniatures figure of Jinas was started. Most of the miniatures figures from Bengal are adorned with Lanchans. In such image two, three or even more Jinas are placed at one and the same place.

References:

1. *Nagar Shantilal, Iconography of Jain Deities Vol_2, p.n.420,423 B.R Publishing Corporation, Delhi, 1999*
2. *Hastimal, Jain Dharma ka Maulik Itihas, p.n-46, 47, published by Kundkund Gyan Peeth, 1999.*
3. *Jain, Pannalal, Padampuran, by Ravisenacharya, Murtidevi Jain Granthmala, P.N- 20, Varanasi, 1958.*
4. *Jain, Pannalal, Adipurana, by Jinsenacharya, P.N-22, Delhi 1968.*
5. *Devraj,Doshi,Jain Sahitya ka Brahad Itihas, part-1, P.N-16, Varanasi, 1966*

Overweight and Obesity and their Relation to Socioeconomic Status among School Going Adolescent boys

Shruti Hada
Research Scholar, University of Kota, Kota
Dr. Savita Swami
Lecturer, Govt. Girls P.G. College, Jhalawar

shodhshree@gmail.com

Adolescent obesity is one of the major global health challenges of the 21st Century[4]. Obesity among adolescents causes dual problems: Firstly these are the medical conditions occurs due to the cause of obesity are high blood pressure, adverse lipoprotein profiles, diabetes mellitus, atherosclerotic cerebrovascular disease, coronary heart disease, snoring, colorectal cancer and death. Secondly, obesity occurred during the childhood or adolescence may persist into adulthood, this can cause an increase in the risk for some chronic diseases later in our life[2]. The Harvard Growth Study showed that the risk of being overweight in adulthood is twice as high for people who were overweight as children than for individuals who were not overweight[3]. Obesity is associated with a number of psychosocial consequences in childhood and adolescence, including poor self – esteem teasing[1]. Overweight adolescents are more likely to be socially isolated and to be peripheral to social networks[5].

At present the potential public health issue that is emerging is the increasing incidence of adolescent obesity in developing countries, and the resulting socio-economic and public health burden that will be faced by these countries in the near future. The prevalence is higher in the urban than in the rural areas. Urbanization, industrialization and socio-economic factors are the main culprits for the country to witness the prevalence of overweight and obesity among adolescents. Life style has greatly contributed to obesity among adolescents over the last five years and obese children have been reported to be physically less active, more home bound, spending more time on internet, playing video games and watching TV, as well as having easy access to fast food in urban settings.

A country's wealth and prosperity are seriously and adversely affected when the nation's human resource is neglected. India faces a double burden: people belonging to lower socioeconomics group are predominantly underweight, while those from higher status are obese. Health is a function not only of

medical care but it is the result of socioeconomics, education, consumption and behavioural factors. Therefore, to raise the health status and quality of life, a focused approach integrating all these socio-economic aspects needs to emerge, to bring about the overall transformation of the attitude of society towards obesity and life style diseases.

In recent years there has been considerable interest in describing and explaining socioeconomic variations in the prevalence of weight problems. Across all industrialized nations, groups of high socioeconomic status (SES) were more at risk of becoming obese. On the other hand, low status occupations are likely to involve more physical activity than do high status occupations, particularly in the case of men and this could be protective against obesity. In developing countries, however the level of obesity is greater in the higher socioeconomic status segments of society. Obesity in higher SES group include: the greater capacity of the elite to obtain food, cultural values that favour round body shapes, and lower levels of physical activity. The link between obesity and high SES is translated to the incidence of cardiovascular events. Obesity results from a positive caloric balance in the sense that intake of calories greater than caloric expenditure.

Obesity has reached epidemic proportions globally and is a major contributor o the global burden of chronic disease and disability. Often coexisting in developing countries with under – nutrition, obesity is a complex condition, with serious social and psychological dimensions, affecting virtually all ages and socio-economic groups. SES cannot directly affected overweight and obesity status. Income affect s the level of resources available to families; those who higher incomes have more options in food access and food choices. The study reviews the relationship between socioeconomic status and adolescent overweight and obesity.

Objective-

- To assess the prevalence of overweight and obesity among school going adolescent boys aged 13 – 18.
- To find out the association between overweight and obesity with socioeconomic status.

Methods- The present study was conducted on 450 adolescent boys aged 13 to 18 years in Jhalawar. Six schools were randomly selected by using a random table. A questionnaire schedule was developed and information on the demographic profile age, height and weight was collected by the investigator. Height and weight was measured and BMI was calculated. Overweight and obesity was assessed by BMI for age >85th and <95th percentile of reference population were classified as obese. For assessing the socioeconomic status self made questionnaire about parent's education, occupation and family income was used by using kuppuswamy's socioeconomic scale.

Result- The overall prevalence rates of overweight and obesity were 17.1% and 3.4% respectively. The prevalence of overweight and obesity among adolescents was higher in high SES group. Eating habit like fast food, chocolate, sweets, eating outside in restaurant and physically inactiveness, sleeping habit in afternoon having remarkable effect on prevalence of overweight and obesity among high SES group.

Conclusion- In the context of the present study, it can be presumed that the higher prevalence of overweight and obesity in adolescent boys in Jhalawar, Rajasthan among high SES group. Due to rapid urbanization and life style modification prevalence of obesity among adolescents is also increasing in the developing world like India. Identification of risk factors prevention and management of childhood and adolescent overweight is the key for prevention of obesity and its consequences in adult life. The study

reveals that proportion of overweight and obesity was more among the adolescents who consumed more fast food and sweetened soft drinks. Adolescent's sedentary lifestyle is also associated with overweight and obesity. Large scale nationwide campaigns targeted at these specific groups are required to check the growing epidemic of adolescent's obesity in developing countries.

Suggestions- Impact of socioeconomic background on adolescent overweight and obesity is an unexplored area. A lot needs to be done not only in the form of effective policies but also by targeting specific and need–based strategies. Adolescents have to be viewed and focused upon with almost importance because firstly, it is their human right to achieve the highest attainable level of health. Secondly, a nation gets economic benefits because better prepared and healthy adolescents will result in more productivity.

Many studies conducted in the USA and other advanced countries regarding adolescent obesity reveal the far reaching consequences on their health. India is developing country in human development indices must conduct serious studies on obesity and associated factors leading life style disease.

Such a study of socio-economic factors, and adolescents overweight and obesity will be an eye opener to parents, teachers, adolescents and policy makers towards prevention of life style diseases, because good health is a major factor in our happiness and for an active life.

References:

1. *Jackson TD, Grilo CM, Masheb RM. Teasing- history onset of obesity, Current eating disorder psychopathology, body dissatisfaction, and psychological functioning in bine eating disorder. Obese Res. 2009 ; 8[6]: 451-458.*
2. *Mandal Pankaj Kumar, Kole Seshadri, Mallik Sarmila, Manna Nirmalya, Ghosh Pramit, Dasgupta Samir: Behavioural factors related to overweight and obesity among adolescents: A Cross-sectional study in an urban area of west Bengal, India. SUDANESS JOURNAL OF PUBLIC HEALTH. January 2012, Vol 7 No. 1, Page No. 26.*
3. *Must A, Jacques PF, Dalla GE, Bajerna CJ, Dietz WH. Long-term morbidity and mortality of overweight Adolescents. A Follow – up of the Harvard Growth Study of 1922 to 1935. N Engl J Med. 1992 ; 327[19] : 1350-1355.*
4. *Story M, Sallis JF, Orleans CT. Adolescent Obesity: Towards evidence based policy and environmental solutions. J Adolesc Health. 2009; 45[3 Suppl]:S1.*
5. *Strauss RS, Pollack HA. Social marginalization of overweight children children.Arch pediatr Adolesc Med. 2003 ; 157[8] : 746-752.*

Impact Of Working Capital Management On Profitability: A Study Of Selected Paints Companes In India

Dr. J. B. Patel
Principal, N.C.Bodiwala and Prin.M.C.Desai Commerce College, Tanksal, Kalupur, Ahmedabad (Gujrat)

shodhshree@gmail.com

The concept of working capital management addresses companies' managing of their short-term capital and the goal of the management of working capital is to promote a satisfying liquidity, profitability and shareholders' value. Working capital management is the ability to control effectively and efficiently the current assets and current liabilities in a manner that provides the companies with maximum return on its assets and minimizes payments for its liabilities. This paper investigates the Impact of working capital management on profitability for a sample of 5 paints companies in India for the period of 10 years from 2004 to 2013.

Researchers have approached working capital management in numerous ways. While some studied the impact of proper or optimal inventory management, others studied the management of accounts receivables trying to postulate an optimal way policy that leads to profit maximization. Another component of working capital is accounts payables. Rehman and Nasr [9] state that delaying payment of accounts payable to suppliers allows firms to access the quality of bough products and can be inexpensive and flexible source of financing. Working capital is regarded as the result of the time lag between the expenditure for the purchase of raw material and the collection for the sale of the finished goods.

Review of Literature- Various studies have analyzed the relationship between working capital management and profitability. The results are quite mixed, but a majority of studies conclude a negative relationship between WCM and firm profitability.

Gul, Khan, Rehman, Khan, Khan and Khan [5](2013) investigated the influence of working capital management on performance of small medium enterprises in Pakistan. Results suggested that APP, GROWTH and SIZE have positive association with Profitability whereas ACP, INV, CCC and DR have inverse relation with profitability.

Akoto, Awunyo-Vitor and Angmor [1](2013) analyzed the relationship between working capital management practices and profitability of listed manufacturing firms in Ghana. The study found a significant negative relationship between Profitability and Accounts Receivable Days.

However, the firms' Cash Conversion Cycle, Current Asset Ratio, Size, and Current Asset Turnover significantly positively influence profitability.

Omesa, Maniagi, Musiega and Makori[7] (2013) examined the relationships between Working Capital Management and Corporate Performance. From the results working capital proxies Cash Conversion Cycle, Average Collection Period and control variables Current Liabilities, Net Working Capital Turnover Ratio and Fixed Financial Ratio were significant at 95% confidence to performance as measured by Return on Equity. Further, ACP was found to be negatively related to ROE.

Bhunia and Das [2] (2012) examined the relationship between the working capital management and profitability of Indian private sector small-medium steel companies. The study shows a small relationship between WCM and profitability.

Gakure, Cheluget, Onyango and Keraro[3] (2012) analyzed the relationship between working capital management and performance. The study found that there is a negative coefficient relationship between accounts collection period, average payment period, inventory holding period and profitability while the cash conversion cycle was found to be positively correlated with profitability.

Sharma and Kumar [10] (2011) examined the effect of working capital on profitability of Indian firms. The study analysed that inventory of number of days and numbers of day's accounts payable are negatively correlated with profitability, whereas number of days accounts receivables and cash conversion period exhibit a positive relationship with profitability.

Raheman, Afza, Qayyum and Bodla [8] (2010) analyzed the impact of working capital management on firm's performance in Pakistan. The results indicate that the cash conversion cycle, net trade cycle and inventory turnover in days are significantly affecting the performance of the firms. The financial leverage, sales growth and firm size also had significant effect on the firm's profitability.

Mathuva [6](2010) in his study on the influence of working capital management on corporate profitability found that there exists a highly significant negative relationship between the time it takes for firms to collect cash from their customers and profitability. The study further revealed that there exist a highly significant positive relationship between the inventory conversion period and average payment period with profitability.

Gill, Biger and Mathur [4](2010) analyzed the relationship between working capital management and profitability. They found statistically significant relationship between the cash conversion cycle and profitability.

Although studies on working capital management have been carried out by various scholars, these studies do not provide clear-cut direction of the relationship between working capital and firm's profitability. Therefore, the present study is an attempt to fill this gap and estimates the impact of working capital management on profitability of paints companies in India.

Objectives of the Study- This research is focusing on working capital management and its impact on profitability for a sample of 5 paints companies in India. The objective are --

- To determine the nature and extent the impact of working capital management on profitability.
- To examine the joint impact of different components of working management on profitability.

Research Hypotheses-

- Ho1: There is no significant relationship between Average Collection Period (ACP) and Profitability of the company.
- Ho2: There is no significant relationship between Inventory Conversion Period (ICP) and Profitability of the company.
- Ho3: There is no significant relationship between Average Payment Period (APP) and Profitability of the company.
- Ho4: There is no significant relationship between Cash Conversion Cycle (CCC) and

Profitability of the company.

Research Methodology-

The companies' profitability is modelled as a function of the four core working capital management measures in addition to other firm characteristics. The effects of working capital management on the firm's profitability are modelled using the following OLS regression equations to obtain the estimates:

ROA = f (ACP, ICP, APP, CCC, GROWTH, DR, CR, SIZE)

Model 1: $ROA_{it} = \beta 0 + \beta 1\ GROWTH_{it} + \beta 2\ DR_{it} + \beta 3\ CR_{it} + \beta 4\ SIZE_{it} + \beta\ ACP_{it} + \varepsilon it$

Model 2: $ROA_{it} = \beta 0 + \beta 1\ GROWTH_{it} + \beta 2\ DR_{it} + \beta 3\ CR_{it} + \beta 4\ SIZE_{it} + \beta\ ICP_{it} + \varepsilon it$

Model 3: $ROA_{it} = \beta 0 + \beta 1\ GROWTH_{it} + \beta 2\ DR_{it} + \beta 3\ CR_{it} + \beta 4\ SIZE_{it} + \beta 5\ APP_{it} + \varepsilon it$

Model 4: $ROA_{it} = \beta 0 + \beta 1\ GROWTH_{it} + \beta 2\ DR_{it} + \beta 3\ CR_{it} + \beta 4\ SIZE_{it} + \beta 5\ CCC_{it} + \varepsilon it$

Where, ROA denotes the return on assets, GROWTH is the sales growth, DR is the debt ratio, SIZE is the company size as measured by natural logarithm of total assets, CR is the current ratio, ACP is the average collection period, ICP is the inventory conversion period, APP is the average payment period and CCC is the cash conversion cycle. Subscripts i denote companies (cross-section dimensions) ranging from 1 to 5, t denotes years (time-series dimensions) ranging from 1 to 10, ε is the error term of the model and $\beta 0, \beta 1, \beta 2, \beta 3, \beta 4, \beta 5$=Regression model coefficients.

In the first regression model, the ACP has been regressed against the ROA. In the second regression model, the ICP has been regressed against the ROA. The third regression model involves a regression of the APP against the ROA. In the fourth regression model, the CCC is regressed against the ROA.

Data and Variables-

The data in the present study was acquired from companies' annual reports. The purposive sample design method was applied in this analysis. Preferred samples of 5 Paints companies from the year 2004 to 2013 were applied in this analysis. Total 5 Paints companies were identified for data collection and analysis are mentioned in the Table-1 below.

Table-1: Selected paints companies

Sr. No.	Paints Companies	Date of the Period
1	Akzo Nobel India Limited	2003-04 to 2012-13
2	Berger Paints India Limited	2003-04 to 2012-13
3	Asian Paints Limited	2003-04 to 2012-13
4	Jotun India Pvt.Ltd.	2004 to 2013
5	Shalimar Paints Limited	2003-04 to 2012-13

In order to analyze the impacts of working capital components on the profitability of selected paints companies in India, profitability is measured by Return on Assets (ROA), which is defined as the ratio of earnings before interest and tax to total assets. ROA is used as a dependent variable.

The average collection period (ACP); the inventory conversion period (ICP); the average payment period (APP); and the Cash Conversion Cycle (CCC) are used as the independent variables and are considered for measuring working capital management. ACP is the time taken to collect cash from customers; ICP refers to the time taken to convert inventory held in the companies into sales; APP is the time taken to pay the creditor, while CCC is used as a comprehensive measure of working capital as it shows the time-lag between payment for the purchase of raw material and the collection of sales of finished goods. Apart from these variables, the size of the company, the growth in its sales, company leverage and current ratio are introduced as control variables. I have used these to calculate the relationship between WCM and profitability. Table 2 below presents the variables, abbreviations and their measurements as used in the analysis.

Table-2: Abbreviation and Measurement of Variables

Variable	Abbreviation	Measurement(Profit
Return on Assets	ROI	Before Interest and Tax / Total Assets)*100
Average Collection Period	ACP	(Average Receivable Debtors /Net sales)*365
Inventory Conversion Period	ICP	(Average Inventory / Cost of Sales)*365
Average Payment Period	APP	(Average Payable Creditors/Cost of Sales)*365
Cash Conversion Cycle	CCC	ACP+ICP-APP (Sales1 – Sales0-
Sales Growth	GR	1) / Sales0-1 *100
Debt Ratio	DR	Total Liabilities / Total Assets
Current Ratio	CR	Current Assets / Current Liabilities Ln
Firm Size	SIZE	(Total Assets)

Analysis and results

➢ **Descriptive Statistics-**

Descriptive analysis shows the mean, and standard deviation of the different variables of interest in this study. It also presents the

minimum and maximum values of the variables which help in getting a picture about the maximum and minimum values a variable has achieved.

Table 3: Descriptive Statistics of Variables for Paints companies of in India

	N	Minimum	Maximum	Mean	Std. Deviation
ROA	50	3.20	34.88	15.5362	7.32819
ACP	50	19.87	106.64	53.1958	24.90455
ICP	50	74.89	207.95	100.81	21.66298
APP	50	50.39	232.67	106.04	41.39977
CCC	50	-44.12	127.52	47.9696	41.13736
GR	50	-97.95	78.60	8.6846	27.15522
DR	50	.27	.82	.4922	.17271
CR	50	.48	2.49	1.3616	.52041
SIZE	50	20.78	24.76	22.7018	.96708
Valid N (listwise)	50				

Table 3 presents the summary of descriptive statistics of the variables used in the present study for 50 company years observations were used. The mean value of return on assets (ROA) is 15.54% with a standard deviation of 7.33%. The mean value of (ACP) average accounts collection period is 53 days with a standard deviation of 25 days. On average, companies take 101days to convert their inventories into sales with a standard deviation of 22 days. The table also shows that on average the companies' take 106 days to pay its creditors with a standard deviation of 41 days. The mean cash conversion cycle is 48 days. The companies have seen their sales growth (GR) by almost 8.68% annually on an average. The mean leverage ratio (DR) is 49.22% lagged by total assets. The sample has a current assets ratio of 1.36. Together with this, the table further shows that an average company has a size of 22.70 as measured by the natural logarithm of its total assets.

The credit period granted by companies to their clients ranged at 53 days while they paid their creditors in 106 days on average. Inventory took on average 101 days to be sold. Overall, the average cash conversion cycle at ranged 48 days.

- **Pearson Correlations Analysis-**

The following table-3 provides the Pearson correlation for the variables that we used in the regression model. Pearson's correlation analysis is used for data to find the relationship between working capital management and return on assets.

Table 4: Pearson Bivariate Correlation Coefficients

	ROA	ACP	ICP	APP	CCC	GR	DR	CR	SIZE
ROA	1								
ACP	-.773**	1							
ICP	-.488**	.618**	1						
APP	-.587**	.487**	.431**	1					
CCC	-.133	.441**	.466**	-.484**	1				
GR	.114	-.224	-.300*	-.057	-.236	1			
DR	-.211	.464**	.495**	.460**	.079	.149	1		
CR	-.043	-.035	.298*	-.088	.225	.131	.438**	1	
SIZE	.695**	-.809**	-.629**	-.353*	-.466**	.259	-.485**	-.302*	1

Source: SPSS output

**. Correlation is significant at the 0.01 level (2-tailed)

*. Correlation is significant at the 0.05 level (2-tailed).

We found that ROA is negatively significantly correlated with the ACP, ICP and APP. The negative significant correlation between ROA and ACP indicates that if the average collection period increases it will have a negative impact on profitability. It consistent with the view that the less the time taken by customers to pay their bills, the more cash is available to replenish the inventory hence leading to more sales which result to an increase in profitability.

The negative significant correlation between ROA and ICP indicates that if the average inventory conversion period increases it will have a negative impact on profitability. It consistent with the views that the less time taken in inventory conversion hence leading to more sales which results to an increase in profitability.

The negative significant correlation between ROA and APP indicates that if the average payment period increases it will have also a negative impact on profitability. It can be explained by the fact that in time payment to suppliers ensures that the firm has purchases the raw materials at discount rate or at reasonable rate. It hence is

boosting its profits.

Further, Firm SIZE is positively significantly related to ROA which means that larger firms report higher profits compared to smaller firms. This may be due to larger firm's ability to exploit the economies of scale.

The correlation coefficients of Average Collection Period, Inventory Conversion Period, Average Payment Period and Company Size are significant while the correlation coefficients of Cash Conversion Cycle, Sales Growth, Company Debt Ratio (Leverage) and Current Ratio are not significant.

➢ **Regression-**

In order to test the hypotheses, pooled OLS regression analysis has been conducted to determine the whether there is significant relationship of working capital management and profitability. Results in Table 4 provide results for the models tested in the present study.

Table 5: Regression Results

Parameter	Model 1	Model 2	Model 3	Model 4
Constant	(.708)	(.000)***	(.000)***	(.000)***
ACP	-.801(.000)***			
ICP		-.238(.095)*		
APP		-.215(.067)*	-.538(.000)***	
CCC				.252(.032)**
GR	-.155(.106)		-.174(.051)*	-.129(.235)
DR	.349(.004)**	.230(.090)*	.444(.000)***	.214(.095)*
CR	-.139(.240)	.188(.100)*	-.034(.728)	.122(.279)
SIZE	.214(.243)	.770(.000)***	.756(.000)***	.987(.000)***
Adjusted R Square	0.647	0.521	0.699	0.541
F Value	18.948*** (.000)	11.675*** (.000)	23.756*** (.000)	12.546*** (.000)
Firm Year	50	50	50	50

Source : SPSSoutput

Dependent Variable: Return on Assets (ROA)

*, ** and *** Denotes significance level at 10%, 5 and 1% levels, respectively

Model 1 tests the hypothesis that there is no significant relationship between Average Collection Period and profitability. The regression results indicates a significantly negative relation between ROA and ACP (p-value =0.000). Thus, Ho1 hypothesis is rejected and is concluded that ACP is statistically significant at 1% significance level (p<0.01).

This suggests that, though short ACP is good for explaining the financial success of Paints companies in India. The result is consistent with Akoto, et al, (1) (2013), Gul, et al (5) (2013), Gakure, et al, [3] (2012); and Mathuva [6] (2010), which found a significant negative relationship between average collection period and profitability. However, the overall model is statistically significant, as it is indicated by the F-value of 18.948 (p<0.01). The model's adjusted R Square implies that 64.72% of the variation in the profitability of the firms can be explained by the model. The regression results also indicates that the significantly relation between Return on Assets with debt ratio.

Model 2 tests the hypothesis that there is a no significant relationship between Inventory Conversion Period and profitability ROA. In this model, there are variables are the similar to those in Model 1 except ACP which has been replaced with ICP. The regression result shows a significant negative relation between ROA and ICP (p-value = 0.095). Thus, Ho2 hypothesis is rejected and is concluded that ICP is statistically significant (p<0.10). This means that there exists a negative significant relationship between the ICP and profitability. This finding is consistent with studies carried out on conservative working capital policies Gul, et al (5) (2013), Gakure, et al (3) (2012) and Sharma, et al, (10) (2011).

This means that maintaining inventory at minimum levels. Maintaining minimum levels of inventories also helps in reducing the cost of supplying the products and protects the company against price fluctuations as a result of adverse macroeconomic factors. The other variables in model 2 are also significant. The model's adjusted R Square is 52.1% with an F-value of 11.675 which is highly significant (p<0.01).

Model 3 tests the hypothesis that there is a no significant relationship between Average Payment Period and Profitability. The coefficient

of APP shows a very significant negative relation between ROA and APP. Ho3 hypothesis is rejected and is concluded that APP is statistically significant ($p<0.01$). The result is consistent with Gakure, et al, (3) (2012) and Sharma, et al, (10) (2011). Result found a significant relationship between average collection period and profitability. This suggests that, an increase in the number of day's accounts payable by 1 day is associated with a decrease in profitability. The other variables in the model except current ratio are significant. The model's adjusted R Square is 69.9.0% with an F-value of 23.756 which is highly significant ($p<0.01$).

Model 4 tests the hypothesis that there is a no significant relationship between Cash Conversion Cycle and profitability. The regression coefficient indicates a significant positive relation between CCC and ROA Ho3 hypothesis is rejected and is concluded that CCC is statistically significant ($p<0.5$). The result is consistent with Akoto, et al, (1) (2013), Omesa, et al,[7] (2013), Gakure, et al, (3) (2012); Sharma, et al, (10) (2011), Raheman,et al.[8] (2010) and Gill, et al (4) (2010). This supports the notion that the cash conversion cycle is positively related with profitability. The other variables in the model are also statistically significant except current ratio and sales growth. The model's adjusted R Square is 54.1% with an F-value of 12.546 which is highly significant ($p<0.01$).

- **Conclusion-**

Most of the Indian Paints Companies have large amounts of cash invested in working capital. Therefore, it can be expected that the way in which working capital is managed will have a significant impact on profitability of those companies. The study found out existence of significant negative correlation between Return on Assets and average collection period, inventory conversion period, average payment period. The study also found out positive significant correlation between Return on Assets and cash conversion cycle. These results suggest that managements can create value for their shareholders by reducing the number of day's accounts receivable, inventory conversion period and the accounts payment period.

The results shows that for selected paints companies in India, Working Capital Management has a significant impact on profitability of the companies and plays a key role in value creation for shareholders as short average collection period, inventory conversion period, average payment period except cash conversion cycle have positive impact on Profitability of a company.

The negative association of Average Collection Period, Inventory Conversion Period, Average Payment Period with Return on Assets and positive association of Cash Conversion Cycle with Return on Assets, a measure of profitability, help the management in setting credit policy for the paints company in India. The study recommends a short credit period for the company and customers realize higher profitability.

References:

1. *Akoto, R.K., Awunyo-Vitor, D., & Angmor, P.L. (2013). Working capital management and profitability: Evidence from Ghanaian listed manufacturing firms. Journal of Economics and International Finance, 5(9), 373-379.*
2. *Bhunia A, Das A. (2012) Affiliation between Working Capital Management and Profitability. Interdisciplinary Journal of Contemporary Research in Business. 2012; 3(9):957-968.*
3. *Gakure, R., Cheluget, K.J. Onyango, J.A, & Keraro, V. (2012). Working capital management and profitability of manufacturing firms listed at the Nairobi stock exchange. Prime Journal of Business Administration and Management (BAM), 2(9), 680-686.*
4. *Gill, A., Biger, N., & Mathur, N. (2010). The relationship between working capital management*

and profitability: Evidence from the United States. Business and Economics Journal, 4 (2), 1-9.

5. Gul, S., Khan, M. B., Raheman, S.U., Khan, M.T., Khan, M., & Khan, W. (2013). Working capital management and performance of SME sector. European Journal of Business and management, 5(1), 60-68.
6. Mathuva, D.M. (2010). Influence of working capital management components on corporate profitability: A survey on Kenyan listed firms. Research Journal of Business Management 3 (1), 1-11.
7. Omesa, N. W., Maniagi, G. M., Musiega, D., & Makori, G.A. (2013). Working capital management and corporate performance: Special reference to manufacturing firms on Nairobi Securities Exchange. International Journal of Innovative Research and Development, 2(9), 177-183.
8. Raheman, A., Afza, T., Qayyum, A., & Bodla, M.A. (2010). Working Capital Management and Corporate Performance of Manufacturing Sector in Pakistan. International Research Journal of Finance and Economics, Issue 47, 151-163.
9. Raheman, A., & Nasr, M. (2007). Working capital management and profitability case of Pakistan firms. International Review of Business Research Papers, 3 (1), 279-300.
10. Sharma, A.K., & Kumar, S. (2011). Effect of working capital management on firm profitability: Empirical evidence from India. Global Business Review, 12 (1) 159-173.

An Overview Of Talent Management

Dr. Aditi Jain
Assistant Professor,
The IIS University, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Do you think attracting your competitor's best employee for some extra bucks is everyone's cup of tea. Seems easy to talk but the case is not so. Targeting the people and then finally hiring them is the test of your competencies, experience. However, it is a non-stop course of action which requires continuous effort. And that is where talent management concept comes into picture.

Talent Management, is managing the abilities, competencies and power of the employees within an organization. It is not just restricted to put the right candidate at the right time and at the right place but it extends to explore the unidentified qualities of your employees and the development and nurturing of the same to get the desired results. We all know that it is people who take the organization to the next level. It is to be remembered that placing a person at a wrong place can add to your problems regardless of the qualifications, skills and abilities of that person. Some organizations may say that the whole process is very unethical especially who are at the giving end (who loses their high-worth employee). But in this competitive era where survival in the market is a big question mark, the whole concept sounds fair. Every organization requires the top talent to survive and remain ahead of the competitors. Talent is the most important factor that drives an organization and takes it to the higher echelons, and therefore, it cannot be compromised at any cost.

Drivers Of The Fuelling Talent Management-

There are several drivers fuelling this emphasis-

- **Relationship between the better talent and better business performance-** Increasingly, the organizations seek to quantify the returns on their investment in talent. The result is a body of "proof" that shows the impact talent has on business performance. *(Wellins, R.S., Smith, A.B and Erker,S.,2010)*
- **Talent is a source of value creation in organizations-** The value of the companies often depends upon the quality of talent.
- **Business is more complex and dynamic nowadays-** New products and the new business models—have shorter life cycles, demanding constant change from time to time. Technology also enables greater access to information and forces us to move "at the speed of business".
- **Boards and financial markets are expecting more and more-** Boards

and investors are nowadays putting the senior leaders under a microscope, expecting them to create more and more value. This pressure is mostly visible at the CEO level but generally felt up and down the organisation chart. This drives a growing emphasis on the quality of talent at all the levels from bottom to top.

- **Changing employee expectations-** This forces the organizations to place a greater emphasis on the talent management strategies and practices. *(Wellins, R.S., Smith, A.B and Erker,S.,2010)*

  Employees today are-

  1. Increasingly interested in having a more challenging and meaningful work.
  2. More loyal to the profession they are in than to their organization.
  3. More concerned about the work-life balance to which they place a high importance.

Current Trends- Talent management is a critical HR activity and it is evolving every day. Let's analyze some trends in the same:

- **Talent War-** To find and retain the best talent is the most difficult aspect of Human Resource management in any organization. There is a dearth of talented employees in the organisation. Further research also shows that there is a clear link between talent issues and the overall productivity. *(Frank ,F.D. and Taylor, C.,2004)*
- **Technology and Talent Management-** Technology is increasingly getting introduced and is helping employees to manage their careers through online employee portals which offers an easy access to the various employee benefits and schemes.
- **Promotion of the internal talent-** An individual is employed, when a fit is found between his abilities or skills and the requirements of any organization. The next step is enabling learning, developing and nurturing of the same so that he/she stays back with the organization. This is what we call employee retention. It is also of interest to the organizations to know the skills inventories they possess and then develop the right individual for succession planning internally. (***Joerres,J and Turcq,D.2007***)
- **Population Worries Globally-** World populations are either young or ageing and thus it is a disturbing factor for people managers.
- **Quality rather than quantity-** HR has been compelled to focus on the qualitative aspects more than the quantitative aspects like the number of people etc. Through talent management now more effort is being put on designing and maintaining the scorecards of the employees and their surveys for ensuring that talent is nurtured and grown perpetually.

Challenges-

- **To train and develop Talent-** This is altogether a new challenge to talent management, as to how to train and develop the people who work on a contractual or project basis.
- **To Retain Talent-** While organizations focus on reducing employee overheads and firing those who are not essential in the shorter span of time, it also spreads waves of de motivation among those people who are retained. It becomes therefore important to maintain a psychological contract with both: the employees who have been fired as well as those who have been retained back. Investing on the development of the workforce in crisis is the best thing an organization can do to retain its people especially the top talent. *(Julia, C. H.& Rog, E.,2008)*
- **To Develop Leadership Talent-** Leadership means an ability to take out of the crisis, extract certainty out of uncertainty and set such goals and drive change so that it is ensured that the momentum is not lost. Identifying the people from the existing workforce who should be invested upon is a critical talent management challenge.
- **To Create Ethical Culture-** Setting standards for the ethical behaviour, reducing complexities, increasing transparency and developing a culture of reward, appreciation and recognition are still more challenges and opportunities for talent management. *(Stewart J.,2009)*
- **Greater Stress on Upgrading Internal**

Talent- Re-train the existing employees and upgrade their skills to match with the latest tools and technologies is at an all-time high. Employees have also realized that unless they upgrade their learning, there is very little chance of surviving in competition against fresh talent that is available at a much cheaper cost and is equipped with the latest knowledge. Today, the companies are also willing to retain their existing employees with proven loyalty and experience, as long as they wish to rise up to the new challenges of a global economy.

- **Managing the Outsourcing Challenges**- One of the burning current issues in talent management is the rising phenomenon of outsourcing of local jobs and hiring of cheaper employees from the developing world in order to survive and compete in a tough global economy. There is a need to maintain a very delicate balance between hiring of foreign workers at lower costs and providing sufficient opportunities for local talent. Outsourcing appears to be a compulsion of the current times and organizations must find innovative ways to cut down their costs without discouraging or downsizing local talent. This requires a combined effort in skill enhancement and achieving higher productivity to justify the preference of local talent over offshore talent.

Benefits-

- **Right Person in the Right Job**- The placing of right person in the right job gains a strategic agenda in any organization. The skill or competency analysis allows you to take stock of the skill inventories lying within the organization. This is especially required both for the organization as well as the employee. Also since there is a good match between an individual's interests and his job profile the level of the job satisfaction is increased.
- **Top talent retention**- Attrition rate being higher remains one of the major concerns of any organization. Retaining the top talent is important to the organisations and those who fail to retain them are at the risk of losing out to their competitors in the market. The focus is now on having employee retention programs and strategies for people in the organizations to recruit, develop, retain and engage them. *(Stewart J.,2009)*
- **Better Hiring**- The quality that an organization possess lies in the quality of the workforce that it actually possesses. The best way to have talent at the top is to have talent at the bottom level of the organization. No wonder that the various talent management programs and trainings and many such things have become an important aspect of HR processes of organizations nowadays.
- **Understanding Employees Better**- Continuous assessments of employees give deep insights to the management about them. Various things regarding the employees need to be known like their needs of development, the career aspirations, the strengths and the weaknesses, abilities, likes and the dislikes. It is therefore easier to determine what is that which motivates the employees and this helps a lot in the job enrichment process.
- **Professional development decisions**- When an organization knows who all its high potential are, it becomes quite easy for it to invest in their professional development. Since the development calls for the investment decisions towards the learning, training and development of the person either for growth, performance management, succession planning etc., an organization remains worried regarding where to make this investment and there is where talent management just make it easier for them. *(Stewart J.,2009)*

If employees are having faith in the talent management practices of the organization, it is always good for the organization as this results of in a workforce which is more committed and determined to outperform their competitors and ensure a leadership position for their organization in the market.

Talent Management Best Practices In The Global Era-

Every organization struggles hard to meet the global market competition for its success, and hence there is a war for Talent. Creating and enriching the workplace experiences to attract and retain the high calibre people is required.

Therefore, it is important for the organizations to put retention as its first priority and recruitment as second. There are several key practices to be followed by organizations. They are as follows:

- **Experience based learning-** Most of the organizations define Job Description to their employees very briefly and they have no access with others, which makes their work boring and monotonous. If the organizations give them some time free and have exposure to innovative things, they will give increased output, as well as retention would be there.

  The Swift in Workforce- Today's biggest challenge lies in matching the right people and the right skills and identifying the competencies of the workforce. There is a need in organizations to foresee the current workforce and see how would they be helpful in future with the new plans.
- **Developing Business Leaders-** Developing the leaders with a shared vision can empower the workforce in the organizations.
- **Employee feedback is an effective tool-** Organizations have to emphasize on the feedback they get from the employee about various aspects of the organizations, like the corporate culture, the work environment, training programs from time to time, compensation and supervision, etc. These feedback surveys offer an invaluable insight into the employee attitudes and opinions that can ultimately affect employee retention in the organization.
- **Interaction with the management is imperative-** Involving the top management is required for effective talent management practices in the organization at the strategic level. (*Lockwood and Nancy, R.2005)*
- **True value of HR is Return on Investment (ROI)-** ROI allows to calculate the payback period and can be used to revolutionize and transform the human resource function in order to bring more value to the organization.
- **Creation of Teams of Businesses with the HR and IT employees who own and manage the talent management processes-** These teams are involved over a period of years to make sure that the processes are properly refined, managed, measured and improved from time to time as per the market norms. (*Lockwood and Nancy, R.2005)*

The present economy is a different place from the aged one and requires a shift in value systems to become accustomed. To deal with this change , it is important for the organizations to develop adequate and appropriate plans and put in efforts to attract the best pool of available candidates, and also to nurture and retain the current employees.

References:

1. *Wellins, R.S., Smith, A.B and Erker,S.,2010, White Paper- Nine Best Practices For Effective Talent Management.*
2. *Frank ,F.D. and Taylor, C.2004.Talent management: Trends that will shape the future HR.Human Resource Planning,vol.27,(1):33-41.*
3. *Joerres,J and Turcq,D.2007.Talent value management, Industrial Management,vol.4:8-13.*
4. *Julia, C.H. & Rog, E.2008.Talent Management: A strategy for improving employee recruitment, retention and engagement within hospitality organizations. International Journal of Contemporary Hospitality Management, vol.20(7): 743-757.*
5. *Stewart J.,2009. Developing Skills Through Talent Management, SSDA Catalyst, Issue 6.*
6. *Lockwood and Nancy, R.2005.Talent Management: driver for organizational success, HR Magazine, vol.5(2).*

A Study Of Primary School Teachers Of District Hamirpur Of Himachal Pradesh Regarding Awareness About Right To Education Act, 2009

Dr. Pardeep Singh Dehal
Assistant Professor, ICDEOL, HPU – Shimla (Himachal Pradesh)

shodhshree@gmail.com

Knowledge is power and the gateway of knowledge is education. The development of the country can never be possible without ensuring the spread of education among the masses. Education is the investment in human capital. Thus for universalisation of elementary education ,Indian government has taken a landmark initiative to educate children as a compulsion for basic education by passing the RTE Act,2009 Article one of the declaration of General Assembly of United Nations says that all human beings are born free and equal in dignity and rights. They are endowed with reasons and conscience and should act towards one another in a spirit of brotherhood. It has been recognized and got its due importance after a series of global human treaties. Prominent amongst them are: Convention against Discrimination in Education in 1960 by UNESCO, the Convention on the elimination of all forms of discrimination against women (1981). The Right to Education Act, 2009 is a very recent Act. Adoption of Universal declaration of human right in 1984 paved the way for education to be formally recognized as the human rights. Present study has been designed to explore the status of awareness among primary school teachers towards providing free and compulsory elementary education to the children aging between six to fourteen years of Himachal Pradesh. With a vision to make education accessible to everyone, Govt. of Himachal Pradesh enacted the Himachal Pradesh Right to free and compulsory education rule, 2009 and published in the Gazette on 5th March, 2011 vide its notification EDN-C-F(10)-8/09. With a vision to make education accessible to everyone, Govt. of Himachal Pradesh enacted the Himachal Pradesh Right to free and compulsory education rule, 2009 and published in the Gazette on 5th March, 2011 vide its notification EDN-C-F(10)-8/09.In order to know how successfully the rule is being understood and implemented at the operational level i.e.at teacher level, the investigator has made this initial attempt to understand operational efficiency and preparedness of the teachers.

Objectives of the Study-

The objectives of the present study are given below:

- To find out the level of awareness on RTE Act among primary school teachers of Himachal Pradesh.
- To find out the significant difference in the awareness of Primary school teachers working in rural and urban areas towards Right to Education act, 2009.
- To give suggestions for improving the level of awareness on RTE among primary school teachers.

Hypothesis of the Study-

The following hypothesis was formulated for the present study:

- All primary teachers are aware about Right to Education Act, 2009.
- There is no significant difference in the awareness of primary school teachers working in rural and urban areas towards RTE Act, 2009.

Delimitation of the Study-

The investigator delimited the study with respect to the following:

- The study was confined to Hamirpur district of Himachal Pradesh only.
- The study involves the knowledge and understanding of primary school teachers with respect to Right to Education Act, 2009.

Sample- All the Primary school teachers which include J.B.T's; Primary Assistant Teachers and Gramin Vidya Upasaks of Hamirpur District of Himachal Pradesh were considered as the population of the study. A sample of 200 teachers was selected by multistage random sampling method. At the first stage 50 Govt. schools were selected by systematic random sampling method from the list issued from the office of the Dy. Director of Elementary Education, Hamirpur, district Hamirpur. Then two teachers from each school were selected conveniently by the researcher and total 100 male and 100 female teachers were taken as sample.

Method Used- In the present study Descriptive Research Method has been used. Descriptive research studies are designed to obtain information about the current status phenomenon. Further the investigator preferred normative survey method to collect data from the primary school teachers and the investigator employed simple random sampling technique in order to collect data from the teachers.

Tool Used- A self prepared questionnaire which contains 19 items dealing with knowledge, understanding about Right to Education Act. Out of these 19 questions, 8 questions are based on agree/ disagree type and rest are of multiple choices. The face and content validity were duly ensured here.

Statistical Technique used- In order to analyze the obtained data the researcher used Mean and Standard Deviation for applying 't' test to find the significant difference between government and private primary school teachers.

Analysis and Interpretation-

The data analyzed and interpreted and is shown in the Table no. 1 given as follows.

('t' values showing significance of difference in RTE awareness among rural and urban school teachers)

Sr. No.	Variables	N	Mean	df	Mean diff.	SD	t'value
1	Rural area teacher	100	0.823	198	0.0005	0.1815	0.0055
2	Urban area teacher	100	0.823			0.177	

From the above table it is evident that the computed 't' value is -0.0055 for df 198 which is significantly lower than the 't' table value 1.65 at 0.05 level of significance. Hence , it may be interpreted that the Rural and Urban Primary School Teachers do not differ significantly from each other in their awareness towards Right to Education act,2009.Hence,Hypothesis 2, There is no significant difference in the awareness of

Primary School Teachers working in rural and urban areas towards Right to Education Act,2009.is retained.

Results-

The results pertaining to different responses on level of awareness about RTE Act, 2009 are as follows

Date of notification of the act-

Only78%teachers reflected correctly to this statement while 22%were unaware of this historical day in Indian Education history. This shows an indifferent attitude of the teachers towards happenings around.

Procedure for admission in the school- Only 93%teachers were aware of the provision kept under section 14(2) which envisages that No child shall be denied admission in a school for the lack of age proof. Regarding time of admission only 51.5% teachers were in agreement that a child can be admitted in a school at any time which is explained Section 15 of RTE Act , 2009.43.5% teachers were of the opinion that such admissions should not happen while 5% of teachers were not aware regarding the admission time . When it comes to demographic variables there is a difference in the awareness level of teachers which is explained below:-

Age Proof- The awareness level of teachers posted in Rural and Urban areas of Hamirpur district is 88% and 96% respectively. Result show that teachers working in rural areas have a low awareness in comparison to teachers of Urban Areas.

Time of Admission- When it comes to the location of school only 52% and 51% teachers of rural and urban area were aware of the provision of the Act.

Screening Procedure for Admission in Elementary Classes- All teachers were in agreement that there should not be any screening for the admission in elementary classes. Hence , they were aware of the section 13(1) and 13(2)(b) which says that No school or person shall ,while admitting a child collect any capitation and subject the child or his parents or guardians to any screening procedure.

Admission to Age Appropriate class- 93.5% teachers were aware of the section 4 of RTE Act, 2009 which explains that where a child above six years has not been admitted in any school or though admitted, could not complete his or her elementary education, then he or she shall be admitted in a class appropriate to his or her age. Demographic variables have significant difference as explained below:-The level of awareness in teachers working in rural and urban areas is 90% and 97% respectively. Result shows that urban area teachers are more aware than rural area teachers with regards to section 4 of this Act.

Responsibilities of a School- The school is responsible for the holistic development of the child. It shall also implement the RTE Act , 2009 in letter and spirit. All child entitlements are to be taken care of by the school only. Hence awareness of teachers on responsibilities of school is discussed below:-

- **Reservation in private Unaided Schools-** According to Chapter 4 of the Act, 'Responsibilities of School and Teachers' under section 12(1)to (3) and 1(a) to 1(c) . Private school shall admit 25% of the total strength of the class, children belonging to the weaker section and disadvantaged group. 99.5% teachers were aware of this provision.
- **Wastage and Stagnation-** Section 16 of the Act explain that 'No child admitted in a school shall be held back in any class or expelled from school *till the completion of elementary education .Cent percent teachers were aware of this provision.*
- **School Management Committee-** 100% teachers were aware of the function of Management committee which is a provision in the Act under Section 21(2. Demographic variables did not affect the awareness level of teachers.
- **Evaluation Procedure-**

100% teachers were aware of the provision kept under Section 29(2)(h) and 30(1) explains that the procedure for evaluating child's understanding must be comprehensive and continuous and no child shall be required to pass any board examination till completion of elementary education.

- **Responsibility of an Appropriate Government Teacher Vacancies-**
  Section 26 of this Act explains the vacancies of teachers in an academic year shall not exceed 10%. Almost 91% teachers were aware of this provision.Rural and urban area had an effect on the awareness level of teachers which was 89% and 92% respectively.
- **People Teacher Ratio-**
  Section 25(1) explains that at primary level the PTR should be 1:30. Only 87% teachers were in agreement in this provision. Other 13% teachers either denied it or they were not aware of this provision. Demographic variables had negligible effect on awareness of the teacher but interestingly the percentage of female teachers is more in comparison to the male.
- **Training of Untrained Teachers-**
  Only 65.5% teachers could answer this question correctly. There is a provision in section 23(2) that the appropriate government shall make arrangement for the training of teachers who does not possess minimum qualification with in a time frame of five years. Almost 34% teachers were unaware of this provision. The demographic variables that significant effect on awareness level as explained below-

a) 61% teachers serving in Rural area and 70% teachers serving in Urban area were aware of the provision. There is a difference of 9% which is quite significant.

- **Authority responsible for Curriculum and Evaluation Framework-**
  Section 29(1) of this Act explains this regarding setting of an Academic Authority which will be responsible for laying down the curriculum and procedure for evaluation of Child's understanding. Astonishingly, only `13% of the teachers were aware about this. Other 47.5% and 39.5% teachers responded that either the Department of Education or Board of School Education was responsible respectively. Demographic variables had negligible effect on the awareness regarding this provision.
- **Second Shift School for Children-**
  Alarmingly, only 2% of the teachers responded that there should be no second shift school. 98% of the teachers were in conformation that they can be accommodated in a second shift school. Demographics had an effect on the awareness of teachers for this provision.

Overall, 82.29% primary teachers of Hamirpur district of Himachal Pradesh are aware of the RTE Act and its provision. Rest 18% needs an early intervention by the School and the Appropriate Authority.

So on the basis of results and their interpretations, the investigator arrived on the conclusion that male and female primary school teachers do not differ significantly from each other in their awareness towards Right to Education Act, 2009.

Discussion- The study will serve as basis data for the research scholars who are conduction research related to RTE Act, 2009 and it emphasized the need to organize seminars, in-service teacher training programmes (workshop, refresher course) for school teachers to generate awareness. The findings of the present study is very useful for educational planners as the study can serve as basis for planning different programmes for creating awareness among teachers regarding RTE Act,2009 and other programmes. By acquiring the knowledge about RTE the teachers may be made able to contribute

towards the fulfillment of the goal of compulsory and free education. Workshops and seminars should be conducted at school level to improve the awareness among school teachers and literature should be provided in the mother tongue so that they read and understand the Right to Education Act and work for its proper implementation.

References:

1. *Aarti Dhar (1April2010)-Education is a fundamental right now: The Hindu ,Cambridge Learner's Dictionary.*
2. *Aggarwa, Y.P. (1988)- "Research in Emerging Fields of Education : Concepts, Trends and prospects".Sterling Publishers Pvt. Limited , New Delhi.*
3. *Kumar, Krishna(2004)-Quality of Education at the beginning of the 21st century: lessons from India. Background paper prepared for the Education for All Global Monitoring Report 2005.*
4. *NCPCR (2010)-"Main Features of the Right of Children to Free and Compulsory Education Act,2009", New Delhi.*
5. *Right to Education Model Rules 2010.*
6. *The Gazette of India (2009)-The Right to Education Act -2009, New Delhi ,Cambridge Learner's Dictionary.*
7. *The Right of Children to free and compulsory Education Act ,2009. Clarification on Provisions , available at http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/RTE_Section_wise_rationale_rev_0.pdf*
8. *Koul ,Lokesh,Methodology of Educational Research, Vikash Publishing House Pvt.Ltd.,2004.*
9. *WEBSITES:*
10. *www.wikipedia.org*
11. *www.actionadindia.org*
12. *www.educationforallinindia*
13. *www.un.org/right*
14. *www.himachal.nic.in/ssa*
15. *www.isca.in*

Blended Learning : Need of the Hour

Dr. Shailendra K. Verma
Assistant Professor,
Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi (Uttar Pradesh)

shodhshree@gmail.com

In the past decade online learning has become an increasingly important component of our education system. Online programs evolved from traditional distance learning programs and represent the latest evolution in distance learning, from the days of the correspondence course, to video courses and real-time two-way video, and now to more convenient and efficient online delivery. The advantage to online learning over these other channels is its combination of rich student-teacher-peer communication and interaction, either synchronous or asynchronous, and robust personalized teaching within instructor-led courses. During the same period, teachers in physical schools have increased their use of Internet-based content and resources in their classrooms. This evolution has often been driven by a small number of tech-savvy teachers and technology coordinators seeking new ways to provide enriching content and to extend learning beyond the walls of the school and the confines of the school day. These efforts are usually not a formal stand-alone program or school, and often build on the computer based instructional materials that pre-date widespread adoption of the Internet. However, the spread of the Internet has greatly increased the quality of digital classroom resources and has spurred the creation of district-level programs that blend online learning and face-to-face instruction.

In recent years many of these programs have been incorporating online content from providers because fully online distance learning programs developed in a different place and with different methods than the use of Internet resources in physical schools, the blending of online programs and the classroom setting has been relatively slow to develop in education. However, emerging models in other countries, such as Singapore and Australia, as well as in higher education, suggest that a large part of the future of education will involve providing content, resources, and instruction both digitally and face-to-face in the same classroom.

This blended approach combines the best elements of online and face-to-face learning. It is likely to emerge as the predominant model of the future — and to become far more common than either one alone. Fully online schools meet an important and growing demand for courses and programs otherwise not available, and the growth and popularity of such programs show no signs of

slowing. Though online learning programs will continue to grow, it seems likely that the percentage of the student population seeking a fully distance-based education will remain relatively low (although likely much higher than the percentage of students now in fully online programs, given current growth of these schools).At the same time, in an age when information and communications technology skills are so critical, and so much collaboration, resource sharing, content development and learning are done digitally, asynchronously, and at a distance, it is unlikely that student learning will continue to be based solely on print textbooks and face-to-face classes conducted in 50-minute increments. Most educators, parents, and policymakers think of "online learning" as a subset of distance learning (where the students and teacher are geographically separate), in which content delivery and communication are achieved primarily through the use of computers connected by the Internet. However, online learning can be either distance learning or blended learning, with both supported by a new, robust instructional approach that takes advantage of the best elements of both settings. The advent of learning that combines online and face-to-face delivery is not merely a theory — it is already being developed and implemented by schools throughout the country and the world, and in some cases has been underway for several years. While some schools call this method of teaching "blended," others call it "hybrid," and others don't bother naming it — they're just implementing an approach that they believe is helping their students.

Meaning of Blended Learning-

Blended learning means many things to many people, even within our relatively small online learning community. It is referred to as both blended and hybrid learning, with little or no difference in the meaning of the terms among most educators. In general terms, blended learning combines online delivery of educational content with the best features of classroom interaction and live instruction to personalize learning, allow thoughtful reflection, and differentiate instruction from student to student across a diverse group of learners. The integration of face-to-face and online learning to help enhance the classroom experience and extend learning through the innovative use of information and communications technology. Blended strategies enhance student engagement and learning through online activities to the course curriculum, and improve effectiveness and efficiencies by reducing lecture time.

Blended learning may be defined as "A course that blends online and face-to-face delivery. Substantial proportion of the content is delivered online, typically uses online discussions, and typically has some face-to-face meetings. The combination of multiple approaches to learning. Blended learning can be accomplished through the use of 'blended' virtual and physical resources".

Ultimately, the exact definition of blended learning, beyond some combination of online and face-to- face, may not matter. Along these lines, Dziuban, Hartman and Moskal (2004) in a research brief for EDUCAUSE titled "Blended Learning" noted: "Blended learning should be viewed as a pedagogical approach that combines the effectiveness and socialization opportunities of the classroom with the technologically enhanced active learning possibilities of the online environment, rather than a ratio of delivery modalities. In other words, blended learning should be approached not merely as a temporal construct, but rather as a fundamental redesign of the instructional model with the characteristics like a shift from lecture- to student-centred instruction in which students become active and interactive learners (this shift should apply to the entire course, including face-to-face contact sessions); Increases in interaction between student-instructor, student-student, student-content, and student-outside resources; Integrated formative and summative assessment mechanisms for students and instructor.

Most importantly, in this view, blended learning represents a shift in instructional strategy. Just as online learning represents a fundamental shift in the delivery and instructional model of distance learning, blended learning offers the possibility to significantly change how teachers and administrators view online learning in the face-to-face setting. The widespread adoption and availability of digital learning technologies has

led to increased levels of integration of computer mediated instructional elements into the traditional F2F (face to face) learning experience, Regardless of the exact definition of blended learning, a growing number of online schools and programs are combining online teaching and face-to-face instruction in some way. The blending may be at the course level, combining both online and non-online instruction within one subject.

The blending may be at the institutional level, for example online schools gathering their students on a regular, scheduled basis, with the teacher physically present or remaining at a distance. Finally, some students are taking one or more fully online courses and attending a traditional classroom for one or more face-to-face courses, another type of blended model. This last approach applies to most of the state-led supplemental online programs such as Michigan Virtual School and Colorado Online Learning, as well as some district programs such as the Hamilton County Virtual School, and some consortium programs such as the Massachusetts-based Virtual High School.

The examples that follow demonstrate that blended learning defines a major segment of a continuum between fully online, at-a-distance courses, and fully face-to-face courses that use few or no Internet-based resources.

The Benefits of Blending-

The concept of Blended Learning is rooted in the idea that learning is not just a one-time event –but that learning is a continuous process. Blending provides various benefits over using any single learning delivery type alone:

Improved Learning Effectiveness-

Recent studies at the University of Tennessee and Stanford give us evidence that a blended learning strategy actually improves learning outcomes by providing a better match between how a learner wants to learn and the learning program that is offered.

Extending the Reach-

A single delivery mode inevitably limits the reach of a learning program or critical knowledge transfer in some form or fashion. For example, a physical classroom-training program limits access to only those who can participate at a fixed time and location, whereas a virtual classroom event is inclusive of a remote audience, and when followed up with recorded knowledge objects (ability to playback a recorded live event), can extend the reach to those who could not attend at a specific time.

Optimizing Development Cost and Time-

Combining different delivery modes has the potential to balance out and optimize the learning program development and deployment cost and time. A hundred percent online, self-paced, media-rich, Web-based training content may be too expensive to produce (requiring multiple resources and skills), but combining virtual collaborative learning forums and coaching sessions with simpler self-paced materials such as generic off-the-shelf WBT, documents, case studies, recorded live eLearning events, text assignments, and PowerPoint presentations (requiring quicker turn-around time and lower skill to produce), may be just as effective or more effective.

Optimizing Results-

Institutions report exceptional results from their initial blended learning initiatives. Learning objectives can be obtained in 50 % less class time than traditional strategies. Travel costs and time have been reduced by up to 85%. Acceleration of mission-critical knowledge to channels and customers can have a profound impact on the institution's top line.

Evidence That Blending Works-

We are early into the evolution of blended learning. Little formal research exists on how to construct the most effective blended program designs. However, research from institutions such as Stanford University and the University of Tennessee has given us valuable insight into some of the mechanisms by which blended learning is better than both traditional methods and individual forms of eLearning technology alone. This research gives us confidence that blending

not only offers us the ability to be more efficient in delivering learning, but also more effective. Stanford University has over 10 years of experience with self-paced enrichment programs for gifted youth. Their problem, however, was that only slightly more than half of their highly motivated students would actually complete their programs. They diagnosed the issue as a mismatch between the student's desired learning style interactive, social, mentored learning with the program's delivery format. The introduction of live eLearning into their program to address these needs raised student completion rates to 94%. The improvement was attributed to the ability of a scheduled live event to motivate learners to complete self-paced materials on time, the availability of interaction with instructors and peers, and higher quality mentoring experiences. The Stanford research strongly suggests that linking self-paced material to live eLearning delivery could have a profound effect on overall usage and completion rates – enabling organizations to radically increase the return on their existing investments in self-paced content. Research by the University of Tennessee's Physician's Executive MBA (PEMBA) program2 for mid-career doctors has demonstrated that blended learning programs can be completed in approximately one half of the time and at less than half of the cost using a rich mix of live eLearning, self-paced and physical classroom delivery. Of even greater interest, this well designed program was able to demonstrate an overall 10% better learning outcome than using the traditional classroom learning format alone. This represents the first formal study to show significant improvements from eLearning rather than just equivalent outcomes. This exceptional result was attributed by PEMBA to the richness of the blended experience that included multiple forms of physical and virtual live eLearning, combined with the ability of the students to test their learning in the work context immediately and collaborate with peers on its adaptation to their unique environments. Taken together, these studies show us that, regardless of whether your starting point is the traditional classroom or self-paced eLearning, the diversity of a blending learning experience appears to have a significant impact on the overall effectiveness of a learning program relative to any individual learning delivery method alone. But how do you bring some of these benefits to your organization?

Conclusion-

On the basis of above discussion it can be said that the institution are rapidly discovering that blended learning is not only more time and cost effective, but provides a more natural way to learn and work. Institutions that are in the forefront of this next generation of learning will have more productive staffs, be more agile in implementing change, and be more successful in achieving their goals. To paraphrase Jack Welch, legendary chairman of General Electric, the ability of an institution to learn, and rapidly convert that learning into action, is the ultimate source of competitive advantage. Institutions must look beyond the traditional boundaries of classroom instruction by augmenting their current best practices with new advances in learning and collaboration technologies to maximize results. More importantly, institutions must seek to empower every individual in the organization to become an active participant in the learning and collaboration process. We encourage you to practice blended learning in our institution.

Reference:

1. *University of Calgary, Teaching and Learning Centre, retrieved March 3, 2008 fromhttp://commons.ucalgary.ca/teaching/prgrams/itbl/*
2. *Blending In: The Extent and Promise of Blended*

Education in the United States, Allen, Seaman and Garrett, March, 2007

3. *Wikipedia,January,2008,http://en.wikipedia.org/wiki/Blended learning*
4. *Dziuban, C., Hartman, J., Moskal, P., "Blended Learning," EDUCAUSE Review, Volume 2004, Issue 7, 2004*
5. *Bonk, C. J. & Graham, Handbook of Blended Learning: Global Perspectives, local designs. Copyright © 2004 by John Wiley & Sons, Inc.*
6. *Blended learning handbook, 2013;Aspire publication,USA*

India's Security Challenges – A futuristic Perspective

Dr. Chanda Keswani
Lecturer, Govt. College, Ajmer

shodhshree@gmail.com

If you know your enemies and know yourself, you will not be imperiled in a hundred battles; if you do not know your enemies but do know yourself, you will win one and lose one; if you do not know your enemies nor yourself, you will be imperiled in every single battle" *The Art of War, Sun Tzu (6th Century BC), Chinese general and military strategist.*

India is widely believed to have arrived on the global stage. In fact, if one goes by the popular press both domestic and foreign, it is very difficult to not get swayed by the euphony being generated about India and her inevitable ascendance to rightful place in the comity of nations. Nonetheless this essay attempts to desist from merely joining the self-congratulatory chorus and instead objectively analyses the security threats - external, internal, covert and overt, state and non-state - posed to our country. Therefore at the outset, it must be emphasized though I am a strong believer in the idea of India, her resilience and ability to resurrect from every conceivable threat she has faced in the last two millennia; the essay tries to adopt a pragmatic strategist's approach in the analysis of country's security environment.

As most of the armies of the world adopt, the paper bases the quantum of threat posed by a security threat through its capability and interest and not by purported intention. We will explicitly list all security threats as well as economic, social, political and technological factors that can give rise to an increased security threat level. We will first analyze external and then internal security threats before evaluating which of the two, if at all, be more threatening to India in the coming decades.

External Security Threats To India-

India has the disadvantage of being situated in close proximity to what is being described as "the epicenter of global terrorism" . Tribal region near the Afghanistan-Pakistan border is constantly drawing attention of America's Global War on Terror (GWOT) since 2001. India's increasing relevance to the US strategic canvas, troubled relationship with Pakistan since the independence of the country, deteriorating and unpredictable relationship with China, unstable political climate in Nepal along with Maoist insurgency, mistrustful relationship with Bangladesh, civil-war ravaged and still-healing Sri Lanka, authoritarian Myanmar have rendered any fair estimation of Indian preparedness to deal with these security challenges an onerous task. We will

now analyze capabilities and interests of each of these players and then asses their influence on India's strategic calculations.

The United States Of America-

India's relationship with the sole military and economic superpower of the world has been on the rise during the previous decade. A new shift in Indo-US [1]relations was witnessed during President Clinton's visit in 2000, fortified by Presidents Bush and Obama's visit to the country. That said, although India remains ideologically non-committal to signing the CTBT and NPT regime; there has been tremendous improvement in the nuclear energy field through singing the Indo-US Nuclear Treaty in 2006.[2]

The US has always been a practitioner of hard real-politick, its policies have always been defined by its own interests in the region. The US support to Pakistan's military through CEATO arrangements in 1960s, later President Nixon's visit to China in Feb 1972 which was secretly facilitated by Pakistan and resulted in melting the ice between the two nations, support to Pakistan's defense apparatus and Taliban through 1980s and now military offensive in the Af-Pak tribal region have all been calibrated on the US self-interests. All these steps have had a profound impact on India's external security environment. The continued US presence in our North-West border is cited to be one of the main reasons behind Pakistan's belligerent attitude in the aftermath of the Parliament attack in 2001 and 26/11mayhem in 2008. The Pakistani Army knows Indian options are severely limited to strike across Pakistani territory owing to military assistance she is providing to GWOT. Apart from limiting India's punitive capability against Pakistan for its sponsoring terrorist attacks and their infrastructure in India, the US has also provided substantial financial and military to Pakistan which have adverse consequences to our strategic calculations.

Nonetheless the US is likely to dominate world affairs for at least another two decades. India has to work towards minimizing adverse impact of the US-Pak assistance on our external security. On a lighter note, India should emphasize to the US that for fighting tribal insurgents in its North-Western region; Pakistan does not need F-16s and nuclear submarines!

People's Republic Of China-

Indo-China relations have been marked with distrust and fear on both sides after 1962 border clash which resulted in China usurping Aksai Chin area in J&K giving it easy road access from the Tibetan plateau to remote Xinxiang region in the West. Additionally China's rise in the past three decades has given it tremendous weight in international political and security circles. China has patiently been working towards building military-economic and political alliances around India's periphery–termed as "strings of pearl strategy". China remains India's number one security threat. It has provided consistent military assistance to Pakistan for use against India, funded armed rebels in the North-East and has continued to up the ante in diplomatic circles through stapled visas, visa denials and spying on Tibetan Diaspora in India.[3]

Although India needs to be sensitive towards Chinese sensitivities towards Tibet, India has failed to play an assertive role in communicating its interests to the Chinese side. On the other hand, China has built up superior civilian and military infrastructure along Indo-Tibet border. Our defense preparedness vis-à-vis China leaves much to be desired. As has rightly been enunciated by one of our Army Chiefs, the possibility of Two-Front War scenario with both Pakistan and China should be factored in while preparing our doctrine of war and operational readiness.

To match China's might and thwart any misadventure from our Northern neighbor, we should invest heavily in our infrastructure in border areas, phase out obsolete military hardware, raise at least 3 mountain divisions for the Eastern sector and shore up anti-ballistic missile capability through expedited Agni programs. Fortunately Indian economy's healthy growth in the past decade has ensured greater defense outlay but even now our defense budget at 2.1% is way below 4.5% and 4.7% of Pakistani and Chinese budgets as % of their respective GDP and even the allocated funds do not get fully utilized for modernizing the forces but for the lack of speedy and transparent procurement procedures.[4]

A look at the following chart shows the yawning gap between the defense expenditures of China

and India. China is widely known to have unders tated its publicly announced defense budgets. The defense expenditure for Pakistan does not include capital outlay hence actual spending should be higher than shown here. Hence the need to selectively utilize our limited defense outlay for maximizing lethality of our forces.

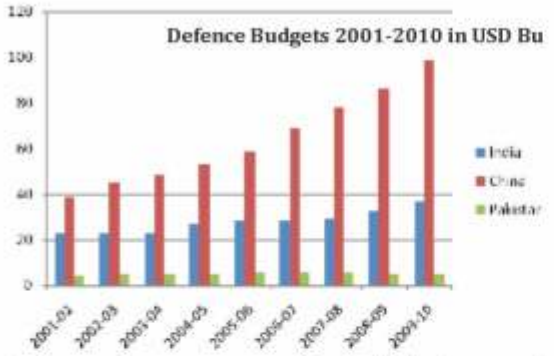

To that end recent successful trial of indigenously designed and developed Light Combat Aircraft (LCA) Tejas is a welcome development. Similarly other big-ticket purchases for example C130s and Medium Multi-Role Combat Aircraft (MMRCAs) should also be expedited for induction into the Indian Air Force. Indian Navy's recent announcement of forming an Andaman specific command is a right step towards influencing Malacca strait area which can be one of the pressure points on the Chinese Navy in the event of a prolonged conflict. But our Navy needs much awaited aircraft career to project military power away from the shores. Unfortunately Russian aircraft carrier Gorshkov is waiting for about a decade for acquisition. Other steps should be towards economically integrating countries in our immediate neighborhood to balance strategic Chinese investment in these countries. A strong political will is required to transform the forces and provide them necessary resources to successfully face the challenges on the external front.[5]

Pakistan-

The perennial challenge before Indian defense apparatus to manage external covert and overt threat from Pakistan does not need any emphasis. Since the birth of that country, we have fought them four times in war - 1948, 1965, 1971 and 1998. Besides the country is facing low intensity conflict in J&K abetted and sponsored by Pakistani military, in the North-East and through support to various fringe extremist group within the country. The country also faces huge challenge before its economy in the form of fake rackets being operated from Karachi and Dubai and widely believed to have blessings of Pakistan's infamous Inter-Services Intelligence – its external spy agency.

As the following chart shows, though in absolute terms terrorism related deaths in India have shown a decline; the potential for disturbing communal harmony within the country through such machinations cannot be underestimated. The fatalities here include all three kinds of death – civilians, security forces personnel and the terrorists . We will during the later part of the article explore how external agencies with covert or overt support from nefarious elements within the country can potentially destabilize the security situation.

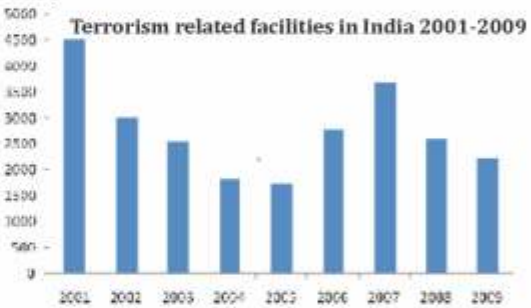

Thus Pakistan remains one of our principle worries at both external and internal security fronts. Besides on the basis of its long-standing strategic partnership with China, it can stretch our armed forces capabilities in the Eastern sector. The modernization plans of Karakoram highway, the development of Gwadar as a naval port by the Chinese Navy and covert assistance to Pakistan's nuclear and missile program are on the anvil; these two countries should be watched very carefully in our defense planning. Rapid implementation of the mooted Cold-Start Strategy should be pursued by the forces to neutralize Pakistani threat quickly in a two-front war scenario and deny the bigger neighbor to our North an advantage from the Western sector.[6]

Immediate Neighborhood-

Except Bhutan, our neighbors don't support the strategies at military and political level, and thus pose a serious challenge like China and Pakistan.

- In case of Nepal- India needs to be very alert all the time and the leftist parties of India can be engaged in the work of persuading the Maoist leadership in Nepal to stop protecting the Chinese when they threaten the region's peace.
- Bangladesh- Bangladesh is cooperating with India in terms of handling the terrorist activities in the region and in return India is providing them economic assistance.[7]
- China has been investing in Kyaukryu and Sittwwe as commercial ports on the west coast close to our NE states. These ports can be used as naval bases which is a cause of concern.
- China can be counterbalanced by managing our (India's) relationship with our closest ally of Cold War era-Russia. Russia's help is also taken to procure critical defense supplies.
- Sri Lanka's take on the Tamils residing. There is discriminatory directly or indirectly. Priority for Indian foreign policy is to persuade the Lankan government to stop the discriminatory behaviour against Sri Lankan Tamils[8]
- Bhutan supports in our needs and times, as they wiped off ULFA rebels in their territory in 2003 and India reciprocates them by assisting them economically socially and in defense developments.

Internal Security Threats To India-

India's internal security challenges can be categorized under two heads–insurgency and extremism. We will explore the internal security threats to India in these lines.

Insurgency-

The fire of insurgency in India is running through states like Chattisgarh, Jharkhand, Uttar Pradesh, West Bengal, Andhra Pradesh and North Eastern States. Pakistani sponsored terrorist activities have been going on in Kashmir since 1989.

India strategy so far has been to first let the state handle its law and order situation and intervene only in emergency. This strategy needs a rethink because there are indications that Maoists have tried to forge ties with Kashmiri separatists and ULFA to synergize their activities.

Furthermore, the Left Wing Extremism (LWE) in India has extended from North to South and East to West. Therefore India needs to pronged strategy

- To uplift the socio-economic status of the people of those regions.
- Checking the growth of Naxal movements as it is a result of the unfulfillment of promises made by the government to the people of those regions. Inclusive growth, inter-state cooperation are the necessity of time, failing which India will face severe governance crisis.

Extremism-

Religious extremism is other main internal security threat to the country. Without establishing cause-and-effect for this phenomenon as do most of the Right and Left wing intellectuals, there is urgency to tackle this issue. Fair and transparent law enforcement and quick, efficient judicial apparatus are required to stem the tide of religious extremism in the country–both minority as well as majority. Recent rhetorical statements from the politicians of certain political spectrum to milk this challenge for their advantage are indeed unfortunate.

Other challenges to internal security are astoundingly high level of corruption, political factionalism and caste wars–all of which require seasoned and firm political vision.

Which Is Greater Threat - Internal Orexternal?

It is indeed a complex task to determine which of the two threats will be greater for India. In fact, in highly dynamic external security situation and rapidly evolving internal socio-economic developments, the relative strengths of these challenges cannot be determined with certainty. But one can say that an internally weak nation cannot fight an external adversary successfully. So tackling internal insurgency successfully is a greater and immediate challenge than fighting wars abroad. Continued insurgency can provide a fillip to external aggression from our adversaries sensing internal weakness. For example, left wing ultras can cripple rail and road infrastructure in the event of war and our enemies can very well factor this into their calculations. Similarly insurgencies in India are abetted and supported by our adversaries and the impact of the two challenges cannot be isolated per se.

Conclusion-

As has been argued throughout this article, in area

as humongous as national security it is difficult to ascertain which of the two threats-external or internal-will pose greater security threat to the country going forward. But if we take nation as an organism, to fight an external adversary internal strength is prerequisite. Internal cohesion and external defense preparedness is what gives a nation lethal power to deter a potential aggressor and preserve freedom. Indian history has shown throughout millennia, we have lost our freedom and riches by neglecting our frontiers or through internal factionalism. Any nation which is getting rich without paying adequate focus on defense invites aggression.

Are our policymakers ready for the challenge to steward safely an ascendant India of the 21st Century?

References:

1. *Internet Archive Wayback Machine. Web.archive.org (9 August 2007). Retrieved 2011-11-12.*
2. *"Obama backs permanent seat for India on Security Council". CNN. 2010-11-08.*
3. *Saibal Dasgupta (2008-01-17). ___ "China is India's largest trade ally International Business Biz The Times of India". "Indo-China trade to surpass $60 bn before 2010"*
4. *Business-standard.com. 2008-06-06. "news.outlookindia.com"*
5. *Outlookindia.com. Retrieved 2009-11-21.*
6. *"Pakistan, India inch closer to agreement: People-to-people contact -DAWN Top Stories; 04 August, 2004". DAWN. 2004-08-04..*
7. *For Bangladesh: India is causing trouble, International Herald Tribune, 2003-01-22*
8. *Brief on India-Sri Lanka Relations, Ministry of External Affairs (BSM Division: Sri Lanka)*

Human Right: A Key To True Human -In Reference To Provide Education

Dr. Chhaya Soni
Assistant Professor,
Banaras Hindu University, Varanasi (Uttar Pradesh)

shodhshree@gmail.com

Human Rights, intrinsic to all humans as members of humanity, are the modern and secular version of the natural rights. All human, being born equal are equally entitled to the human rights without any distinction of birth, sex, race, status, religion, language or nationality. Standing above the ideologies of the capitalism or communism, Human rights reflect the concern for democracy, development and peace.

During the freedom movement, the people of India fought against colonial rule for their rights and liberties. Freedom fighter **Lokmanya Bal Gangadhar Tilak** proclaimed, **"Swaraj is my birthright and I shall have it."** Throughout the freedom struggle, the demand for fundamental rights was always in the forefront. The Indian National Congress at its Madras session in December 1927, resolved to draft a "Swaraj Constitution for India, on the basis of the Declaration of Rights" and in 1928, an All Parties Conference of representatives from Indian political parties proposed constitutional reforms for India.

Human Right- Human Right is "rights and freedoms" to which all humans are entitled. Human Right means "the rights relating to life, liberty, equality, and dignity of the individual guaranteed by the constitution or embodied in the international covenants and enforceable by courts in India." In other words in society for the development of human personality, some essential rights are requires without these his personality development is not possible and these rights are called human rights—**Right for life, Right for health, Right for justice, Right for education etc.**

So we can say that human right is not merely a language of compassion, cooperation, consideration and communication in human affairs. It is the grammar of a civilized society to protect human kind with its dignity, equity, existence and non-exploitative social justice.

The **Universal Declaration of Human Rights (UDHR)** was adopted by the United Nations General Assembly in 1948, partly in response to the atrocities of World War II. Although the UDHR was a non-binding resolution, it is now considered by some to have acquired the force of international customary law which may be invoked in appropriate circumstances by national and other judiciaries. The UDHR urges member nations to promote a number of human,

civil, economic and social rights, asserting these rights as part of the "foundation of freedom, justice and peace in the world."

The declaration was the first international legal effort to limit the behavior of states and press upon them duties to their citizens following the model of the rights-duty duality.

Preamble to the Universal Declaration of Human Rights (1948) states—

Recognition of the inherent dignity and of the equal and inalienable rights of all members of the human family is the foundation of freedom, justice and peace in the world.

Universal Declaration Of Human Rights, 1948 (selected Articles)

Article 3

Everyone has the right to life, liberty and security of person.

Article 4

No one shall be held in slavery or servitude; slavery and the slave trade shall be prohibited in all their forms.

Article 5

No one shall be subjected to torture or to cruel, inhuman or degrading treatment or punishment.

Article 6

Everyone has the right to recognition everywhere as a person before the law.

Article 7

All are equal before the law and are entitled without any discrimination to equal protection of the law.

Article 8

Everyone has the right to an effective remedy by the competent national tribunals for acts violating the fundamental rights granted him by the constitution or by law.

Article 9

No one shall be subjected to arbitrary arrest, detention or exile.

Article 10

Everyone is entitled in full equality to a fair and public hearing by an independent and impartial tribunal, in the determination of his rights and obligations and of any criminal charge against him.

Article 11

(1) Everyone charged with a penal offence has the right to be presumed innocent until proved guilty according to law in a public trial at which he has had all the guarantees necessary for his defense.

(2) No one shall be held guilty of any penal offence on account of any act or omission which did not constitute a penal offence, under national or international law, at the time when it was committed. Nor shall a heavier penalty be imposed than the one that was applicable at the time the penal offence was committed.

Article 12

No one shall be subjected to arbitrary interference with his privacy, family, home or correspondence, or to attacks upon his honor and reputation. Everyone has the right to the protection of the law against such interference or attacks.

Article 13

(1) Everyone has the right to freedom of movement and residence within the borders of each state.

(2) Everyone has the right to leave any country, including his own, and to return to his country.

Article 14

(1) Everyone has the right to seek and to enjoy in other countries asylum from persecution.

(2) This right may not be invoked in the case of prosecutions genuinely arising from non-political crimes or from acts contrary to the purposes and principles of the United Nations.

Article 15

(1) Everyone has the right to a nationality.

(2) No one shall be arbitrarily deprived of his nationality nor denied the right to change his nationality.

Human Right Education- Efforts to define human rights education in the 1950s and 60s emphasized cognitive learning for young people in a formal school setting. By the 1970s, most educators had extended the concept to include critical thinking skills and concern or empathy for those who have experienced violation of their rights. However, the focus remained on school-based education for youth with little or no attention to personal responsibility or action to

promote and defend rights or effect social change. The United Nations General Assembly has proclaimed it as central to the achievement of the rights enshrined in the Universal Declaration of Human Rights (UDHR)-

Preamble to the Universal Declaration of Human Rights (1948) states:

Now, Therefore the general assembly proclaims this universal declaration of human rights as a common standard of achievement for all peoples and all nations, to the end that every individual and every organ of society, keeping this Declaration constantly in mind, shall strive by teaching and education to promote respect for these rights and freedoms.

In Article 26.2 of the Universal Declaration of Human Rights Education shall be directed to the full development of the human personality and to the strengthening of respect for human rights and fundamental freedoms. It shall promote understanding, tolerance and friendship among all nations, racial or religious groups, and shall further the activities of the United Nations for the maintenance of peace.

Human Right Education means is the education that caters to the development of overall human personality. It includes respecting of rights, fulfillment of basic needs, and ensuring fundamental freedom to all human beings. The key purpose of venturing into this field of education is to promote understanding of basic human needs and stimulate the need to spread humanity, love, and brotherhood amongst nations.

Human Right Education is the teaching of the history, theory, and law of human rights in schools and educational institutions, as well as outreach to the general public.

UTILITY OF HUMAN RIGHT EDUCATION

HUMAN RIGHT EDUCATION promotes democratic principles. It examines human rights issues without bias and from diverse perspectives through a variety of educational practices.

HUMAN RIGHT EDUCATION helps to develop the communication skills and informed critical thinking essential to a democracy. It provides multicultural and historical perspectives on the universal struggle for justice and dignity.

Human Right Education engages the heart as well as the mind. It challenges students to ask what human rights mean to them personally and encourages them to translate caring into informed, nonviolent action.

Human Right Education affirms the interdependence of the human family. It promotes understanding of the complex global forces that create abuses, as well as the ways in which abuses can be abolished and avoided.

Various Programme For Human Right Education- It is true that this kind of education is of most important for one and all to ensure a secured, respectful and courteous life. It is one step that takes the world together with a desire to create a strong foundation of universal culture of rights and freedom. Anyone who wishes to contribute to the strength of this foundation can opt for various courses under the stream. There are many options available for student to gain access to the kind of culture. Some of the common and most acceptable courses & programs are as follows:

Foundation Course is a one that imparts learning of values and norms with regards to justice, fraternity, and equality. It also includes awareness of civil society organizations and special initiative or measures that can be taken to promote human rights.

Certificate Course is specially designed for special groups like civil segments, law enforcement personnel and social groups.

Under-graduate Course gives the basic understanding of human rights and its importance in the social life. It is interdisciplinary in nature and undertakes research and case studies on thrust areas. Undergraduate students can pursue an interdisciplinary minor in human rights which will introduce them to the study of universally-recognized civil, political, economic, social and cultural human rights. The Struggle for Human Rights, and five additional courses offered in diverse fields in several different schools.

Post-graduate Course is more advanced and progressive with regards to the culture of human rights and fundamental freedom.

All courses along with the education system works together for common set of objectives. The known objectives of this education are as follows:

1. To develop interaction between social organizations, people and education system.
2. To preserve the norms and values of the

society and its culture.

3. To encourage research and promotional activities for the cause of overall human development.
4. To promote ethics and human values those are gone into oblivion these days.
5. To improve the quality of life in the society and ensure a life of security and dignity.

Excursion Program- Students are also required to complete either a 20-hour community-service project with local human rights agencies or to travel. The program offers students and community members' opportunities for human rights travel to sites of historical human rights abuses and to places where human rights problems are continuing to unfold. These trips allow travelers to bear witness to human rights violations while giving them opportunities to meet and interact with people in places touched by these atrocities. In addition, the trips allow time for reflection and conversation, and give opportunities for learning through service. (Partial scholarships are available for students with financial need.)

Developmental Program- The Program sponsors many conferences and events during the academic year which are open (and always free) to students, faculty, and community members.

Other Program-

- Health as a Human Right: Globalization, Health & International Ethics
- The course trained the student for know the concept of human rights critically, with an eye for cross-culture variation and a particular focus on rights that are health related.
- Human Rights, Indigenous people and nation states– In this program get the knowledge of human rights issued among contemporary indigenous people, especially the impact of government and non governmental organization, large-scale development program and global tourism on their cultures and societies.

Conclusion-

Human rights reflect the concern for democracy, development and peace. Human rights education means education that caters to the development of overall human personality. For develop of human personality (true human) is necessary that in universities and colleges to run the different types courses and programs, example—foundation course, certificate course, under-graduate and post-graduate course, excursion, developmental and other program. After attend these courses and programs a human can being a true human because they will be know our human rights.

References:

1. *Gupta, S.C., (1998) Emerging Challenges in Education, Delhi: Arya Book Depot, pp.132 to 149*
2. *Singh, A.N.,(1998) Manav Adhikar Srot Granth, NCERT: Delhi, pp 188-209*
3. *Singh, D. & Singh,S. (April 2002,20,4) Outline of Human Right Education, In Bhartiya Aadhunik Shiksha, NCERT: Delhi, pp 42-45*
4. *Singh, N. (October 7,2002) Human Right Education: Pivotal Role of the Teachers IN (2005) Selections from University News 16, Association of Indian Universties: New Delhi, pp 65-73*
5. *Kalam, A.P.J.Abdul & Rajan Y. Sunder (2002) Bharat 2020, Riyapal and Sunj: Delhi, pp 206-303*
6. *http://wikipedia.org*
7. *http://www1.umn.edu*
8. *http://en.wikipedia.org*
9. *smu.edu*
10. *www.theadvocatesforhumanrights.org*
11. *http://www2.ohchr.org*

Sino – Indian Relations :- From Arch Rivals To Changing The World Order

Dr. Nidhi Yadav
Senior Lecturer, Government College, Ajmer

shodhshree@gmail.com

Diplomacy Is The Velvet Glove That Cloaks The Fist Of Power. These words by American novelist, Robin Hobb speaks volumes about the intricate diplomatic relations between India and China .

Debates about Sino-Indian relations often start off from either one of two different, and even contradictory, schools of thought.

The first school of thought takes a "realist" point of view, arguing that each of the two emerging powers would fight for dominance in the Asian continent. It tends to describe relations between the two countries as hostile. This could even lead to military confrontation between the two nations, or at least to an even greater militarization of the region .War is only contained because both countries have nuclear weapons and are increasing and modernizing their capabilities in conventional warfare. India belongs to the group of major importers of military technology.

The second school of thought takes a liberal perspective, viewing China and India as two major emerging markets in a more and more interdependent world, where trade and commerce sustain peaceful coexistence.

This paper intends to review the current relationship between China and India and to analyse where India and China are cooperating, why they do so, and what is (and could) be done to improve relations between the two countries

The aim of this essay is to look beyond the general debate about India's relationship with China and show what kinds of cooperation already exist and how persistent they are. I also want to emphasize another important factor of Sino-Indian relations: the level of trust. There are many fields where India and China are cooperating, but there is not much progress especially in bilateral matters, as can be observed when looking at the way how both sides are handling the border issue. I argue that trust is an important variable for sustainable cooperation, and that trust, or rather the lack of it, is a determining factor in Indo-Chinese cooperation.

The Yester Years-

India and china , the two giants of Asia , are two of the oldest and living civilizations of the world. Sindhu and Ganges gave birth to Indian civilization ,

which influenced South and Southeast Asia. Similarly, Huanghe (Yellow river) and Changjiang (Yangtze river) gave birth to Chinese civilization , which on its part influenced Northeast and Southeast Asia being neighbors India and China had established trade and cultural relations since time immemorial .

They share a long land border but remain separated by the Himalayas. Yet, they have managed to interact with each other across the snowy ranges that separate them. The Indian epic *Mahabharata* (c. 5th century BC) contains references to "China", which may have been referring to the Qin state which later became the Qin Dynasty. Chanakya (c. 350-283 BC), the prime minister of the Maurya Empire and a professor at Takshashila University, refers to Chinese silk as "cinamsuka" (Chinese silk dress) and "cinapatta" (Chinese silk bundle) in his *Arthashastra*.

The Silk Road not only served as a major trade route between India and China, but is also credited for facilitating the spread of Buddhism from India to East Asia. Scholars like Xuanzang travelled from China to Indian universities such as Nalanda and much of Indian history has recently been rediscovered by using Chinese texts. Meanwhile, paper manufacturing techniques , compass and gunpowder found their way from China to India. Above all, the cultural ambassadors from India and China and vice versa enhanced and strengthened mutual understanding, which acted as a catalyst in the growth and development of the two nations .

During the 19th century, China's growing opium trade with the British Raj triggered the Opium Wars. During World War II India and China played a crucial role in halting the progress of Imperial Japan.

Relations between contemporary China and India have been characterized by border disputes, resulting in three major military conflicts — the Sino-Indian war of 1962, the Chola incident in 1967, and the 1987 Sino-Indian skirmish. However, since late 1980s, both countries have successfully attempted to reignite diplomatic and economic ties. In 2008, China emerged as the largest trading partner of India and the two countries have also attempted to extend their strategic and military relations.

Relations After Independence-

On October 1, 1949 the People's Liberation Army defeated the Kuomintang (Nationalist Party) of China in a civil war and established the People's Republic of China. India was the 16th state to establish diplomatic relations with the People's Republic of China, and soon thereafter Ambassadors were exchanged between the two countries. The period of friendly co-operation that followed between India and China is considered as the golden years of our relations.

In 1954, India published new maps that included the Aksai Chin region within the boundaries of India (maps published at the time of India's independence did not clearly indicate whether the region was in India or Tibet). When an Indian reconnaissance party discovered a completed Chinese road running through the Aksai Chin region of the Ladakh District of Jammu and Kashmir border clashes and Indian protests became more frequent and serious.

The People's Republic of China accused India of expansionism and imperialism in Tibet and throughout the Himalayan region. China claimed 104,000 km^2 of territory over which India's maps showed clear sovereignty, and demanded "rectification" of the entire border.

Zhou Enlai proposed that China relinquish its claim to most of India's northeast in exchange for India's abandonment of its claim to Aksai Chin. The Indian government, constrained by domestic public opinion, rejected the idea of a settlement based on uncompensated loss of territory as being humiliating and unequal.

The Sino – Indian War Of 1962-

1962 Border disputes resulted in a short border war between the People's Republic of China [PRC] and India in 20 October 1962. The PRC pushed the unprepared and inadequately led Indian forces to within forty-eight kilometers of the Assam plains in the northeast and occupied strategic points in Ladakh, until the PRC declared a unilateral cease-fire on 21 November and withdrew twenty kilometers behind its contended line of control. The bon homie of " Hindi – Chini Bhai – Bhai " of mid-1950s ended in a bonfire of their relationship when both entangled in this

escalated armed conflict.

Relations between the PRC and India deteriorated during the rest of the 1960s and the early 1970s as Sino-Pakistani relations improved and Sino-Soviet relations worsened . The PRC backed Pakistan in its 1965 war with India. The PRC continued an active propaganda campaign against India and supplied ideological, financial, and other assistance to dissident groups, especially to tribes in northeastern India. Diplomatic contact between the two governments was minimal although not formally severed. The flow of cultural and other exchanges that had marked the 1950s ceased entirely. The flourishing wool, fur and spice trade between Lhasa and India through the Nathu la Pass, an offshoot of the ancient Silk Road in the then Indian protectorate of Sikkim was also severed. However, the biweekly postal network through this pass was kept alive, which exists till today.

Sino – Indian Relations From 1980-2000- The India-China conflict in 1962 led to a serious setback in bilateral relations. India and China restored ambassadorial relations in August 1976. Higher political level contacts were revived by the visit of the then External Affairs Minister, A.B. Vajpayee in February 1979. The Chinese Foreign Minister Huang Hua paid a return visit to India in June, 1981. Prime Minister Rajiv Gandhi visited China in December 1988. During this visit, both sides agreed to develop and expand bilateral relations in all fields. It was also agreed to establish a Joint Working Group (JWG) - to seek fair, reasonable and mutually acceptable solution on the boundary question - and a Joint Economic Group (JEG).

From the Chinese side, Premier Li Peng visited India in December 1991. Prime Minister Narasimha Rao visited China in September 1993. The Agreement on the Maintenance of Peace and Tranquility along the Line of Actual Control (LAC) in the India - China Border Area was signed during this visit, providing for both sides to respect the status quo on the border, clarify the LAC where there are doubts and undertake CBMs. President R. Venkataraman paid a state visit to China in May 1992. This was the first Head of State-level visit from India to China.

The 1993 Chinese military visit to India was reciprocated by Indian army chief of staff General B. C. Joshi. During talks in Beijing in July 1994, the two sides agreed that border problems should be resolved peacefully through "mutual understanding and concessions." The border issue was raised again in September 1994 when PRC Minister of National Defence Chi Haotian visited New Delhi for extensive talks with high-level Indian trade and defense officials.

President Jiang Zemin's state visit to India in November 1996 was similarly the first by a PRC Head of State to India. The four agreements signed during his visit included the one on CBMs in the Military Field along the LAC covering adoption of concrete measures between the two militaries to enhance exchanges and to promote cooperation and trust.

Sino-Indian relations hit a low point in 1998 following India's nuclear tests in May. Indian Defense Minister George Fernandes declared that "China is India's number one threat", hinting that India developed nuclear weapons in defense against China's nuclear arsenal. In 1998, China was one of the strongest international critics of India's nuclear tests and entry into the nuclear club. During the 1999 Kargil War China voiced support for Pakistan, but also counseled Pakistan to withdraw its forces.

Sino-Indian Relations In The Present Decade- China and India today represent the world's two largest and fastest-growing economies. Even the global economic crisis has not slowed their rapid pace of development, which has triggered internal and external challenges for both nations. Yet, even as China and India increasingly collaborate in regional and global fora, they are experiencing frequent and sustained tensions.

In April 2010, the second BRIC summit was held in Brasília. Chinese Premier Wen Jiabao paid an official visit to India from Dec.15-17,2010 at the invitation of Prime Minister Manmohan Singh. He was accompanied by 400 Chinese business leaders, who wished to sign business deals with Indian companies.

" India and China are two very populous countries with ancient civilizations, friendship between the two countries has a time-honoured history, which

can be dated back 2,000 years, and since the establishment of diplomatic ties between our two countries, in particular the last ten years, friendship and cooperation has made significant progress." Premier Wen Jiabao at the Tagore International School, Dec 15, 2010.

In April 2011, the first BRICS summit was held in Sanya, Hainan, China. During the event, the two countries agreed to restore defence co-operation, and China had hinted that it may reverse its policy of administering stapled visas to residents of Jammu and Kashmir. This practice was later stopped, and as a result, defence ties were resumed between the two nations and joint military drills were expected. It was reported in February 2012 that India will reach US$100 billion dollar trade with China by 2015.

China's new leader Xi Jinping wrote a letter to Manmohan Singh, which was delivered to him by top Chinese diplomat Dai Bingguo in New Delhi on 11 January, 2013. In his first direct comments on relations with India, China's new leader Xi Jinping has assured Prime Minister Manmohan Singh that his country would pay "great importance" to developing bilateral ties as their cooperation has brought "substantial benefits" to both sides. He said the world has enough space for China and India to achieve common development. Dai, China's chief negotiator in border talks with India, was in New Delhi last week to attend the Brazil-Russia-India-China-South Africa (BRICS) security officials' meeting. Xi's letter was stated to be in response to a letter from Singh after his election as the General Secretary of the ruling Communist Party of China (CPC) succeeding Hu Jintao.

Sino-Indian Strategic Relations- Just as the Indian subcontinental plate has a tendency to constantly rub and push against the Eurasian tectonic plate, causing friction and volatility in the entire Himalayan mountain range, India's strategic relationship with China is also a subtle, unseen, but ongoing and deeply felt collision, the affects of which have left a convoluted lineage. Tensions between the two powers have come to influence everything from their military and security decision making to their economic and diplomatic maneuvering. The relationship is complicated by layers of rivalry, mistrust, and occasional cooperation, not to mention actual geographical disputes.

Sino – India Military Expenditure

COUNTRY	MILITARY SPENDING	ACTIVE PERSONNEL	KEY EQUIPMENTS
CHINA	US$ 140 billion (1.3% of GDP)	1,325,000 (1,155,100 Reserve personnel)	7,400 Battle tanks, 1,669 Fighter aircraft, 66 Submarines
INDIA	US$ 46.8 billion (1.83% of GDP)	2,285,000 (800,000 Reserve Personnel)	3,233 Battle tanks, 704 Fighter aircrafts , 15 Submarines

According to the above table , over the last decade, the Chinese have put in place a sophisticated military infrastructure in the Tibet Autonomous Region (TAR) adjoining India: five fully operational air bases, several helipads, an extensive rail network, and thirty thousand miles of roads—giving them the ability to rapidly deploy thirty divisions (fifteen thousand soldiers each) along the border, a three-to-one advantage over India. China has not only increased its military presence in Tibet but is also ramping up its nuclear arsenal.

The main strategic dynamic behind China's nuclear modernization is the need to maintain a secure second-strike capability to launch a counter-attack if China is attacked with nuclear weapons. India and China have similar nuclear doctrines, as both emphasize no first use and achieving deterrence through development of a secure second-strike.

Bilateral defence interaction has been growing. Peace and tranquility along the Line of Actual Control (LAC) in the border areas is being largely maintained by both sides in accordance with the agreements of 1993 and 1996. Recent highlights in defence relations are the visit by the then Defence Minister, Mr George Fernandes, to China in Apr 2003. The visit came after a gap of more than one decade and also helped ease the post Pokhran tensions.

The year 2011 was an eventful year for India - China bilateral defence cooperation. The Fourth Annual Defence Dialogue (ADD) was held in New Delhi on 09 Dec 2011. Prior to the dialogue in June 2011, a delegation from various Indian Army Commands visited Beijing, Urumqi and Shanghai. Although leaders from both countries often

repeat the ritualized denials of conflict and emphasize burgeoning trade ties, such platitudes cannot obliterate the trust deficit. Few if any of China's strategic thinkers seem to hold positive views of India for China's future, and vice versa. Chinese strategists keep a wary eye on India's "great power dreams," its military spending and weapons acquisitions, and the developments in India's naval and nuclear doctrines. A dominant theme in Chinese commentary in the last decade is that India's growing strength—backed by the United States—could tip Asia's balance of power away from Beijing.

Asia is sitting on a tinderbox. Tensions such as those between China and Japan or India and Pakistan already grab enough headlines. The potential for the formation of alliances and conflict escalation is very real. Rising aspirations, establishing military arsenal and growing hunger for resources in a depleted continent that has been inhabited for millennia are leading to tension and instability. While the spectre of an Asian equivalent of World War I is farfetched, a destructive nuclear war is not beyond the realms of possibility if relations start deteriorating.

Sino–Indian Economic Relations- India-China economic relations constitute an important element of the strategic and cooperative partnership between the two countries. The India-China trade and investment relations have expanded rapidly over the past few years suggesting their potential and complementarities. India & China signed a Trade Agreement in 1984 which provided for Most Favored Nation Treatment and later in 1994, the two countries signed an agreement to avoid double taxation. The bilateral trade crossed US$13.6 billion in 2004 from US$ 4.8 billion in 2002, reaching $18.7 billion in 2005. The India China trade relations have been further developed from 2006, with the initiation of the border trade between Tibet, an autonomous region of China, and India through Nathu La Pass, reopened after more than 40 years.

Both India and China hold more or less same positions in the global economic scenario. This in turn has further enhanced the economic relations between the two countries. In 2003, Bangkok Agreement was signed between the two countries. Under this agreement both China and India offered some trade preferences to each other. India provided concessions on 188 products exported from China. On the other hand, China provided preferences on tariff for 217 products exported from India.

Sino – India Economic Structure

Facts	India	China
GDP	around $1.3123 trillion	around 4909.28 billion
GDP growth	8.90%	9.60%
Per capital GDP	$1124	$7,518
Inflation	7.48 %	5.1%
Labor Force	467 million	813.5 million
Unemployment	9.4 %	4.20 %
Fiscal Deficit	5.5%	21.5%
Foreign Direct Investment	$12.40	$9.7 billion
Gold Reserves	15%	11%
Foreign Exchange Reserves	$2.41 billion	$2.65 trillion
World Prosperity Index	88th Position	58th Position

If we make the analysis of the India vs. China economy, we can see that there are a number of factors that has made China a better economy than India. First things first, India was under the colonial rule of the British for around 190 years. This drained the country's resources to a great extent and led to huge economic loss. On the other hand, there was no such instance of colonization in China. As such, from the very beginning, the country enjoyed a planned economic model which made it stronger.

Compared to India, China has a much well developed infrastructure. Some of the important factors that have created a stark difference between the economies of the two countries are manpower and labor development, water management, health care facilities and services, communication, civic amenities and so on. All these aspects are well developed in China which has put a positive impact in its economy to make it one of the best in the world. Although India has become much developed than before, it is still plagued by problems such as poverty, unemployment, lack of civic amenities and so on.

Hence, its high time for India to brace itself up , roll up its sleeves and shed sweat and blood to be at least remotely close to China in this Global race of world super economies .

India–China And Their Neighbors- China has

strong engagements with India's neighbors that mostly don't have really friendly ties with India. In the forefront is Pakistan. China assists India's western neighbor with building roads and power plants in Pakistan's Kashmir Region; India fears that China strengthens Pakistan's military and Pakistan supported anti-Indian militant groups in the region.

Myanmar is another very contested territory among India and China. Over the years, the PRC supported the Burmese military junta, politically in the UN Security Council, and strategically by selling them weapons and securing access to offshore natural gas reserves. Although India is trailing China, it started to invest massively in Myanmar, especially after the military junta started implementing democratic reforms in the country. Indian Prime Minister Manmohan Singh visited Myanmar in May 2012 and signed twelve agreements with Burmese President Thein Sein. They include agreements about border area development, air services, cultural exchange, a $500 million credit line between India's Export-Import Bank and Myanmar Foreign Trade bank and establishing of a joint trade and investment forum.

Since December 2006, in association with a Singaporean company, Silver Wave Energy, Gail India Ltd. signed a deal allowing the company to begin drilling for offshore oil. By 2016 a "Super-Highway" between India and Myanmar will be completed. Its aim is to create a new economic zone linking Northeast India, Myanmar, Thailand and eventually Cambodia and Vietnam. This will not only benefit India's Northeast which is in the desperate need of economic development, but this economic zone will also bypass China and foster India's access to oil and gas reserves in Myanmar and the rest of Southeast Asia.

China is also helping Sri Lanka to build a naval port. Although China assures that it will not be used for the presence of Chinese war ships in the region, India worries what will happen. The strategy China follows with the establishment of different ports and military bases from the Island of Hainan in the South Chinese Sea to the Persian Gulf in the Middle East is called "String of Pearls". This "String of Pearls" should secure China's energy supply and trade routes. India sees this strategy as interfering in India's own backyard. At the same time India also increases its naval presence in the Indian Ocean and in the Persian Gulf.

India traditionally has a good relationship with Iran. The South Asian nation is helping Iran to expand the port of Chabahar, South Iran, near the Iran-Pakistan Border. India also established naval presence in the Seychelles and Mauritius, and surveillance posts in Madagascar and in the Antarctic. Officially India strengthens its naval presence to secure the sea route for trading ships in the Indian Ocean Region. But experts are convinced that India also wants to counterbalance the increasing influence of China in the region.

These examples show that China and India are both competing for a greater economic and political influence in Asia. With an increasing military build-up and a sometimes chauvinistic rhetoric in both nations, the risk of a military conflict seems to be real. But the situation is not that simple or one-sided.

Epilogue: The Way Ahead- The call for a new strategy or approach towards China is not a new one, but India needs to react now to foster peaceful relations on an equal basis with China. India has to cast off its inferiority complex when it has to face China. The country seems to have forgotten its old strengths when it comes to its authoritarian neighbor. In direct comparison, the South Asian country lags far behind the PRC in almost all socio-economic index figures.

We must of course engage, economically and culturally with China to better our relationships. But China's geopolitical interests are fundamentally adversarial to India's. China is a nation with definite views on the international order and border Issues, which will prevent it from becoming India's most trusted ally. The gap between Chinese and Indian power is much less than previous decades, but there is no room for complacency. Moreover, the costs of adopting preventive measures are much lower than the costs of inviting Chinese aggression by failing to compete. Therefore, it would be irresponsible for India not to take steps to ensure that China thinks

twice before challenging the status quo in relationship.

It is said that in the coming years, China will replace US as the world super power. However last major power transition from Britain to the US (After World War II) helped India achieve independence. So let's consider for a moment, what will happen to India, If and when there is power transition from US to China.

Summing up the main facets of Sino–Indian relations, both the Asian giants stand to gain out of their diplomatic relations, more so India. India, slowly but surely is sprinting towards excellence, in terms of economic growth, military process and political stability. Such facts has inspired China to follow a path of friendship by putting all outstanding territorial disputes on the back burner. China, on account of liberalization and market economy, has set its eyes on new markets. India undoubtedly provides that opportunity and China can't miss out on this. A better political relationship would remove the scars of 1962 war and both Asian giants can look upon each others as partners rather than adversaries.

References:

1. *India – China Trade Surpassed Target, THE HINDU, January 27, 2011.*
2. *"Why Indo–China Ties Will Be More Favourable Than Sino–Pak, The World reporter.*
3. *South Asian Journal Of Socio-Political Studies, Vol. 1 June – Dec, 2000.*
4. *Michael D. Swaine , Does China Have A Grand Strategy?, September, 2000.*
5. *Tan Chung (1998). A Sino-Indian Perspective for India-China Understanding.*
6. *" India, China Hoping to 'Reshape the World Order' Together" Washington Post.*
7. *The Rise Of China And India : A Global Game Changer, The Nation.*
8. *China, India and the fruits of Nehru's folly', DNA , Wednesday, Jun 6, 2007.*
9. *China and India: Relations Between the Two Asian Giants, Fair Observer.*

The Journey from Basel I to Basel III and Implications for Indian Banks

Dr. Mani Bhatia
Assistant professor, The IIS University, Jaipur
Palak Mehta
Research Scholar, The IIS University, Jaipur

shodhshree@gmail.com

During the last two decades there have been various developments at the international and national level which have affected the operating environment of banks. Liberalization, globalization, development of new financial products and services and immense changes in technology and communication have brought important changes in working of the banks. The banking sector is going through significant changes in products, in customer base and in channels of delivery.

Banks are at the centre of credit intermediation process of every economy – through their role as lenders, market makers, providers of liquidity and payment services. A crisis in the banking sector is thus bound to have great effects on the economy in the form of financial and economic downturns and all efforts must be made to avoid their occurrence.

With financial risks growing in size and probability, proactive, efficient and integrated risk management practices are called for to enhance banks and protect the interest of stakeholders such as depositors, shareholders and employees. To set global standards for risk management in banks, the Bank for International Settlements set up the committee on Banking Supervision (BCBS). The Committee has introduced three sets of recommendations for banks popularly known as Basel I, Basel II and Basel III norms.

This paper highlights the important provisions of all three forms of Basel norms and explains the implications of Basel III for Indian banks.

Basel I- Basel I was very simple in its approach. It mainly focused on standards for measuring credit risk and mentioned the minimum level of capital as a function of risk weighted assets while at the same time defining the components of regulatory capital. It was agreed that the banks would maintain a minimum capital of 8% of risk weighted assets. Different risk weights were charged for specified categories of exposure.

Basel I introduced common global standards and allocated capital to the quantum of risks borne by a bank. The major contribution of Basel I was that it laid the groundwork of international convergence on measuring banking risks and defining capital standards.

The major weakness of Basel I was its 'one size fits all approach'. It imposed a single rate of capital adequacy for credit risk regardless of the degree of risk

within that category. It focused completely on credit risk, ignoring other types of risks such as liquidity risks, market risk and operational risk.

Basel II- Due to weaknesses in Basel I a risk sensitive framework was introduced by Basel Committee in June 1999 which came to know as Basel II. The aim of this accord was to foster safety and soundness in the financial sector through its risk sensitive framework , improve competitive equality, develop a complete way to address risk and establish ways to capital adequacy that are sensitive to risk involved in banks activities. Basel II norms were fully implemented in India in 2009. As per RBI banks in India had to maintain minimum capital to risk weighted asset ratio (CRAR) at 9% which was more than the specified requirement of Basel norms (8%). It was thought that the implementation of Basel II would require higher capital requirement for Indian banks but most banks fulfilled the prescribed CRAR prescribed under Basel II. The problems which came across while implementing Basel II are the high cost of up gradation, cost of training staff, lack of number of rating agencies and the reliability of complete rating process. But the global banking crisis of 2007 highlighted the weaknesses in Basel II such as excess liquidity , excess leverage, inadequate quality capital, procyclicality, interconnectedness of systemically important too-big-to-fail financial institutions.

Basel III- The Third Basel Accord was established in response to weaknesses in financial regulation disclosed by late-2000s financial crisis. The Basel III framework on improving the risk management, transparency and disclosures of the banking sector was developed by Basel Committee on Banking Supervision in December 2010. The main objective of this accord is to enhance the ability of the banks to absorb shocks arising from financial and economic stress. Basel III aims to raise bank's capital, to move the banks away from short term funding, enhance risk management and governance as well as improve bank's transparency and disclosures.

Basel III includes micro prudential and macro prudential measures since larger strength at the individual bank level decreases the risk of system wide shocks.

It covers mainly the following aspects:

1. Basel III intends to propose stringent definition of capital. Improved quality capital means the greater loss absorption capacity. The quality, consistency and transparency of capital base have been raised. This will make the banks stronger and efficient enough to withstand future shocks.
2. By development of Basel III banks will need to hold Capital Conservation Buffer of 2.5%.. The purpose to build Capital Conservation buffer is to make assure that banks keep a limited amount of capital which will help to absorb losses during financial and economic stress.
3. There are measures to increase capital levels in good times which can be drawn down during a downturn to decrease procyclicality. The Counter cyclical buffer has been proposed with the aim to protect the system against excess credit growth. The buffer will range from 0% to 2.5% which will consist of common equity and loss absorbing capital.
4. The minimum requirement for common equity has been increased from 2% to 4.5% of risk weighted assets under Basel III. The Tier 1 capital not only includes common equity but also other financial instruments will rise from 4% to 6%. Even though the minimum total capital requirement will be fixed at 8% level but the total capital requirement will rise to 10.5% which includes conservation buffer.
5. Under Basel III global liquidity standards have been introduced for internationally. active banks that include a 30-day Liquidity Coverage Ratio which is made compulsory by January 2018 and Net Stable Funding Ratio will be proposed in 2015. It will protect the banks against the periods of stressed liquidity.
6. Globally systemically important banks (considered to be too-big-to-fail) will be required to have additional loss absorbency capacity beyond the Basel III requirements.

Basel III and Indian Banks- Under Basel III the requirement of capital will definitely be higher. Banks will require more equity capital since Tier I capital has been increased and new capital norms have been proposed for trading in derivatives and other securities. Banks in India have to raise fresh capital to meet the growing credit needs and to

meet the provisioning requirements. Public sector banks in India have to approach the capital market for fresh equity as the government would not be in a position to provide additional equity to them.

Banks in India are well-capitalized and are already maintaining a higher equity capital ratio than specified in the proposed Basel III guidelines. For banks that fall short, the favorable environment of economic growth will permit them to enhance their capital bases through issue of fresh equity. Another major issue is that the traditional performance metric- Return on Equity (ROE) will take a hike due to combination higher core equity, leverage ratio and phasing of inadmissible instruments. Banks will need to seriously evaluate costs and other aspects of their performance if they wish to maintain the high levels of ROE.

There is also the factor of dynamic provisioning i.e. greater provisioning during a downturn which means that the banks would be required to maintain more capital during difficult times and in turn it will put pressure on the banks profitability.

There will be some other challenges for the banks which includes challenge of enhancing risk management systems. Risk management systems must be enhanced to account for environmental risk factors. Another major issue for banks would arise from the treatment of their pension liabilities. For focusing upon the quality of capital after the financial crisis RBI has introduced full recognition of liabilities from defined benefit pension funds in calculation of Tier 1 capital which will help the banks to absorb the losses and protect the depositors and creditors.

Public sector banks will face more difficulties than the private sector banks while implementing Basel III for various reasons such as banks have collected more NPAs than the private sector banks, financial strength of public sector banks.

The RBI is planning to look into shadow banking activities and tighten norms here also. Shadow banking refers to financial sector services beyond the regulatory purview of central banks.

Eventually all banks will face the challenge of meeting the credit needs of a growing economy and the needs of socially responsible banking while adjusting to a more strict regulatory regime.

Conclusion-

Banks are in the business of risk and they face an infinite number of risks in their daily operations. These risks have increased recently due to certain factors such as globalization, financial innovations, increasing complexity of financial products etc. The Basel norms proposed by the BIS with the objective of developing global standards for measuring, managing and protecting against these risks.

The journey from Basel I to Basel III has been a significant one and the Basel norms shows the lessons learned. Each set of norms has been distinguished by greater sophistication and more inclusive coverage then the preceding set.

This paper has highlighted the major provisions of all three sets of Basel norms and looked at the major implications of Basel III for Indian banks.

References:

1. *Bhusnurmath M. (2010): Goodbye Basel II, Hello Basel III, Economic Times, September 20.*
2. *Business Standard (2012): RBI may tighten Shadow Banking Rules, May 1.*
3. *Chakraborty S. & Sokhi P. (2012): Basel III norms may moderate Banks return on Equity, Business Standard, January 4.*
4. *Chandrashekhar C.P. & J Ghosh (2007): Basel II & India's Banking Structure, Business Line, February 20.*
5. *Dasgupta K. (2012): Basel norms: Surely not just an Exercise in Compliance? Economic Times, April 25.*
6. *Economic Times (2010): What are the Basel III norms? September 2014.*
7. *Krishna R. & A. Roy (2012): Why Basel III will affect Govt. Banks more, May 4,*
8. *http://www.livemint.com*

ISSN 2277-5587

Creating Curiosity, Creating Adventure, Creating Awareness: A Flash Mob–21st Century Publicity Tool

Aditi R Khandelwal
Assistant Professor
The IIS University, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Has it ever happened to you that you were walking on a busy road and suddenly a person started dancing, you thought he has gone crazy but out of curiosity you stayed watching and soon that one person was joined by another, and another and another until it became a huge group of people performing well synchronized steps. Everybody started enjoying the act and suddenly it stopped and the whole group dispersed as if it was never there. If you are still wondering what it was? Here is the answer it was a Flash Mob.

A flash mob (or flash mob) is a group of people who assemble suddenly in a public place, perform an unusual and seemingly pointless act for a brief time, than quickly disperse. People participating in a Flash Mob are referred to as Mobbers. Flash mobs usually take place in a short amount of time, some can be as short as one or two minutes. Generally, flash mobs last fewer than 10 minutes. Basic characteristic of a flash mob is that it begins from nothing and ends with nothing i. e. it should have a surprise start. Mobbers initially act as inconspicuous as possible before the mob as to not give the surprise away. Once the mob begins, mobbers get into character and begin the action as quickly as possible. The way people act is based on how the mobbers interpret the original instructions. When the mob ends, it is of prime importance that the area looks and sounds as if nothing had ever happened. By lookes generally enjoy this aspect of flash mobs as it leaves them with smiles on their faces and asking themselves what just happened?

It is the latest publicity gimmick that many event management companies, social activists, TV channels and movie production houses are using to create a buzz among masses. It may be done for the purposes of entertainment, satire, creating awareness, creating fun and artistic expression, but if it is organized for purposes like politics (such as protests), commercial advertisement, publicity stunts that involve public relation firms, or paid professionals it stops being a flash mob. Flash mob can be called as a truly 21st century movement as it is generally organized through telecommunications, social

media, or viral emails. Above picture shows a flash mob organized at a university to spread awareness about female feticide.

Flash Mobs can be organized in numerous shapes and sizes. It can be based on movie songs, scenes from movies or plays, they can simply be a random activity in a normal place or a normal activity in a random place. All these types of Flash Mobs can be categorized as under: Freeze Flash Mob, Dance Flash Mob and Opera or Singing Flash Mob. Lets discuss all these at length –

a. Freeze Flash Mob- It is a flash mob in which mobbers show a scene which can be unfolded as a message. Mobbers freeze in different positions and act as statues to create a scene. They can also paint their faces or wear such cloths which can help in depicting the whole sight.

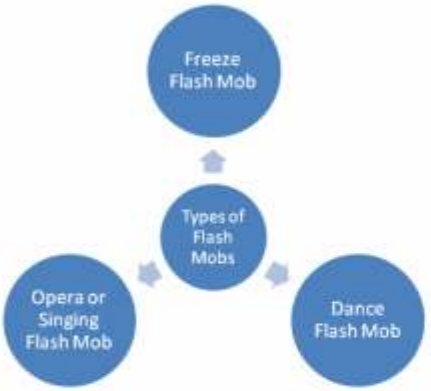

b. Dance Flash Mob- Dance Flash Mob is the most common type of flash mob one comes across as it is the most entertaining and catchy art form. Here mobbers suddenly start dancing on a song related to the message they want to send across. It can start with one person who is consequently joined by a number of other mobbers.

c. Opera or Singing Flash Mob- As the name suggests it is a mob of people who stick to singing as a way to attract crowd. Mobbers over here sing the songs which can give the message they want to share with the large public.

Like every other event comes flash mob also has some negative points or obstacles which can come in the way of a successful flash mob like –

- If mobbers look too anxious, it may give away surprise
- If a mob is not properly planned or is absolutely impromptu mobbers may end up misinterpreting the instructions and thus destroying the act.
- Not leaving the scene of the mob as if nothing had happened wipes out the essence of a flash mob.
- Authorities (police, school officials, etc) stepping in to halt the mobs if proper permission is not sought.
- Lack of mobbers to participate can also sometimes become a limiting factor.

World's First Flash Mob-

World's first flash mob took place in a New York Macy's retail store. There, hundreds of mobbers entered the store in search of a "love rug." After that, about 200 people flooded the lobby and mezzanine of the Hyatt Hotel in synchronized applause for about fifteen seconds, and next a shoe boutique in Soho was invaded by participants pretending to be tourists on a bus trip.

Flash Mob in India-

India's first flash mob took place on 27th November, 2011 just one day after India observed the third anniversary of 26/11 terror attacks in Mumbai. It was done to pay a tribute to the people who lost their lives in 26/11 terror attacks. The mobbers choose the place where the attack was initiated i.e. Chhatrapati Shivaji Terminus. About 200 people began dancing to Bollywood's famous song Rang de Basanti. The train services were also stopped for ten minutes at CST during the performance. It was organized by a 23-year-old Shonan Kothari employed with a CSR consultancy in Mumbai came up with the idea of a flash mob. She shared the idea with many others. The group practiced together for a few weeks.

Since then the trend has caught on and travelled to various cities like Pune, Chennai, Bangalore, Hyderabad and Kochi as well as the national capital. Even Television reality shows have started promoting their shows by conducting flash mobs in public areas. The team of Zee TV's flagship reality show Dance India Dance had also organised dance mobs to promote the third season of the show. A flash mob of over 50 people began dancing at the Rajouri Garden market in West Delhi. It got very good response from the public, as a lot of people from college-goers,

shopkeepers and residents, joined in the flash mob and danced to popular Bollywood chartbusters.

Another flash mob in Delhi was orgamized at Sarojini Nagar against sexual harassment and female foeticide, this time the song chosen by the mobbers was "Sadda Haq".In Mumbai, southern star Dhanush led a flash mob and danced to his Tamil-English hit "Kolaveri di" to promote the film 3, while in Kochi some enthusiasts danced to spread the message of peace.

Though we only get to know about the bigger and celebrity stuck flash mobs but it has become even more famous and is being used by the students of reputed colleges and universities all over India. But still it seems it has not become a major tool to do something serious like a candle march. So let's see how it evolves in future or it just comes to an end at this moment.

References:

1. *http://www.adelaideflashmob.com/2008/01/types-of-flash-mobs/*
2. *https://sites.google.com/site/flashmobtutorial/courses/course-a*
3. *http://www.hindustantimes.com/Entertainment/Music/Flash-mob-the-latest-trend-in-India/Article1-788726.aspx*
4. *http://www.dnaindia.com/india/1800080/report-wake-up-delhi-sing-flash-mobs-for-one-billion-rising*
5. *http://articles.chicagotribune.com/ keyword/ flash-mob*
6. *http://www.sirc.org/articles/ flash_mob.shtml*

media, or viral emails. Above picture shows a flash mob organized at a university to spread awareness about female feticide.

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

Shodhshree@gmail.com

Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees 1200 Rs (For Individual and Institution)

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in pagemaker and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
3. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.
4. Maximum word limit of research paper up to 1500 words.
5 Special care should be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper otherwise it will not be accepted for publication.
6. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
7. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
8. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail:shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।
मुद्रण स्थल आकृति एड्वरटाईजर्स, जयपुर